

ततस्तु त्वरया युक्तः शीघ्रकारी भयान्वितः ।  
ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ।  
क्रुद्धः स्वमस्त्रमादाय शिरश्चिच्छेद वै भिया ॥ १०४

तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुक्रोधं भृगुरीश्वरः ।  
ततोऽभिशस्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा ॥ १०५

यस्मात् ते जानतो धर्ममवध्या स्त्री निषूदिता ।  
तस्मात् त्वं सप्तकृत्वेह मानुषेषूपपत्स्यसि ॥ १०६

ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः ।  
लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह ॥ १०७

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन् ।  
समानीय ततः कायमसौ गृहेदमब्रवीत् ॥ १०८

एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम् ।  
ततस्तां योज्य शिरसा अभिजीवेति सोऽब्रवीत् ॥ १०९

यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा ।  
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं वदाम्यहम् ॥ ११०

ततस्तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्विर्जीवेति सोऽब्रवीत् ।  
ततोऽभिव्याहृते तस्य देवी स जीविता तदा ॥ १११

ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोस्थितामिव ।  
साधु साधिवति चक्रुस्ते वचसा सर्वतो दिशम् ॥ ११२

एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा ।  
मिष्ठां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११३

असम्भान्तेन भृगुणा पत्नीं संजीवितां पुनः ।  
दृष्ट्वा चेन्द्रो नालभत शर्म काव्यभयात् पुनः ।  
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥ ११४

भीषण दुर्भावना—दुश्चेष्टा तथा दूसरी ओर स्त्रीवधरूप घोर पापको देखकर गम्भीर चिन्तामें पड़ गये । फिर उस देवीके क्रूर विचारको जानकर उस आपत्तिसे उद्धार पानेके लिये उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रका ध्यान किया । अस्त्रके आ जानेपर शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करनेमें निपुण एवं भयभीत विष्णु क्रुद्ध हो उठे और तुरंत ही उन्होंने अपना अस्त्र लेकर (पापसे) डरते-डरते उसके सिरको काट गिराया । इधर ऐश्वर्यशाली भृगु उस भयंकर स्त्री-वधको देख कुपित हो गये और वे उस भार्या-वधको निमित्त बनाकर भगवान् विष्णुको शाप देते हुए बोले—‘विष्णो ! चौंकि ‘स्त्री अवध्य होती है’—इस धर्मको जानते हुए भी तुमने मेरी भार्याका प्राण हरण किया है, अतः तुम मृत्युलोकमें सात बार मानव-योनिमें जन्म धारण करोगे ।’ उसी शापके कारण धर्मका हास हो जानेपर भगवान् विष्णु लोकके कल्याणके लिये मृत्युलोकमें पुनः-पुनः मानव-योनिमें अवतीर्ण होते हैं\* ॥ १०१—१०७ ॥

भगवान् विष्णुको ऐसा शाप देकर भृगुने फिर तुरंत ही (ख्यातिके) उस सिरको उठा लिया और उसे देवीके शरीरके निकट लाकर तथा उस शरीरसे जोड़कर इस प्रकार कहा—‘देवि ! यह तुम विष्णुद्वारा मार डाली गयी हो, अब मैं तुम्हें पुनः जिलाये देता हूँ।’ यों कहकर उसके शरीरको सिरसे जोड़कर कहा—‘जी उठो’ । पुनः वे प्रतिज्ञा करते हुए बोले—‘यदि मैं सम्पूर्ण धर्मोंको जानता हूँ तथा मेरे द्वारा सम्पूर्ण धर्मोंका आचरण भी किया गया हो अथवा यदि मैं सत्यवादी होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ ।’ तत्पश्चात् देवीके शरीरका शीतल जलसे प्रोक्षण करके उन्होंने पुनः कहा—‘जीवित हो जाओ !’ भृगुके यों कहते ही देवी तुरंत जीवित होकर उठ बैठी । उस देवीको सोकर उठी हुईकी भाँति जीवित देखकर सभी प्राणी ‘ठीक है, ठीक है’—ऐसा कहने लगे । उनका वह साधुवाद सभी दिशाओंमें गूँज उठा । इस प्रकार महर्षि भृगुने सभी देवताओंके देखते-देखते देवीको पुनः जीवन प्रदान कर दिया, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १०८—११३ ॥

इस प्रकार व्यवस्थित चित्तवाले भृगुद्वारा अपनी पत्नीको जीवित किया हुआ देखकर इन्द्रको शुक्राचार्यके भयसे शान्ति नहीं मिल पा रही थी । वे रातभर जागते ही रहते । अन्तमें बुद्धिमान् इन्द्र बहुत कुछ सोच-विचारकर अपनी कन्या जयन्तीसे यह वचन बोले—

\* यह कथा वाल्मीकीय रामायण १। २४। २१—२५, योगवासिष्ठ १। १। ६१—६५ तथा भविष्यपुराण ४। ६३। १—१३ में भी आती है ।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!

संचिन्त्य मतिमान् वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः ।  
एष काव्यो ह्यमित्राय व्रतं चरति दारुणम् ।  
तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो मतिमता भृशम् ॥ १५

गच्छ संसाधयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः ।  
तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्त्रिता ॥ १६

काव्यमाराधयस्वैनं यथा तुष्येत स द्विजः ।  
गच्छ त्वं तस्य दत्तासि प्रयत्नं कुरु मत्कृते ॥ १७

एवमुक्ता जयन्ती सा वचः संगृह्य वै पितुः ।  
अगच्छद् यत्र घोरं स तप आरभ्य तिष्ठति ॥ १८

तं दृष्ट्वा तु पिबन्तं सा कणधूममवाङ्मुखम् ।  
यक्षेण पात्यमानं च कुण्डधारेण पातितम् ॥ १९

दृष्ट्वा च तं पात्यमानं देवी काव्यमवस्थितम् ।  
स्वरूपध्यानशाम्यं तं दुर्बलं भूतिमास्थितम् ।  
पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा ॥ २०

गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्लभाषिणी ।  
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना त्वचः सुखैः ।  
व्रतचर्यानुकूलाभिरुवास बहुलाः समाः ॥ २१  
पूर्णोऽथवा व्रते तस्मिन् घोरे वर्षसहस्रके ।  
वरेण छन्दयामास काव्यं प्रीतो भवस्तदा ॥ २२

‘बेटी ! ये शुक्राचार्य मेरे शत्रुओंके हितार्थ भीषण व्रतका अनुष्ठान कर रहे हैं । इससे बुद्धिमान् काव्य (उन शुक्राचार्य)– ने मुझे अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, अतः तुम उनके पास जाओ और मेरा कार्य सिद्ध करो । वहाँ तुम आलस्यरहित होकर थकावटको दूर करनेवाले तथा उनके मनोऽनुकूल विभिन्न प्रकारके शुभ उपचारोंद्वारा शुक्राचार्यकी ऐसी उत्तम आराधना करो, जिससे वे ब्राह्मण प्रसन्न हो जायें । जाओ, आज मैं तुम्हें शुक्राचार्यको समर्पित कर दे रहा हूँ । तुम मेरे कल्याणके लिये प्रयत्न करो ।’ इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्रपुत्री जयन्ती पिताके वचनको अङ्गीकार करके उस स्थानके लिये प्रस्थित हुई, जहाँ बैठकर शुक्राचार्य भीषण तपका अनुष्ठान कर रहे थे । वहाँ जाकर जयन्तीने शुक्राचार्यको नीचे मुख किये हुए कुण्डधार नामक यक्षद्वारा गिराये गये तथा गिराये जाते हुए कण-धूमका पान करते हुए देखा । उनके निकट जाकर जयन्तीने जब यह लक्ष्य किया कि शुक्राचार्य उस गिराये जाते हुए धूमका पान करते हुए अपने स्वरूपके ध्यानमें शान्तभावसे अवस्थित हैं, उनके शरीरपर विभूति लगी है और वे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं, तब पिताने जैसी सीख दी थी, उसीके अनुसार वह शुक्राचार्यके प्रति व्यवहार करने लगी । मधुर भाषण करनेवाली जयन्ती अनुकूल वचनोंद्वारा शुक्राचार्यकी स्तुति करती थी, समय-समयपर उनके सिर-हाथ-पैर आदि अङ्गोंको दबाकर उनकी सेवा करती थी । इस प्रकार व्रतचर्यके अनुकूल प्रवृत्तियोंद्वारा उनकी सेवा करती हुई वह बहुत वर्षोंतक उनके निकट निवास करती रही । एक सहस्र वर्षकी अवधिवाले उस भयंकर धूमव्रतके पूर्ण होनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और शुक्राचार्यको वर प्रदान करते हुए बोले— ॥ ११४—१२२ ॥

## महादेव उवाच

एतद् व्रतं त्वयैकेन चीर्णा नान्येन केनचित् ।  
 तस्माद् वै तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥ १२३  
 तेजसा च सुरान् सर्वास्त्वमेकोऽभिभविष्यसि ।  
 यच्चाभिलषितं ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥ १२४  
 प्रपत्स्यसे तु तत् सर्वं नानुवाच्यं तु कस्यचित् ।  
 सर्वाभिभावी तेन त्वं भविष्यसि द्विजोत्तम ॥ १२५  
 एतान् दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः ।  
 प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ ॥ १२६  
 एताँल्लब्ध्वा वरान् काव्यः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।  
 हर्षात् प्रादुर्बंधौ तस्य दिव्यस्तोत्रं महेश्वरे ।  
 तथा तिर्यक् स्थितश्वैव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥ १२७

शुक्र उवाच

नमोऽस्तु शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे ।  
 लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसः पते \* ॥ १२८  
 कपर्दिने करालाय हर्यक्षणे वरदाय च ।  
 संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ १२९  
 उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे ।  
 वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे ॥ १३०  
 हस्याय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च ।  
 कवये राजवृक्षाय तक्षकक्रीडनाय च ॥ १३१  
 सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय मीढुषे ।  
 वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥ १३२

महादेवजीने कहा— भृगुनन्दन ! अबतक एकमात्र तुमने ही इस व्रतका अनुष्ठान किया है, किसी अन्यके द्वारा इस व्रतका पालन नहीं हो सका है; इसलिये तुम अकेले ही अपने तप, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, बल और तेजसे समस्त देवताओंको पराजित कर दोगे । ब्रह्मन् ! तुम्हारी जो कुछ भी अभिलाषा है, वह सारी-की-सारी तुम्हें प्राप्त हो जायगी, किंतु तुम यह मन्त्र किसी दूसरेको मत बतलाना । द्विजोत्तम ! इससे तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके दमनकर्ता हो जाओगे ।' भृगुनन्दन शुक्राचार्यको इतना वरदान देनेके पश्चात् शंकरजीने पुनः उन्हें प्रजेशत्व (प्रजापति), धनेशत्व (धनाध्यक्ष) और अवध्यत्वका भी वर प्रदान किया । इन वरदानोंको पाकर शुक्राचार्यका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा । उसी हर्षविवेगके कारण उनके हृदयमें भगवान् शंकरके प्रति एक दिव्य स्तोत्र प्रादुर्भूत हो गया । तब वे उसी तिर्यक्-अवस्थामें पड़े-पड़े नीललोहित शंकरजीकी स्तुति करने लगे ॥ १२३—१२७ ॥

शुक्राचार्यने कहा— प्रभो ! आप शितिकण्ठ— जगत्की रक्षाके लिये हालाहल विषका पान करके उसके नील चिह्नको कण्ठमें धारण करनेवाले (अथवा कर्पूर-गौरकण्ठवाले), कनिष्ठ— ब्रह्माके पुत्रोंमें सबसे छोटे रुद्र या अदितिके छोटे पुत्ररूप, सुवर्चा— अध्ययन एवं तप आदिसे उत्पन्न हुए सुन्दर तेजवाले, लेलिहान— प्रलय-कालमें त्रिलोकीके संहारार्थ बारंबार जीभ लपलपानेवाले, काव्य— कवि या पण्डितके लक्षणोंसे सम्पन्न, वत्सर— संवत्सररूप, अन्धस्पति— सोमलताके अथवा सभी अन्नोंके स्वामी, कपर्दी— जटाजूटधारी, कराल— भीषण रूपधारी, हर्यक्ष— पीले नेत्रोंवाले, वरद— वरप्रदाता, संस्तुत— पूर्णरूपसे प्रशंसित, सुतीर्थ— महान् गुरुस्वरूप अथवा उत्तम तीर्थस्वरूप, देवदेव— देवताओंके अधीश्वर, रहस— वेगशाली, उष्णीषी— सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले, सुवक्त्र— सुन्दर मुखवाले, बहुरूप— एकादश रुद्रोंमेंसे एक, वेधा— विधानकर्ता, वसुरेता— अग्निरूप, रुद्र— समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, तपः— तपः-स्वरूप, चित्रवासा— चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, हस्व— बौना, मुक्तकेश— खुली हुई जटाओंवाले, सेनानी— सेनापति, रोहित— मृगरूपधारी, कवि— अतीन्द्रिय विषयोंके ज्ञाता, राजवृक्ष— रुद्राक्ष-वृक्षस्वरूप, तक्षकक्रीडन— नागराज तक्षकके साथ क्रीडा करनेवाले, सहस्रशिरा— हजारों मस्तकोंवाले, सहस्राक्ष— सहस्र नेत्रधारी, मीढुष— सेक्ता अथवा स्तुतिकी वृद्धि करनेवाले, वर— वरण करनेयोग्य, वरस्वरूप, भव्यरूप— सौन्दर्यशाली, श्वेत— गौरवर्णवाले,

\* यहाँ प्रायः २५० नामोंद्वारा भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति है। ये नाम प्रसिद्ध 'वाजसनेयि-संहिता' (यजुर्वेद १६) आदिपर आधृत हैं। ये नाम विभिन्न शिवसहस्रनामोंमें भी आते हैं। यह स्तोत्र वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें भी प्राप्त हैं।

गिरिशाय नमोऽकाय बलिने आज्यपाय च ।  
सुतृसाय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च ॥ १३३

निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च ।  
ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥ १३४

महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च ।  
हिरण्याय वरिष्ठाय ज्येष्ठाय मध्यमाय च ॥ १३५

वास्तोष्टते पिनाकाय मुक्तये केवलाय च ।  
मृगव्याधाय दक्षाय स्थाणवे भीषणाय च ॥ १३६

बहुनेत्राय धुर्याय त्रिनेत्रायेश्वराय च ।  
कपालिने च वीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ॥ १३७

बध्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च ।  
पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥ १३८

दुन्दुभ्यायैकपादाय अजाय बुद्धिदाय च ।  
आरण्याय गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे ॥ १३९

सांख्याय चैव योगाय व्यापिने दीक्षिताय च ।  
अनाहताय शर्वाय भव्येशाय यमाय च ॥ १४०

रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ।  
चतुष्पदाय मेध्याय रक्षिणे शीघ्रगाय च ॥ १४१

पुरुष—आत्मनिष्ठ, गिरिश—कैलासपर्वतपर शयनकर्ता, अर्क—सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, बली—बलसम्पन्न, आज्यप—धृतपायी, सुतृम—परम संतुष्ट, सुवस्त्र—सुन्दर वस्त्र पहननेवाले, धन्वी—धनुर्धर, भार्गव—परशुरामस्वरूप, निषङ्गी—तूणीरधारी, तार—विश्वके रक्षक, स्वक्ष—सुशोभन नेत्रोंसे युक्त, क्षपण—भिक्षुकस्वरूप, ताम्र—अरुण अधरोंवाले, भीम—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, संहारक होनेके कारण भयंकर, उग्र—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, निष्ठरतथा शिव—कल्याणस्वरूपको नमस्कार है ॥ १२८—१३४ ॥

महादेव—देवताओंके भी पूज्य, शर्व—प्रलयकालमें सबके संहारक, विश्वरूप शिव—विश्वरूप धारण करके जीवोंके कल्याणकर्ता, हिरण्य—सुवर्णकी उत्पत्तिके मूल कारण, वरिष्ठ—सर्वश्रेष्ठ, ज्येष्ठ—आदिदेव, मध्यम—मध्यस्थ, वास्तोष्टति—गृहक्षेत्रके पालक, पिनाक—पिनाक नामक धनुषके स्वामी, मुक्ति—मुक्तिदाता, केवल—असाधारण पुरुष, मृगव्याध—मृगरूपधारी यज्ञके लिये व्याधस्वरूप, दक्ष—उत्साही, स्थाणु—गृहके आधारभूत स्तम्भके समान जगत् के आधारस्तम्भ, भीषण—अमङ्गल वेषधारी, बहुनेत्र—सर्वदृष्टा, धूर्य—अग्रगण्य, त्रिनेत्र—सोम-सूर्य-अग्निरूप त्रिनेत्रधारी, ईश्वर—सबके शासक, कपाली—चौथे हाथमें कपालधारी, वीर—शूरवीर, मृत्यु—संहारकर्ता, त्र्यम्बक—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, बध्रु—विष्णुस्वरूप, पिशङ्ग—भूरे रंगवाले, पिङ्गल—नील-पीतमिथ्रित वर्णवाले, अरुण—आदित्यरूप, पिनाकी—पिनाक नामक धनुष या त्रिशूल धारण करनेवाले, ईषुमान्—बाणधारी, चित्र—अद्भुत रूपधारी, रोहित—लाल रंगका मृगविशेष, दुन्दुभ्य—दुन्दुभिके शब्दोंको सुनकर प्रसन्न होनेवाले, एकपाद—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, एकमात्र शरण लेने योग्य, अज—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, अजन्मा, बुद्धिद—बुद्धिदाता, आरण्य—अरण्यनिवासी, गृहस्थ—गृहमें निवास करनेवाले, यति—संन्यासी, ब्रह्मचारी—ब्रह्मनिष्ठ, सांख्य—आत्मानात्मविवेकशील, योग—चित्तवृत्तियोंके निरोधस्वरूप अथवा निर्बीज समाधिस्वरूप, व्यापी—सर्वव्यापक, दीक्षित—अष्ट मूर्तियोंमें एक मूर्ति, सोमयागके विशिष्ट यागकर्ता, अनाहत—हृदयस्थित द्वादशदल कमलरूप चक्रके निवासी, शर्व—दारुकावनमें स्थित मुनियोंको मोहित करनेवाले, भव्येश—पार्वतीके प्राणपति, यम—संहारकालमें यमस्वरूप, रोधा—समुद्र-तटकी भाँति धर्म-हासके निरोधक, चेकितान—

शिखण्डने करालाय दंष्ट्रणे विश्ववेधसे ।  
भास्वराय प्रतीताय सुदीमाय सुमेधसे ॥ १४२

कूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च ।  
सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभाय च ॥ १४३

अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च ।  
व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे ॥ १४४

क्षेमाय सहमानाय सत्याय चामृताय च ।  
कत्रै परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ १४५

सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च ।  
शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे ॥ १४६

पिशिताशाय शर्वाय मेघाय वैद्युताय च ।  
व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरिताय तरक्षवे ॥ १४७

त्रिपुरघाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च ।  
तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये ॥ १४८

रोचमानाय चण्डाय सफीताय ऋषभाय च ।  
ब्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे ॥ १४९

असुरघाय स्वाघाय मृत्युञ्जे यज्ञियाय च ।  
कृशानवे प्रचेताय वह्ये निर्मलाय च ॥ १५०

अतिशय ज्ञानसम्पन्न, ब्रह्मिष्ठ—वेदोंके पारंगत विद्वान्, महर्षि—वसिष्ठ आदि, चतुष्पाद—विश्व, तैजस, प्राज्ञ और शिवध्यानरूप चार पादोंवाले, मेष्य—पवित्रस्वरूप, रक्षी—रक्षक, शीघ्रग—शीघ्रगामी, शिखण्डी—जटाके ऊपर जटाग्र-गुच्छको धारण करनेवाले, कराल—भयानक, दंष्ट्री—दाढ़वाले, विश्ववेधा—विश्वके सुषिकर्ता, भास्वर—दीसिमान् स्वरूप-वाले, प्रतीत—विख्यात, सुदीप—परम प्रकाशमान तथा सुमेधा—उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्नको नमस्कार है ॥ १३५—१४२ ॥

कूर—निर्दयी, अविकृत—सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओंसे रहित, भीषण—भयंकर, शिव—धर्मचिन्तारहित, सौम्य—शान्तस्वरूप, मुख्य—सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक—धर्मका आचरण करनेवाले, शुभ—मङ्गलस्वरूप, अवध्य—वधके अयोग्य, अमृत—मृत्युरहित, नित्य—अविनाशी, शाश्वत—सनातन स्थायी, व्यापृत—कर्मसचिव, विशिष्ट—सर्वश्रेष्ठ, भरत—लोकोंका भरण-पोषण करनेवाले, साक्षी—जीवोंके शुभशुभ कर्मोंकी साक्षीरूप, क्षेम—मोक्षस्वरूप, सहमान—सहनशील, सत्य—सत्यस्वरूप, अमृत—धन्वन्तरिस्वरूप, कर्ता—सबके उत्पादक, परशु—परशुधारी, शूली—त्रिशूलधारी, दिव्यचक्षु—दिव्य नेत्रोंवाले, सोमप—सोमरसका पान करनेवाले, आज्यप—घृतपायी अथवा एक विशिष्ट पितरस्वरूप, धूमप—धूमपान करनेवाले, ऊष्मप—एक विशिष्ट पितरस्वरूप, ऊष्माको पी जानेवाले, शुचि—सर्वथा शुद्ध, परिधान—ताण्डवके समय साज-सज्जासे विभूषित, सद्योजात—पञ्च मूर्तियोंमेंसे एक मूर्ति, तत्काल प्रकट होनेवाले, मृत्यु—कालस्वरूप, पिशिताश—फलका गूदा खानेवाले, सर्व—विश्वात्मा होनेके कारण सर्वस्वरूप, मेघ—बादलकी भाँति दाता, विद्युत—विजलीकी तरह दीसिमान्, व्यावृत्त—गजचर्म या व्याघ्रचर्मसे आवृत, सबसे अलग मुक्तस्वरूप, वरिष्ठ—सर्वश्रेष्ठ, भरित—परिपूर्ण, तरक्षु—व्याघ्रविशेष, त्रिपुरघ—त्रिपुरासुरके वधकर्ता, तीर्थ—महान् गुरुस्वरूप, अवक्र—सौम्य स्वभाववाले, रोमश—लम्बी जटाओंवाले, तिग्मायुध—तीखे हथियारोंवाले, व्याख्य—विशेषरूपसे व्याख्येय या प्रशंसित, सुसिद्ध—परम सिद्धिसम्पन्न, पुलस्ति—पुलस्त्य ऋषिरूप, रोचमान—आनन्दप्रद, चण्ड—अत्यन्त क्रोधी, स्फीत—वृद्धिंगत, ऋषभ—सर्वोत्कृष्ट, ब्रती—ब्रतपरायण, युञ्जमान—सर्वदा कार्यरत, शुचि—निर्मलचित्त, ऊर्ध्वरेता—अखण्डित ब्रह्मचर्यवाले, असुरघ—राक्षसोंके विनाशक, स्वाघ—निजजनोंके रक्षक, मृत्युघ—मृत्यु-संकटको टालनेवाले, यज्ञिय—ज्ञजके लिये हितकारी, कृशानु—अपने तेजसे तृण-काष्ठादि वस्तुओंको सूक्ष्म कर देनेवाले, प्रचेता—उत्कृष्ट चेतनावाले, वह्नि—अग्निस्वरूप और निर्मल—जागतिक मलोंसे रहितको नमस्कार है ॥ १४३—१५० ॥

रक्षोद्धाय पशुद्धायाविद्धाय श्वसिताय च।  
विभ्रान्ताय महान्ताय अत्यन्तं दुर्गमाय च॥ १५१

कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च।  
अनाश्रिताय वेध्याय समत्वाधिष्ठिताय च॥ १५२

हिरण्यबाहवे चैव व्यासाय च महाय च।  
सुकर्मणे प्रसह्याय चेशानाय सुचक्षुषे॥ १५३

क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च।  
कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते॥ १५४

महाकल्पाय दीपाय रोदनाय हसाय च।  
दृढधन्विने कवचिने रथिने च वर्णथिने॥ १५५

भृगुनाथाय शुक्राय गह्यरेष्टाय वेधसे।  
अमोघाय प्रशान्ताय सुमेधाय वृषाय च॥ १५६

नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन् विश्वाय कृत्तिवाससे।  
पशूनां पतये तुभ्यं भूतानां पतये नमः॥ १५७

प्रणवे ऋग्यजुःसामे स्वाहाय च स्वधाय च।  
वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्मने नमः॥ १५८

त्वष्टे धात्रे तथा कर्त्रे चक्षुःश्रोत्रमयाय च।  
भूतभव्यभवेशाय तुभ्यं कर्मात्मने नमः॥ १५९

वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्यसुराय च।  
विश्वाय मारुतायैव तुभ्यं देवात्मने नमः॥ १६०

अग्नीषोमविधिज्ञाय पशुमन्त्रौषधाय च।  
स्वयम्भुवे ह्यजायैव अपूर्वप्रथमाय च।

रक्षोद्ध—राक्षसोंके संहारकर्ता, पशुद्ध—जीवोंके संहारक, अविद्ध—विद्वरहित, श्वसित—ताण्डवकालमें ऊँची श्वास लेनेवाले, विभ्रान्त—भ्रान्तिहीन, महान्त—विशाल मर्यादावाले, अत्यन्त दुर्गम—परम दुष्ट्राप्य, कृष्ण—सच्चिदानन्दस्वरूप, जयन्त—बारंबार शत्रुओंपर विजय पानेवाले, लोकानामीश्वर—समस्त लोकोंके स्वामी, अनाश्रित—स्वतन्त्र, वेध्य—भक्तोंद्वारा प्राप्त करनेके लिये लक्ष्यस्वरूप, समत्वाधिष्ठित—समतासम्पन्न, हिरण्यबाहु—सुनहरी कान्तिवाली सुन्दर भुजाओंसे सुशोभित, व्यास—सर्वव्यापी, मह—दीपिशाली, सुकर्मा—उत्तम कर्मवाले, प्रसह्य—विशेषरूपसे सहन करनेयोग्य, ईशान—नियन्ता, सुचक्षुः—सुशोभन नेत्रोंसे युक्त, क्षिप्रेषु—शीघ्रतापूर्वक बाण चलानेवाले, सदश्व—उच्चैःश्रवा आदि उत्तम अश्वरूप, शिव—निरुपाधि, मोक्षद—मोक्षदाता, कपिल—कपिलवर्ण, पिशङ्ग—कनक-सदृश कान्तिमान्, महादेव—ब्रह्मादि देवताओंके तथा ब्रह्मवादी मुनियोंके देवता, धीमान्—उत्तम बुद्धिसम्पन्न, महाकल्प—महाप्रलय-कालमें विशाल शरीर धारण करनेवाले, दीप—अत्यन्त तेजस्वी, रोदन—रुलानेवाले, हस—हसनशील, दृढधन्वा—सुदृढ़ धनुषवाले, कवची—कवचधारी, रथी—रथके स्वामी, वर्णथी—भूतों एवं पिशाचोंकी सेनावाले, भृगुनाथ—महर्षि भृगुके रक्षक, शुक्र—अग्निस्वरूप, गह्यरेष्ट—निकुञ्जप्रिय, वेधा—ब्रह्मस्वरूप, अमोघ—निष्फलतारहित, प्रशान्त—शान्तचित्त, सुमेध—सुन्दर बुद्धिवाले और वृष—धर्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। भगवन्! आप विश्व—विश्वस्वरूप, कृत्तिवासा—गजासुरके चर्मको धारण करनेवाले, पशुपति—पशुओंके स्वामी और भूतपति—भूत-प्रेतोंके अधीश्वर हैं, आपको बारंबार प्रणाम है॥ १५१—१५७॥

आप प्रणव—३०कारस्वरूप एवं ऋग्यजुःसाम—वेदत्रयीरूप हैं, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार—ये तीनों आपके स्वरूप हैं तथा मन्त्रात्मा—मन्त्रोंके आत्मा आप ही हैं, आपको अभिवादन है। आप त्वष्टा—प्रजापति विश्वकर्मा, धाता—सबको धारण करनेवाले, कर्ता—कर्मनिष्ठ, चक्षुःश्रोत्रमय—दिव्य नेत्र एवं दिव्य श्रोत्रसे युक्त, भूतभव्यभवेश—भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता और कर्मात्मा—कर्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप वसु—आठ वसुओंमें एक वसु, साध्य—गणदेवोंकी एक कोटि, रुद्र—दुःखोंके विनाशक, आदित्य—अदितिपुत्र, सुर—देवरूप, विश्व—विश्वेदेवतारूप, मारुत—वायुस्वरूप एवं देवात्मा—देवताओंके आत्मस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप अग्नीषोमविधिज्ञ—अग्नीषोम नामक यज्ञकी विधिके ज्ञाता, पशुमन्त्रौषध—यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले पशु,

प्रजानां पतये चैव तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ॥ १६१

आत्मेशायात्मवश्याय सर्वेशातिशयाय च ।  
सर्वभूताङ्गभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः ॥ १६२

निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च ।  
निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं योगात्मने नमः ॥ १६३

पृथिव्यै चान्तरिक्षाय महसे त्रिदिवाय च ।  
जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः ॥ १६४

अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च ।  
आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्वात्मने नमः ॥ १६५

नित्याय चात्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च ।  
शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः ॥ १६६

नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु ।  
सत्यान्तेषु महाद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ॥ १६७

नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद् व्याहृतं विभो ।  
मद्भक्त इति ब्रह्मण्य तत् सर्व क्षन्तुमर्हसि ॥ १६८

सूत उवाच

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम् ।  
प्रह्लोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राङ्गलिर्बाग्यतोऽभवत् ॥ १६९

काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः ।  
निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७०

ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशोऽनुचरीं तदा ।  
तिष्ठन्तीं पार्श्वीं दृष्ट्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥ १७१

मन्त्र और ओषधके निर्णेता, स्वयम्भू—स्वयं उत्पन्न होनेवाले, अज—जन्मरहित, अपूर्वप्रथम—आद्यन्तस्वरूप, प्रजापति—प्रजाओंके स्वामी और ब्रह्मात्मा—ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको अभिवादन है। आप आत्मेश—मनके स्वामी, आत्मवश्य—मनको बशमें रखनेवाले, सर्वेशातिशय—समस्त ईश्वरोंमें सबसे बढ़कर, सर्वभूताङ्गभूत—सम्पूर्ण जीवोंके अङ्गभूत तथा भूतात्मा—समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं, आपको नमस्कार है ॥ १५८—१६२ ॥

आप निर्गुण—सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे परे, गुणज्ञ—तीनों गुणोंके रहस्यके ज्ञाता, व्याकृत—रूपान्तरित, अमृत—अमृतस्वरूप, निरुपाख्य—अदृश्य, मित्र—जीवोंके हितैषी और योगात्मा—योगस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप पृथिवी—मृत्युलोक, अन्तरिक्ष—अन्तरिक्षलोक, मह—महलोक, त्रिदिव्य—स्वर्गलोक, जन—जनलोक, तपः—तपोलोक, सत्य—सत्यलोक हैं, इस प्रकार लोकात्मा—सातों लोकस्वरूप आपको अभिवादन है। आप अव्यक्त—निराकाररूप, महान्—पूज्य, भूतादि—समस्त प्राणियोंके आदिभूत, इन्द्रिय—इन्द्रियस्वरूप, आत्मज्ञ—आत्मतत्त्वके ज्ञाता, विशेष—सर्वाधिक और सर्वात्मा—सम्पूर्ण जीवोंके आत्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप नित्य—सनातन, आत्मलिङ्ग—स्वप्रमाणस्वरूप, सूक्ष्म—अणुसे भी अणु, इतर—महान्-से भी महान्, शुद्ध—शुद्धज्ञानसम्पन्न, विभु—सर्वव्यापक और मोक्षात्मा—मोक्षरूप हैं, आपको प्रणाम है। यहाँ तीनों लोकोंमें आपके लिये मेरा नमस्कार है तथा इनके अतिरिक्त (अन्य) तीन परलोकोंमें भी मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इसी प्रकार महलोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त चारों लोकोंमें मैं आपको अभिवादन करता हूँ। ब्राह्मणवत्सल विभो! इस स्तोत्रमें मेरे द्वारा जो कुछ उचित-अनुचित कहा गया, उसे 'यह मेरा भक्त है'—ऐसा जानकर आप क्षमा कर दें ॥ १६३—१६८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर शुक्राचार्य देवाधिदेव नीललोहित भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें लोट गये और पुनः विनम्र होकर उनके समक्ष चुपचाप खड़े हो गये। तब शिवजीने हर्षपूर्वक अपने हाथसे शुक्राचार्यके शरीरको सहलाते हुए उन्हें यथेष्ट दर्शन दिया और वे वर्ही अन्तर्हित हो गये। उन देवेश्वरके अन्तर्हित हो जानेपर शुक्राचार्य अपने पार्श्व भागमें खड़ी हुई सेविका जयन्तीको देखकर उससे इस

कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता ।  
महता तपसा युक्ता किमर्थं मां निषेवसे ॥ १७२

अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च ।  
स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥ १७३

किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृद्ध्यताम् ।  
तं ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुष्करः ॥ १७४

एवमुक्ताब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि ।  
चिकीर्षितं हि मे ब्रह्मस्त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥ १७५

एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ।  
मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ॥ १७६

देवि चेन्दीवरश्यामे वरार्हे वामलोचने ।  
एवं वृणोषि कामं त्वं मत्तो वै वल्लुभाषिणि ॥ १७७

एवं भवतु गच्छामो गृहान्नो मत्तकाशिनि ।  
ततः स्वगृहमागत्य जयन्त्याः पाणिमुद्ध्रहन् ॥ १७८

तथा सहावसद् देव्या दश वर्षाणि भार्गवः ।  
अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः ॥ १७९

कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः ।  
अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ १८०

यदा गता न पश्यन्ति मायया संवृतं गुरुम् ।  
लक्षणं तस्य तद् बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १८१

बृहस्पतिस्तु संरुद्धं काव्यं ज्ञात्वा वरेण तु ।  
तुट्यर्थं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥ १८२

बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽपि दैत्यानामिन्द्रनोदितः ।  
काव्यस्य रूपमास्थाय असुरान् समुपाह्वयत् ॥ १८३

ततस्तानागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच ह ।  
स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय च ॥ १८४

प्रकार बोले—‘सुभगे ! तुम कौन हो अथवा किसकी पुत्री हो, जो मेरे तपस्यामें निरत होनेपर तुम भी कष्ट झेल रही हो ? इस प्रकार यह घोर तप करती हुई तुम किसलिये मेरी सेवा कर रही हो ? सुश्रोणि ! मैं तुम्हारी इस उत्कृष्ट भक्ति, विनम्रता, इन्द्रियनिग्रह और प्रेमसे परम प्रसन्न हूँ। वरवर्णिनि ! तुम मुझसे क्या प्राप्त करना चाहती हो ? वरारोहे ! तुम्हारी क्या अभिलाषा है ? उसे तुम अवश्य बतलाओ। मैं आज उसे अवश्य पूर्ण करूँगा, चाहे वह कितना ही दुष्कर क्यों न हो’॥१६९—१७४॥

शुक्राचार्यके यों कहनेपर जयन्तीने उनसे कहा—‘ब्रह्मन् ! आप अपने तपोबलसे मेरे मनोरथको भली-भाँति जान सकते हैं; क्योंकि आपको तो सबका यथार्थ ज्ञान है। ऐसा कहे जानेपर शुक्राचार्यने अपनी दिव्य दृष्टिद्वारा जयन्तीके मनोरथको जानकर उससे कहा—‘सुन्दर भावोंवाली सुश्रोणि ! इन्दीवर कमलके सदृश तुम्हारा वर्ण श्याम है, देवि ! तुम्हारे नेत्र अत्यन्त रमणीय हैं तथा तुम्हारा भाषण अतिशय मधुर है। वरार्हे ! तुम दस वर्षोंतक मेरे साथ रहनेका जो मुझसे वर चाह रही हो, वह वैसा ही हो। मत्तकाशिनि ! आओ, अब हमलोग अपने घर चलें।’ तब अपने घर आकर शुक्राचार्यने जयन्तीका पाणिग्रहण किया। फिर तपोबलसम्पन्न शुक्राचार्यने मायाका आवरण डाल दिया, जिससे सभी प्राणियोंसे अदृश्य होकर वे दस वर्षोंतक जयन्तीके साथ निवास करते रहे। इसी बीच जब दितिके पुत्रोंको यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्य सफलमनोरथ होकर घर लौट आये हैं, तब वे सभी हर्षपूर्वक उन्हें देखनेकी अभिलाषासे उनके घरकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचनेपर जब उन्हें मायासे छिपे हुए गुरुदेव शुक्राचार्य नहीं दीख पड़े, तब वे उनके उस लक्षणको समझकर जैसे आये थे, वैसे ही वापस चले गये॥१७५—१८१॥

इधर बृहस्पतिको जब यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्य जयन्तीकी हित-कामनासे उसे संतुष्ट करनेके लिये दस वर्षोंतक वरदानके बन्धनसे बँध चुके हैं, तब इसे दैत्योंका महान् छिद्र जानकर इन्द्रकी प्रेरणासे उन्होंने शुक्राचार्यका रूप धारणकर असुरोंको बुलाया। उन्हें आया देखकर (शुक्ररूपधारी) बृहस्पतिने उनसे कहा—‘मेरे यजमानो ! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुमलोगोंके कल्याणके लिये तपोवनसे लौट आया हूँ।

अहं वोऽध्यापिष्यामि विद्या: प्राप्तास्तु या मया ।  
 ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे ॥ १८५  
 पूर्णे काव्यस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके ।  
 समयान्ते देवयानी तदोत्पन्ना इति श्रुतिः ।  
 बुद्धिं चक्रे ततः सोऽथ याज्यानां प्रत्यवेक्षणे ॥ १८६  
 देवि गच्छाम्यहं द्रष्टुं तव याज्याज् शुचिस्मिते ।  
 विभ्रान्तवीक्षिते साध्वि विवर्णायितलोचने ॥ १८७  
 एवमुक्ताब्रवीदेनं भज भक्तान् महाब्रत ।  
 एष धर्मः सतां ब्रह्मन् न धर्मं लोपयामि ते ॥ १८८  
 ततो गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता ।  
 वञ्चितान् काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान् ॥ १८९  
 काव्यं मां वो विजानीध्वं तोषितो गिरिशो विभुः ।  
 वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः ॥ १९०  
 श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्तास्ते तदाभवन् ।  
 प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः ॥ १९१  
 सम्प्रमूढास्ततः सर्वे न प्राबुध्यन्त किंचन ।  
 अब्रवीत् सम्प्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा ॥ १९२  
 आचार्यो वो हृहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः ।  
 अनुगच्छत मां दैत्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥ १९३  
 इत्युक्ता ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्य च ।  
 यदासुरा विशेषं तु न जानन्त्युभयोस्तयोः ॥ १९४  
 बृहस्पतिरुवाचैनानसम्भ्रान्तस्तपोधनः ।  
 काव्यो वोऽहं गुरुदैत्या मद्भूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ १९५  
 सम्पोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः ।  
 श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समेत्य तु ततोऽब्रुवन् ॥ १९६  
 अयं नो दशवर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः ।  
 एष वै गुरुरस्माकमन्तरे स्फुरयन् द्विजः ॥ १९७

वहाँ मुझे जो विद्याएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हें मैं तुमलोगोंको पढ़ाऊँगा।' यह सुनकर वे सभी प्रसन्नमनसे विद्या-प्राप्तिके लिये वहाँ एकत्र हो गये। उधर जब वह दस वर्षका निश्चित समय पूर्ण हो गया, तब शुक्राचार्यने अपने यजमानोंकी खोज-खबर लेनेका विचार किया। इसी समयकी समाप्तिपर (जयन्तीके गर्भसे) देवयानी उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। (तब वे जयन्तीसे बोले—) 'पावन मुसकानवाली देवि! तुम्हरे नेत्र तो विभ्रान्त-से एवं बड़े हैं तथा तुम्हारी दृष्टि चञ्चल है, साध्वि! अब मैं तुम्हरे यजमानोंकी देखभाल करनेके लिये जा रहा हूँ।' यों कहे जानेपर जयन्तीने शुक्राचार्यसे कहा—'महाब्रत! आप अपने भक्तोंका अवश्य भला कीजिये; क्योंकि यही सत्पुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मन्! मैं आपके धर्मका लोप नहीं करना चाहती'॥ १८२—१८८॥

तदनन्तर असुरोंके निकट पहुँचकर शुक्राचार्यने जब यह देखा कि बुद्धिमान् देवाचार्य बृहस्पतिने मेरा रूप धारणकर असुरोंको ठग लिया है, तब वे असुरोंसे बोले—'दानवो! तुमलोग ध्यानपूर्वक सुन लो। अपनी तपस्याद्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेवाला शुक्राचार्य मैं हूँ। मुझे ही तुमलोग अपना गुरुदेव शुक्राचार्य समझो। बृहस्पतिद्वारा तुम सब लोग ठग लिये गये हो।' शुक्राचार्यको वैसा कहते हुए सुनकर उस समय वे सभी अत्यन्त भ्रममें पड़ गये और आश्र्यचकित हो वहाँ बैठे हुए उन दोनोंकी ओर निहारते ही रह गये। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। उस समय उनकी समझमें कुछ भी नहीं आ रहा था। इस प्रकार उनके किंकर्तव्यविमूढ़ हो जानेपर शुक्राचार्यने उन असुरोंसे कहा—'असुरो! तुमलोगोंका आचार्य शुक्राचार्य मैं हूँ और ये देवताओंके आचार्य बृहस्पति हैं। इसलिये तुमलोग इन बृहस्पतिका त्याग कर दो और मेरा अनुगमन करो।' शुक्राचार्यके यों समझानेपर असुरगण उन दोनोंकी ओर ध्यानपूर्वक निहारने लगे, परंतु जब उन्हें उन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत हुई, तब तपस्वी बृहस्पति धैर्यपूर्वक उन असुरोंसे बोले—'दैत्यो! तुमलोगोंका गुरु शुक्राचार्य मैं हूँ और मेरा रूप धारण करनेवाले ये बृहस्पति हैं। असुरो! ये मेरा रूप धारणकर तुमलोगोंको मोहमें डाल रहे हैं'॥ १८९—१९५ १२॥

बृहस्पतिकी बात सुनकर वे सभी एकत्र हो इस प्रकार बोले—'ये सामर्थ्यशाली ब्राह्मणदेवता हमारे अन्तःकरणमें स्फुरित होते हुए दस वर्षोंसे लगातार हमलोगोंको शिक्षा दे रहे हैं, अतः ये ही हमारे गुरु हैं।'

ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च।  
वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ॥ १९८

ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः।  
अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ॥ १९९

भार्गवो वाङ्गिरा वापि भगवानेष नो गुरुः।  
स्थिता वयं निदेशेऽस्य साधुत्वं गच्छ मा चिरम् ॥ २००

एवमुक्त्वासुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम्।  
यदा न प्रत्यपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्वितम् ॥ २०१

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन तेन तु।  
बोधिता हि मया यस्मान्न मां भजथ दानवाः ॥ २०२

तस्मात् प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्यथ ।  
इति व्याहृत्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम् ॥ २०३

शसांस्तानसुराज्ञात्वा काव्येन स बृहस्पतिः।  
कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वरूपं प्रत्यपद्यत ॥ २०४

बुद्ध्यासुरान् हताज्ञात्वा कृतार्थोऽन्तरधीयत ।  
ततः प्रनष्टे तस्मिस्तु विभ्रान्ता दानवाभवन् ॥ २०५

अहो विवश्चिताः स्मेति परस्परमथाब्रुवन्।  
पृष्ठतोऽभिमुखाश्रैव ताडिताङ्गिरसेन तु ॥ २०६

वश्चिताः सोपधानेन स्वे स्वे वस्तुनि मायया ।  
ततस्त्वपरितुष्टास्ते तमेव त्वरिता ययुः।

प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुपदं पुनः ॥ २०७

ततः काव्यं समापाद्य उपतस्थुरवाङ्मुखाः।  
समागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥ २०८

मया सम्बोधिताः सर्वे यस्मान्मां नाभिनन्दथ ।  
ततस्तेनावमानेन गता यूयं पराभवम् ॥ २०९

एवं ब्रुवाणं शुक्रं तु बाष्पसंदिग्धया गिरा ।  
प्रह्लादस्तं तदोवाच मा नस्त्वं त्यज भार्गव ॥ २१०

स्वाश्रयान् भजमानांश्च भक्तांस्त्वं भज भार्गव ।

‘ऐसा कहकर चिरकालके अभ्याससे मोहित हुए उन सभी दानवोंने बृहस्पतिको प्रणाम करके उनका अभिनन्दन किया और उन्हींके वचनोंको अङ्गीकार किया। तत्पश्चात् क्रोधसे आँखें लाल करके उन सभी असुरोंने शुक्राचार्यसे कहा—‘ये ही हमलोगोंके हितैषी गुरुदेव हैं, आप हमारे गुरु नहीं हैं, अतः आप यहाँसे चले जाइये। ये चाहे शुक्राचार्य हों अथवा बृहस्पति ही क्यों न हों, ये ही हमारे ऐश्वर्यशाली गुरुदेव हैं। हमलोग इन्हींकी आज्ञामें स्थित हैं। अतः आपके लिये यही अच्छा होगा कि आप यहाँसे शीघ्र चले जाइये, विलम्ब मत कीजिये।’ ऐसा कहकर सभी असुर बृहस्पतिके निकट चले आये। इधर जब असुरोंने शुक्राचार्यद्वारा कहे गये महान् हितकारक वचनोंपर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब उनके उस गर्वसे शुक्राचार्य कुपित हो उठे (और शाप देते हुए बोले—) ‘दानवो ! चूँकि मेरे समझानेपर भी तुमलोगोंने मेरी बात नहीं मानी है, इसलिये (भावी संग्राममें) तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी और तुमलोग पराभवको प्राप्त करोगे।’ इस प्रकार असुरोंको शाप देकर शुक्राचार्य जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये ॥ १९६—२०३ ॥

इधर जब बृहस्पतिको यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्यने असुरोंको शाप दे दिया, तब वे प्रसन्नतासे खिल उठे; क्योंकि उनका प्रयोजन सिद्ध हो चुका था। तत्पश्चात् वे तुरंत अपने वास्तविक बृहस्पतिरूपमें प्रकट हो गये और अपने बुद्धिबलसे असुरोंको मरा हुआ जानकर सफलमनोरथ हो अन्तर्हित हो गये। बृहस्पतिके आँखोंसे ओङ्कार हो जानेपर दानवगण विशेषरूपसे भ्रममें पड़ गये और परस्पर यों कहने लगे—‘अहो ! हमलोग तो विशेषरूपसे ठग लिये गये। बृहस्पतिने हमलोगोंको आगे और पीछे अर्थात् प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों ओरसे व्यथित कर दिया। उन्होंने अपनी मायाद्वारा सहायकसहित हमलोगोंको अपनी—अपनी वस्तुओंसे वञ्चित कर दिया।’ इस प्रकार असंतुष्ट हुए वे सभी दानव प्रह्लादको आगे कर पुनः उन्हीं शुक्राचार्यका अनुगमन करनेके लिये तुरंत प्रसिद्ध हुए और शुक्राचार्यके निकट पहुँचकर नीचे मुख किये हुए उन्हें घेरकर खड़े हो गये। तब अपने यजमानोंको पुनः आया देखकर शुक्राचार्यने उनसे कहा—‘दानवो ! चूँकि मेरे द्वारा भलीभाँति समझाये जानेपर भी तुम सब लोगोंने मेरा अभिनन्दन नहीं किया, इसलिये मेरे प्रति किये हुए उस अपमानके कारण तुमलोग पराभवको प्राप्त हुए हो।’ शुक्राचार्यके यों कहनेपर प्रह्लादकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। तब वे गद्गद वाणीद्वारा उनसे प्रार्थना करते हुए बोले—‘भृगुनन्दन ! आप हमलोगोंका परित्याग न करें। भार्गव ! हमलोग आपके आश्रित,

त्वय्यदृष्टे वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः ।  
 भक्तानर्हसि वै ज्ञातुं तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥ २११  
 यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन ।  
 अपध्यातास्त्वया हृद्य प्रविशामो रसातलम् ॥ २१२  
 ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया ।  
 एवं प्रत्यनुनीतो वै ततः कोपं नियम्य सः ।  
 उवाचैतान् न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् ॥ २१३  
 अवश्यं भाविनो हृथर्थाः प्रासव्या मयि जाग्रति ।  
 न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम् ॥ २१४  
 संज्ञा प्रणष्ठा या वोऽद्य कामं तां प्रतिपत्स्यथ ।  
 देवाभ्जित्वा सकृच्यापि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥ २१५  
 प्राप्ते पर्यायकाले च हीति ब्रह्माभ्यभाषत ।  
 मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरुर्जितम् ॥ २१६  
 युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि ।  
 एतावत्तं च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥ २१७  
 राज्यं सावर्णिके तुभ्यं पुनः किल भविष्यति ।  
 लोकानामीश्वरो भाव्यस्तव पौत्रः पुनर्बलिः ॥ २१८  
 एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम् ।  
 वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन् किल ॥ २१९  
 यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसंधिताः ।  
 तस्माद् वृत्तेन प्रीतेन तुभ्यं दत्तं स्वयम्भुवा ॥ २२०  
 देवराज्ये बलिर्भाव्य इति मामीश्वरोऽब्रवीत् ।  
 तस्माददृश्यो भूतानां कालापेक्षः स तिष्ठति ॥ २२१  
 प्रीतेन चापरो दत्तो वरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा ।  
 तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहितोऽसुरैः ॥ २२२  
 न हि शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद् विग्रभाषितुम् ।

सेवक और भक्त हैं, इसलिये आप हमें अपनाइये। आपके अदृष्ट हो जानेपर देवाचार्य बृहस्पतिने हमलोगोंको मोहमें डाल दिया था। आप अपनी दीर्घकालिक तपस्याद्वारा अर्जित दिव्यदृष्टिद्वारा स्वयं अपने भक्तोंको जान सकते हैं। भृगुनन्दन! यदि आप हमलोगोंपर कृपा नहीं करेंगे और हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन ही करते रहेंगे तो हमलोग आज ही रसातलमें प्रवेश कर जायेंगे' ॥ २०४—२१२ ॥

इस प्रकार अनुनय-विनय किये जानेपर शुक्राचार्यने दिव्यदृष्टिद्वारा यथार्थ तत्त्वको समझ लिया, तब उनके हृदयमें करुणा एवं अनुकम्पा उमड़ आयी और वे उमड़े हुए क्रोधको रोककर उन असुरोंसे इस प्रकार बोले—'प्रह्लाद! न तो तुमलोग डरो और न रसातलको ही जाओ। यों तो जो अवश्यम्भावी इष्ट-अनिष्ट कार्य हैं, वे तो मेरे जागरूक रहनेपर भी तुमलोगोंको प्राप्त होंगे ही, उन्हें अन्यथा नहीं किया जा सकता; क्योंकि दैवका विधान सबसे बलवान् होता है। मेरे शापानुसार तुमलोगोंकी जो चेतना नष्ट हो गयी है, उसे तो तुमलोग आज ही प्राप्त कर लोगे। साथ ही विपरीत समय आनेपर तुमलोगोंको देवताओंपर विजय पा लेनेपर भी एक बार पातालमें जाना पड़ेगा; क्योंकि ब्रह्माने पहले ही ऐसा बतलाया है। मेरी ही कृपासे तुमलोगोंने देवताओंके मस्तकपर पैर रखकर समूचे दस युगपर्यन्त त्रिलोकीके ऊर्जस्वी राज्यका उपभोग किया है। इतने ही दिनोंतक ब्रह्माने तुमलोगोंका राज्यकाल बतलाया था। सावर्णि-मन्वन्तरमें पुनः तुमलोगोंका राज्य होगा। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि त्रिलोकीका अधीश्वर होगा। ऐसा स्वयं भगवान् विष्णुने वाणीद्वारा त्रिलोकीके अपहरण कर लेनेपर तुम्हारे पौत्रसे परस्पर वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा था। वे सारी बातें अब उसके लिये घटित होंगी। चौंकि इसकी प्रवृत्तियाँ दस वर्षोंतक उत्तम बनी रहीं, इसलिये इसके व्यवहारसे प्रसन्न होकर स्वयम्भूने तुम्हें यह राज्य प्रदान किया है। देवराज्यपर बलि अधिष्ठित होगा—ऐसा मुझसे भगवान् शंकरने भी कहा था। इसी कारण वह कालकी प्रतीक्षा करता हुआ जीवोंके नेत्रोंके अगोचर होकर अवस्थित है। उस समय प्रसन्न हुए स्वयम्भूने तुम्हें एक दूसरा वरदान भी दिया था, इसलिये तुम असुरोंसहित निरुत्सुक रहकर कालकी प्रतीक्षा करो। विभो! यद्यपि मैं भविष्यकी सारी बातें जानता हूँ तथापि मैं पहले ही तुमसे उन घटनाओंका वर्णन नहीं कर सकता;

ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यं जानता विभो ॥ २२३  
 इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पते: ।  
 दैवतैः सह संसृष्टान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥ २२४  
 इत्युक्ता ह्यसुराः सर्वे काव्येनाक्लिष्टकर्मणा ।  
 हृष्टस्तेन ययुः सार्थं प्रह्लादेन महात्मना ॥ २२५  
 अवश्यं भाव्यमर्थं तु श्रुत्वा शुक्रेण भाषितम् ।  
 सकृदाशंसमानास्तु जयं शुक्रेण भाषितम् ।  
 दर्शिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान् समाहृयन् ॥ २२६  
 देवास्तदासुरान् दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान् ।  
 सर्वे सम्भृतसम्भारा देवास्तान् समयोधयन् ॥ २२७  
 देवासुरे तदा तस्मिन् वर्तमाने शतं समाः ।  
 अजयन्नसुरा देवांस्ततो देवा ह्यमन्त्रयन् ॥ २२८  
 यज्ञेनोपाहृयामस्तौ ततो जेष्यामहेऽसुरान् ।  
 तदोपामन्त्रयन् देवाः शण्डामकौ तु तावुभौ ॥ २२९  
 यज्ञे चाहूय तौ प्रोक्तौ त्यजेतामसुरान् द्विजौ ।  
 वयं युवां भजिष्यामः सह जित्वा तु दानवान् ॥ २३०  
 एवं कृताभिसंधी तौ शण्डामकौ सुरास्तथा ।  
 ततो देवा जयं प्रापुर्दानवाश्च पराजिताः ॥ २३१  
 शण्डामर्कपरित्यक्ता दानवा ह्यबलास्तथा ।  
 एवं दैत्याः पुरा काव्यशापेनाभिहतास्तदा ॥ २३२  
 काव्यशापाभिभूतास्ते निराधाराश्च सर्वशः ।  
 निरस्यमाना देवैश्च विविशुस्ते रसातलम् ॥ २३३  
 एवं निरुद्यमा देवैः कृताः कृच्छ्रेण दानवाः ।  
 ततः प्रभृति शापेन भृगोर्नैमित्तिकेन तु ॥ २३४  
 यज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्धर्मे प्रशिथिले प्रभुः ।

क्योंकि ब्रह्माजीने मुझे मना कर दिया है। मेरे ये दोनों शिष्य (शण्ड और अमर्क), जो बृहस्पतिके समान प्रभावशाली हैं, देवताओंके साथ ही उत्पन्न हुए तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे' ॥ २१३—२२४ ॥

सरलतापूर्वक कार्यको सम्पन्न करनेवाले शुक्राचार्यके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर असुरगण उन महात्मा प्रह्लादके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने वासस्थानको चले गये। उस समय उनके मनमें शुक्राचार्यद्वारा कथित यह विचार कि 'अवश्यम्भावी कार्य तो होगा ही' गूँज रहा था। कुछ दिन व्यतीत होनेपर उन्होंने सोचा कि शुक्राचार्यके कथनानुसार एक बार विजय तो होगी ही, अतः सभी असुरोंने विजयकी आशासे अपना-अपना कवच धारण कर लिया और शस्त्रास्त्रसे लैस हो देवताओंके निकट जाकर उन्हें ललकारा। देवताओंने जब यह देखा कि असुरगण सेनासहित रणभूमिमें आ डटे हैं, तब देवगण भी संगठित एवं युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित हो असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। वह देवासुर-संग्राम सौ वर्षोंतक चलता रहा। उसमें असुरोंने देवताओंको पराजित किया। तब देवताओंने परस्पर मन्त्रणा करके यह निश्चय किया कि जब हमलोग यज्ञके निमित्तसे उन दोनों (शण्ड और अमर्क)-को अपने यहाँ बुलायेंगे तभी असुरोंपर विजय पा सकेंगे। ऐसा परामर्श करके देवताओंने उन शण्ड और अमर्क—दोनोंको आमन्त्रित किया और अपने यज्ञमें बुलाकर उनसे कहा—'द्विजवरो! आपलोग असुरोंका पक्ष छोड़ दें। हमलोग आप दोनोंके सहयोगसे दानवोंको पराजित कर आपकी सेवा करेंगे।' इस प्रकार जब देवताओंके तथा शण्ड-अमर्क—दोनों दैत्याचार्योंके बीच संधि हो गयी, तब रणभूमिमें देवताओंको विजय प्राप्त हुई और दानवगण पराजित हो गये; क्योंकि शण्ड-अमर्कद्वारा परित्याग कर दिये जानेपर दानववृन्द बलहीन हो गये थे। इस प्रकार पूर्वकालमें शुक्राचार्यद्वारा दिये गये शापके कारण उस समय दैत्यगण मारे गये। अवशिष्ट दैत्यगण शुक्राचार्यके शापसे अभिभूत होनेके कारण जब सब ओरसे निराधार हो गये, साथ ही देवताओंने उन्हें खदेड़ना आरम्भ किया, तब वे विवश होकर रसातलमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार देवगण दानवोंको बड़ी कठिनाईसे उद्यमहीन अर्थात् युद्धविमुख कर पाये। तभीसे शुक्राचार्यके नैमित्तिक शापके कारण धर्मका विशेषरूपसे हास हो जानेपर धर्मकी पुनः स्थापना

कुर्वन् धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ २३५  
 प्रह्लादस्य निदेशो तु न स्थास्यन्त्यसुराश्च ये ।  
 मनुष्यवध्यास्ते सर्वे ब्रह्मेति व्याहरत् प्रभुः ॥ २३६  
 धर्मान्निरायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे ।  
 यज्ञं प्रवर्तयामासदेवो वैवस्वतेऽन्तरे ॥ २३७  
 प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्मा ह्यासीत् पुरोहितः ।  
 युगाख्यायां चतुर्थ्या तु आपन्नेषु सुरेषु वै ॥ २३८  
 सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे ।  
 द्वितीये नरसिंहाख्ये रुद्रो ह्यासीत् पुरोहितः ॥ २३९  
 बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सममं प्रति ।  
 दैत्यस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥ २४०  
 एतास्तित्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः ।  
 मानुषाः सप्त यान्यास्तु शापतस्ता निबोधत ॥ २४१  
 त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।  
 नष्टे धर्मे चतुर्थाशे मार्कण्डेयपुरःसरः ॥ २४२  
 पञ्चमः पञ्चदश्यां च त्रेतायां सम्बभूव ह ।  
 मान्धाता चक्रवर्ती तु तस्थौतथ्यपुरःसरः ॥ २४३  
 एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद् विभुः ।  
 जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः ॥ २४४  
 चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।  
 सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥ २४५  
 अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् ।  
 वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकण्ठपुरःसरः ॥ २४६  
 कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।  
 बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः ।  
 देवसुन्दरस्तपेण द्वैपायनपुरःसरः ॥ २४७  
 तस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याशिष्टे भविष्यति ।  
 कल्की तु विष्णुयशसः पाराशर्यपुरःसरः ।  
 दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥ २४८  
 सर्वाश्च भूतान् स्तिमितान् पाषण्डांश्चैव सर्वशः ।

और असुरोंका विनाश करनेके लिये भगवान् विष्णु बारंबार अवतीर्ण होते रहे ॥ २२५—२३५ ॥

पूर्वकालमें सामर्थ्यशाली ब्रह्माने प्रसङ्गवश ऐसा कहा था कि जो असुर प्रह्लादकी आज्ञाके वशीभूत नहीं रहेंगे, वे सभी मनुष्योंके हाथों मारे जायेंगे । चाक्षुष-मन्वन्तरमें धर्मके अंशसे साक्षात् भगवान् नारायणका अवतार हुआ था । अपने प्रादुर्भावके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरमें उन्होंने एक यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया था; उस यज्ञके पुरोहित ब्रह्मा थे । चौथे तामस-मन्वन्तरमें देवताओंके विपत्तिग्रस्त हो जानेपर हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये समुद्रतटपर नृसिंहका अवतार हुआ था । इस द्वितीय नृसिंहावतारमें रुद्र पुरोहित-पदपर आसीन थे । सातवें वैवस्वत-मन्वन्तरके त्रेतायुगमें, जब त्रिलोकीपर बलिका अधिकार था, उस समय तीसरा वामन-अवतार हुआ था । (उस कार्यकालमें धर्म पुरोहितका पद सँभाल रहे थे ।) द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी ये तीन दिव्य उत्पत्तियाँ बतलायी गयी हैं । अब अन्य सात सम्भूतियाँ, जो भृगुके शापवश मानव-योनिमें हुई हैं, उन्हें सुनिये । प्रथम त्रेतायुगमें, जब धर्मका चतुर्थांश नष्ट हो गया था, भगवान् मार्कण्डेयको पुरोहित बनाकर दत्तात्रेयके रूपमें अवतीर्ण हुए थे । पंद्रहवें त्रेतायुगमें चक्रवर्ती मान्धाताके रूपमें पाँचवाँ अवतार हुआ था । उस समय पुरोहितका पद महर्षि तथ्य (उत्तर्य)-को मिला था । उन्नीसवें त्रेतायुगमें छठा अवतार जमदग्निनन्दन महाबली परशुरामके रूपमें हुआ था, जो सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशके संहराक थे । उस समय महर्षि विश्वामित्र आदि सहायक बने थे । चौबीसवें त्रेतायुगमें सातवें अवतारके रूपमें रावणका वध करनेके लिये भगवान् श्रीराम महाराज दशरथके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे । उस समय महर्षि वसिष्ठ पुरोहित थे । अट्टाइसवें द्वापरयुगमें आठवें अवतारमें भगवान् विष्णु महर्षि पराशरसे वेदव्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए । उस समय जातूकण्ठने पुरोहित-पदको सुशोभित किया ॥ २३६—२४६ ॥

धर्मकी विशेषरूपसे स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके निमित्त नवें अवतारमें बुद्ध अवतीर्ण हुए । सुन्दर (सौन्दरानन्दके नायक) उनके सहचर रूपवाले थे । उनके नेत्र कमल-सरीखे थे । उनके पुरोहित महर्षि द्वैपायन थे । इसी युगकी समाप्तिके समय, जब संध्यामात्र अवशिष्ट रह जायगी, विष्णुयशके पुत्ररूपमें कल्किका अवतार होगा । इसी भावी दसवें अवतारमें पराशर-पुत्रव्यास और याज्ञवल्क्य पुरोहितका कार्यभार सँभालेंगे । उस समय भगवान् कल्कि आयुधधारी सैकड़ों एवं सहस्रों विप्रोंको साथ लेकर चारों

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैवृतः शतसहस्रशः ॥ २४९  
 निःशेषः क्षुद्रराज्ञस्तु तदा स तु करिष्यति ।  
 ब्रह्मद्विषः सपलांस्तु संहृत्यैव च तद्वपुः ॥ २५०  
 अष्टाविंशे स्थितः कल्किश्वरितार्थः ससैनिकः ।  
 शूद्रान् संशोधयित्वा तु समुद्रान्तं च वै स्वयम् ॥ २५१  
 प्रवृत्तचक्रो बलवान् संहारं तु करिष्यति ।  
 उत्सादयित्वा वृष्लान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥ २५२  
 ततस्तदा स वै कल्किश्वरितार्थः ससैनिकः ।  
 प्रजास्तं साधयित्वा तु समृद्धास्तेन वै स्वयम् ॥ २५३  
 अकस्मात् कोपितान्योऽन्यं भविष्यन्तीह मोहिताः ।  
 क्षपयित्वा तु तेऽन्योऽन्यं भाविनार्थेन चोदिताः ॥ २५४  
 ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत ।  
 नृपेष्वथ प्रणष्टेषु प्रजानां संग्रहात् तदा ॥ २५५  
 रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योऽन्यमाहवे ।  
 परस्परं निहत्वा तु निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ॥ २५६  
 पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यत्वे निष्परिग्रहाः ।  
 प्रणष्टाश्रमधर्मांश्च नष्टवर्णाश्रमास्तथा ॥ २५७  
 अद्वशूला जानपदाः शिवशूलाश्तुष्पथाः ।  
 प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २५८  
 हस्वदेहायुषश्वैव भविष्यन्ति वनौकसः ।  
 सरित्पर्वतवासिन्यो मूलपत्रफलाशनाः ॥ २५९  
 चीरचर्माजिनधराः संकरं घोरमाश्रिताः ।  
 उत्पातदुःखाः स्वल्पार्थं बहुबाधांश्च ताः प्रजाः ॥ २६०  
 एवं कष्टमनुप्राप्ताः काले संध्यांशके तदा ।  
 ततः क्षयं गमिष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु ॥ २६१  
 क्षीणे कलियुगे तस्मिस्ततः कृतमवर्तत ।  
 इत्येतत् कीर्तिं सम्यग् देवासुरविचेष्टितम् ॥ २६२  
 यदुवंशप्रसङ्गेन समासाद् वैष्णवं यशः ।  
 तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्धुहोस्तथा हानोः ॥ २६३

ओरसे धर्मविमुख जीवों, पाखण्डों और शूद्रवंशी राजाओंका सर्वथा विनाश कर डालेंगे; क्योंकि ब्रह्मद्वेषी शत्रुओंका संहार करनेके हेतु ही कल्कि-अवतार होता है। इस अद्वाईसवें युगमें भगवान् कल्कि सेनासहित सफलमनोरथ हो विराजमान रहेंगे। उस समय वे बलशाली भगवान् उन धर्महीन शूद्रोंका समूल विनाश करके अपने राज्यचक्रका विस्तार करते हुए पापियोंका संहार कर डालेंगे। तदुपरान्त कल्कि अपना कार्य पूरा करके सेनासहित विश्राम-लाभ करेंगे। उस समय सारी प्रजाएँ उनके प्रभावसे समृद्धिशालिनी होकर उनकी सेवामें लग जायेंगी। तत्पश्चात् भावी कार्यसे प्रेरित हुई प्रजाएँ मोहित होकर अकस्मात् एक-दूसरेपर कुपित हो जायेंगी और परस्पर लड़कर एक-दूसरेको मार डालेंगी। उस समय कार्यकाल समाप्त हो जानेपर भगवान् कल्कि भी अन्तर्हित हो जायेंगे ॥ २४७—२५४ ३ ॥

इस प्रकार प्रजाओंके संगठनसे राजाओंके नष्ट हो जानेपर जब कोई रक्षक नहीं रह जायगा, तब प्रजाएँ युद्धभूमिमें एक-दूसरेको मार डालेंगी। यों परस्पर मार-पीट कर वे आक्रमनरहित एवं अत्यन्त दुःखित हो जायेंगी। फिर तो वे परिवारहीन होकर समानरूपसे ग्रामों एवं नगरोंको छोड़कर वनकी राह लेंगी। उनके वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्म नष्ट हो जायेंगी। कलियुगकी समाजिके समय देशवासी अन्न बेचने लगेंगे, चौराहोंपर शिवकी मूर्तियाँ बिकने लगेंगी और स्त्रियाँ अपने शीलका विक्रय करेंगी अर्थात् वेश्या-कर्ममें प्रवृत्त हो जायेंगी। लोगोंके कद छोटे होंगे। उनकी आयु स्वल्प होगी। वे वनमें तथा नदीतट और पर्वतोंपर निवास करेंगे। कन्द-मूल, पत्तियाँ और फल ही उनके वस्त्र होंगे। वल्कल, पशुचर्म और मृगचर्म ही उनके वस्त्र होंगे। वे सभी भयंकर वर्णसंकरत्वके आश्रित हो जायेंगे। तरह-तरहके उपद्रवोंसे दुःखी रहेंगे। उनकी धन-सम्पत्ति घट जायेगी और वे अनेकों बाधाओंसे घिरे रहेंगे। इस प्रकार कष्टका अनुभव करती हुई वे सारी प्रजाएँ उस संध्यांशके समय कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायेंगी। इस कलियुगके व्यतीत हो जानेपर कृतयुगका प्रारम्भ होगा। इस प्रकार मैंने पूर्णरूपसे देवताओं और असुरोंकी चेष्टाका तथा यदुवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें संक्षेपरूपसे भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-के यशका वर्णन कर दिया। अब मैं तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु और अनुके वंशका क्रमशः वर्णन करूँगा ॥ २५५—२६३ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणेऽसुरशापो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें असुर-शाप-नामक सेंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४७ ॥

## अङ्गतालीसवाँ अध्याय

**तुर्वसु और द्रुहुके वंशका वर्णन, अनुके वंश-वर्णनमें बलिकी  
कथा और कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग**

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चात्मजः ।  
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः ॥ १  
करंधमस्तु त्रैसारिर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः ।  
दुष्यन्तं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत् ॥ २  
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा ।  
तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल ॥ ३  
दुष्यन्तस्य तु दायादो वरुथो नाम पार्थिवः ।  
वरुथात् तु तथाण्डीरः संधानस्तस्य चात्मजः ॥ ४  
पाण्डवश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च ।  
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्वोलाः सकेरलाः ॥ ५  
द्रुहोस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च ।  
सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चात्मजः ॥ ६  
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गान्धारविषयो महान् ।  
आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः ॥ ७  
गन्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।  
धृताच्च विदुषो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ॥ ८  
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्वं एव ते ।  
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे हुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ ९  
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः ।  
सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषुस्तथैव च ॥ १०  
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कोलाहलो नृपः ।  
कोलाहलस्य धर्मात्मा संजयो नाम विश्रुतः ॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! (ययातिके पञ्चम पुत्र) तुर्वसुका पुत्र गर्भ और उसका पुत्र गोभानु हुआ । गोभानुका पुत्र अजेय शूरवीर त्रिसारि हुआ । त्रिसारिका पुत्र करंधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ । उसने (संतानरहित होनेके कारण) पूरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाया । इस प्रकार पूर्वकालमें वृद्धावस्थाके परिवर्तनके समय ययातिद्वारा दिये गये शापके कारण तुर्वसुका वंश पूरुवंशमें प्रविष्ट हो गया था । दुष्यन्तका पुत्र राजा वरुथै था । वरुथसे आण्डीर (भुवमन्यु)-की उत्पत्ति हुई । आण्डीरके संधान, पाण्ड्य, केरल, चोल और कर्ण नामक पाँच पुत्र हुए । उनके समृद्धिशाली देश उन्हींके नामपर पाण्ड्य, चोल और केरल नामसे प्रसिद्ध हुए । (ययातिके चतुर्थ पुत्र) द्रुहुके सेतु और केतु (अन्यत्र सर्वत्र बधु) नामक दो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए । सेतुका पुत्र शरद्वान् और उसका पुत्र गन्धार हुआ, जिसके नामसे यह विशाल गान्धार जनपद विख्यात है । उस जनपदके आरट्ट (पंजाबका पश्चिम भाग) प्रदेशमें उत्पन्न हुए घोड़े अश्वजातिमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं । गन्धारका पुत्र धर्म और उसका पुत्र धृत हुआ । धृतसे विदुषका जन्म हुआ और उसका पुत्र प्रचेता हुआ । प्रचेताके सौ पुत्र हुए जो सब-के-सब राजा हुए । वे सभी उत्तर दिशामें स्थित म्लेच्छ-राज्योंके अधीश्वर थे ॥ १—९ ॥

(ययातिके तृतीय पुत्र) अनुके सभानर, चाक्षुष और परमेषु नामक तीन शूरवीर एवं परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए । सभानरका पुत्र विद्वान् राजा कोलाहल हुआ । कोलाहलका धर्मात्मा पुत्र संजय नामसे

१. ऋषेदमें यह तुर्वश है और ४ । ३० । १६ से १० । ६२ । १० तक निरन्तर अपने सभी उपर्युक्त भाइयोंके साथ वर्णित है । भागवत १ । २३ । १६ तथा विष्णुपुराण ४ । १६ । ३ आदिमें तुर्वसके पुत्रका नाम 'वह्नि' और उसके पुत्रका नाम 'गोभानु'की जगह 'भर्ग' बतलाया गया है ।

२. अन्यत्र प्रायः सर्वत्र इसका 'त्रिसारि'की जगह 'त्रिभानु' नाम आया है ।

३. तुर्वसुके वंशके पौरव वंशमें प्रविष्ट होनेकी कथा सभी पुराणोंमें (विशेषकर वायु ० ९९ । ५, ब्रह्मण्ड ० ३ । ७५ । ७ तथा विष्णुपुराण ४ । १६ । ६ में बहुत) स्पष्ट रूपसे आयी है ।

४. इनके दूसरे नाम वितथ एवं भरद्वाज भी हैं ।

५. इस प्रदेशकी महाभारत, कर्णपर्व ४४ । ३७-३८ (श्लोक) से ४५ (श्लोक ३० तक) अध्यायोंतकमें चर्चा एवं आलोचना है ।

संजयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरंजयः ।  
 जनमेजयो महाराजः पुरंजयसुतोऽभवत् ॥ १२  
 जनमेजयस्य राजर्षमहाशालोऽभवत् सुतः ।  
 आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाभवत् ॥ १३  
 महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ।  
 समद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः ॥ १४  
 महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ ।  
 उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ ॥ १५  
 उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिसम्भवाः ।  
 भृशा कृशा नवा दर्शा या च देवी दृषद्वती ॥ १६  
 उशीनरस्य पुत्रास्तु तासु जाताः कुलोद्ध्राहाः ।  
 तपसा ते तु महता जाता वृद्धस्य धार्मिकाः ॥ १७  
 भृशायास्तु नृगः पुत्रो नवाया नव एव च ।  
 कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाः सुव्रतोऽभवत् ।  
 दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिबिरौशीनरो नृपः ॥ १८  
 शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्रत्वारो लोकविश्रुताः ।  
 पृथुदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा ॥ १९  
 तेषां जनपदाः स्फीताः कैकया मद्रकास्तथा ।  
 सौवीराश्चैव पौराश्च नृगस्य केकयास्तथा ॥ २०  
 सुव्रतस्य तथाम्बष्टा कृशस्य वृषला पुरी ।  
 नवस्य नवराष्टं तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु ॥ २१  
 तितिक्षुरभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः ।  
 वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत् सुतः ॥ २२  
 सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः ।  
 जातो मानुषयोन्या तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ॥ २३  
 महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना ।  
 पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान् पञ्च पार्थिवान् ॥ २४  
 अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुहं तथैव च ।  
 पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते ।  
 बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ २५  
 बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः ।  
 महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ॥ २६  
 संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः ।  
 त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥ २७

विख्यात था । संजयका पुरंजय नामक वीरवर पुत्र हुआ । महाराज जनमेजय (प्रथम) पुरंजयके पुत्र हुए । राजर्षि जनमेजयसे महाशाल नामक पुत्र पैदा हुआ जो इन्द्रतुल्य तेजस्वी एवं प्रतिष्ठित कीर्तिवाला राजा हुआ । उन महाशालके महामना नामक पुत्र पैदा हुआ जो परम धर्मात्मा, महान् मनस्वी तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ । महामनाने दो पुत्रोंको जन्म दिया । वे दोनों धर्मज्ञ उशीनर और तितिक्षु नामसे विख्यात हुए । उशीनरकी भृशा, कृशा, नवा, दर्शा और देवी दृषद्वती—ये पाँच पलियाँ थीं, जो सभी राजर्षियोंकी कन्याएँ थीं । उनके गर्भसे उशीनरके परम धर्मात्मा एवं कुलवर्धक पुत्र उत्पन्न हुए थे । वे सभी उशीनरकी वृद्धावस्थामें महान् तपके फलस्वरूप पैदा हुए थे । भृशाका पुत्र नृग और नवाका पुत्र नव हुआ । कृशाने कृशको जन्म दिया । दर्शके सुब्रत नामक पुत्र हुआ । दृषद्वतीके पुत्र उशीनर-नन्दन राजा शिबि हुए । शिबिके पृथुदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक नामक चार विश्वविख्यात पुत्र हुए । ये सभी शिबिगण नामसे भी प्रसिद्ध थे । इनके समृद्धिशाली जनपद केकय (व्यास और शतलजके मध्य पंजाबका पश्चिमोत्तर भाग), मद्रक, सौवीर (सिंधका उत्तरी भाग) और पौर नामसे विख्यात थे । नृगका जनपद केकय और सुब्रतका अम्बष्ट नामसे प्रसिद्ध था । कृशकी राजधानी वृषलापुरी थी । नव नवराष्टके अधीश्वर थे । अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनिये ॥ १०—२१ ॥

तितिक्षु पूर्व दिशामें विख्यात राजा हुआ । उसका पुत्र वृषद्रथ और वृषद्रथका पुत्र सेन हुआ । सेनके सुतपा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपाका पुत्र बलि हुआ । महायोगी बलि अपने वंशके नष्ट हो जानेपर संतानकी कामनासे मानव-योनिमें उत्पन्न हुआ था । इसे महान् आत्मबलसे सम्पन्न भगवान् विष्णुने वामनरूपसे बन्धनोद्वाग बाँध लिया था । राजा बलिने पाँच क्षेत्रज पुत्रोंको जन्म दिया जो सभी आगे चलकर पृथ्वीपति हुए । उसने अङ्ग, वङ्ग, सुह, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामक पुत्रोंको पैदा किया जो बलिके क्षेत्रज पुत्र कहलाते हैं । ये बलिपुत्र ब्राह्मणसे उत्पन्न होनेके कारण ब्राह्मण थे और सामर्थ्यशाली बलिके वंशप्रवर्तक हुए । पूर्वकालमें ब्रह्माने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् बलिको ऐसा वरदान दिया था कि ‘तुम महान् योगी होगे । कल्पपर्यन्त परिमाणवाली तुम्हारी आयु होगी । तुम संग्राममें किसीसे पराजित नहीं होगे । धर्मके विषयमें तुम्हारी बुद्धि उत्तम होगी । तुम त्रिकालदर्शी और असुखवंशमें प्रधान

जयं चाप्रतिमं युद्धे धर्मेतत्त्वार्थदर्शनम्।  
चतुरो नियतान् वर्णान् स वै स्थापयिता प्रभुः ॥ २८  
तेषां च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुहकास्तथा।  
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्य तु निबोधत ॥ २९

ऋष्य ऊचुः

कथं बलेः सुता जाताः पञ्च तस्य महात्मनः।  
किं नाम्नी महिषी तस्य जनिता कतमो ऋषिः ॥ ३०  
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्।  
माहात्म्यं च प्रभावं च निखिलेन वदस्व तत् ॥ ३१

सूत उवाच

अथौशिज इति ख्यात आसीद् विद्वान् ऋषिः पुरा।  
पत्नी वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः ॥ ३२  
उशिजस्य यवीयान् वै भ्रातृपत्नीमकामयत्।  
बृहस्पतिर्महातेजा ममतामेत्य कामतः ॥ ३३  
उवाच ममता तं तु देवरं वरवर्णिनी।  
अन्तर्वल्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्टस्य तु विरम्यताम् ॥ ३४  
अयं तु मे महाभाग गर्भः कुप्येद् बृहस्पते।  
औशिजो भ्रातृजन्यस्ते सोपाङ्गं वेदमुद्घिरन् ॥ ३५  
अपोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि।  
अस्मिन्नेवं गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो ॥ ३६  
एवमुक्तस्तथा सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः।  
कामात्मा स महात्मापि न मनः सोऽभ्यवारयत् ॥ ३७  
सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धमकामया।  
उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत ॥ ३८  
भो तात वाचामधिप द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः।  
अपोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहागतः ॥ ३९  
सोऽशपत् तं ततः कुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः।  
पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ॥ ४०  
यस्मात् त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपि निषेधसि।  
मामेवमुक्तवांस्तस्मात् तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ ४१  
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत।  
अथौशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥ ४२  
ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसते भ्रातुराश्रमे।  
स धर्मान् सौरभेयांस्तु वृषभाच्छुतवांस्ततः ॥ ४३  
तस्य भ्राता पितृव्यो यश्चकार भरणं तदा।

होगे। युद्धमें तुम्हें अनुपम विजय प्राप्त होगी। धर्मके विषयमें तुम तत्त्वार्थदर्शी होगे।' इसीके परिणामस्वरूप

सामर्थ्यशाली बलि चारों नियत (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,

शूद्र) वर्णोंकी स्थापना करनेवाला हुआ। बलिके पाँचों

क्षेत्रज पुत्रोंके वंश भी उन्हींके नामपर अङ्ग, वङ्ग,

सुहक, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामसे विख्यात हुए\*।

उनमें अङ्गके वंशका वर्णन सुनिये ॥ २२—५० ॥

ऋषियो! दीर्घतमाके प्रभावसे सुदेष्णाका जो ज्येष्ठ

पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अङ्ग था। तत्पश्चात् कलिङ्ग,

पुण्ड्र, सुहक और वङ्गराजका जन्म हुआ। ये पाँचों दैत्यराज-

\* इनके वंशजातिवालोंके कारण ये जनपद भी इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हुए। इनमें अङ्ग—भागलपुर, वङ्ग—पश्चिम बंगाल, सुहा—आसाम, पुण्ड्र—आजका बंगला देश तथा कलिङ्ग—उडीसा है।

तस्मिन् निवसतस्तस्य यदृच्छैवागतो वृषः ॥ ४४  
 यज्ञार्थमाहृतान् दर्भश्चिर सुरभीसुतः ।  
 जग्राह तं दीर्घतमा: शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम् ॥ ४५  
 तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात् पदम् ।  
 ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर ॥ ४६  
 न मयाऽसादितस्तात बलवांस्त्वत्समः क्वचित् ।  
 मम चान्यः समो वापि न हि मे बलसंख्यया ।  
 मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु ॥ ४७  
 एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वं क्व यास्यसि ।  
 एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम् ॥ ४८

वृषभ उवाच

नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च ।  
 भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैव पेयापेयं तथैव च ॥ ४९  
 द्विपदां बहवो होते धर्म एष गवां स्मृतः ।  
 कार्याकार्ये न वागम्यागमनं च तथैव च ॥ ५०

सूत उवाच

गवां धर्मं तु वै श्रुत्वा सम्भान्तस्तु विसृज्य तम् ।  
 शक्त्यान्नपानदानात् तु गोपतिं सम्प्रसादयत् ॥ ५१  
 प्रसादिते गते तस्मिन् गोधर्मं भक्तिस्तु सः ।  
 मनसैव समादध्यौ तत्रिष्टस्तत्परो हि सः ॥ ५२  
 ततो यवीयसः पलीं गौतमस्याभ्यपद्यत ।  
 कृतावलेपां तां मत्वा सोऽनद्वानिव न क्षमे ॥ ५३  
 गोधर्मं तु परं मत्वा स्नुषां तामभ्यपद्यत ।  
 निर्भत्स्य चैनं रुद्ध्वा च बाहुभ्यां सम्प्रगृह्य च ॥ ५४  
 भाव्यमर्थं तु तं ज्ञात्वा माहात्म्यात् तमुवाच सा ।  
 विपर्ययं तु त्वं लब्ध्वा अनद्वानिव वर्तसे ॥ ५५  
 गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात् प्रार्थयन् सुताम् ।  
 दुर्वृत्तं त्वां त्यजाम्यद्य गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा ॥ ५६  
 काष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाभसि समुत्सृजत् ।  
 तस्मात् त्वमन्धो वृद्धश्च भर्तव्यो दुरधिष्ठितः ॥ ५७  
 तमुह्यमानं वेगेन स्रोतसोऽभ्याशमागतः ।  
 जग्राह तं स धर्मात्मा बलिवैरोचनिस्तदा ॥ ५८  
 अन्तःपुरे जुगोपैनं भक्ष्यभोज्यैश्च तर्पयन् ।  
 प्रीतश्चैवं वरेणैवच्छन्दयामास वै बलिम् ॥ ५९  
 तस्माच्च स वरं वक्रे पुत्रार्थं दानवर्षभः ।  
 संतानार्थं महाभाग भार्यायां मम मानद ।  
 पुत्रान् धर्मार्थतत्त्वज्ञानुत्पादयितुमर्हसि ॥ ६०

बलिके क्षेत्रज पुत्र थे । ये सभी पुत्र महर्षि दीर्घतमाद्वारा बलिको प्रदान किये गये थे । तदनन्तर उन्होंने मानव-योनिमें कई संतानें उत्पन्न कीं । एक बार सुरभि (गौ) दीर्घतमाके पास आकर उनसे बोली—‘विभो ! आपने हम लोगोंके प्रति अनन्यभक्ति होनेके कारण भलीभाँति विचारकर पशु-धर्मको प्रमाणित कर दिया है, इसलिये मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ । अनघ ! आपके शरीरमें बृहस्पतिका अंशभूत जो यह पाप स्थित है, उस घोर अन्धकारको सूँघकर मैं आपसे दूर किये देती हूँ । साथ ही आपके शरीरसे बुढ़ापा, मृत्यु और अंधकारको भी सूँघकर हटा दे रही हूँ ।’ (ऐसा कहकर सुरभिने उनके शरीरको सूँधा ।) सुरभिके सूँघते ही वे मुनिश्रेष्ठ दीर्घतमा तुरन्त दीर्घ आयु, सौन्दर्यशाली शरीर और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त हो गये ॥ ५१—८३ ॥

इस प्रकार गौद्वारा अन्धकारके नष्ट कर दिये जानेपर वे गौतम नामसे प्रसिद्ध हुए । तदनन्तर कक्षीवान् अपने पिता गौतमके साथ गिरिन्रिजको जाकर उन्हींके साथ निवास करता हुआ चिरकालिक तपस्यामें संलग्न हो गया । वहाँ वह नित्य

एवमुक्तोऽथ देवर्षिस्तथास्त्वत्युक्तवान् प्रभुः ।  
स तस्य राजा स्वां भार्या सुदेष्णां नाम प्राहिणोत् ।  
अन्थं वृद्धं च तं ज्ञात्वा न सा देवी जगाम ह ॥ ६१  
शूद्रां धात्रेयिकां तस्मादन्धाय प्राहिणोत् तदा ।  
तस्यां काक्षीवदादींश्च शूद्रयोनावृषिर्विर्शी ॥ ६२  
जनयामास धर्मात्मा शूद्रानित्येवमादिकम् ।  
उवाच तं बली राजा दृष्ट्वा काक्षीवदादिकान् ॥ ६३

राजोवाच

प्रवीणानृषिधर्मस्य चेश्वरान् ब्रह्मवादिनः ।  
विद्वान् प्रत्यक्षधर्माणां बुद्धिमान् वृत्तिमाज्जुचीन् ॥ ६४  
ममैव चेति होवाच तं दीर्घतमसं बलिः ।  
नेत्युवाच मुनिस्तं वै ममैवमिति चाब्रवीत् ॥ ६५  
उत्पन्नाः शूद्रयोनौ तु भवच्छन्देऽसुरोत्तम ।  
अन्थं वृद्धं च मां ज्ञात्वा सुदेष्णा महिषी तव ।  
प्राहिणोदवमानान्मे शूद्रां धात्रेयिकां नृप ॥ ६६  
ततः प्रसादयामास बलिस्तमृषिसत्तमम् ।  
बलिः सुदेष्णां तां भार्या भर्त्सयामास दानवः ॥ ६७  
पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् ।  
तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा ॥ ६८  
दघ्ना लवणमिश्रेण त्वभ्यक्तं मधुकेन तु ।  
लिह मामजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम् ।  
ततस्त्वं प्राप्त्यसे देवि पुत्रान् वै मनसेप्सितान् ॥ ६९  
तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा ।  
तस्य सापानमासाद्य देवी पर्यहरत् तदा ॥ ७०  
तामुवाच ततः सोऽथ यत् ते परिहृतं शुभे ।  
विनापानं कुमारं तु जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७१

सुदेष्णोवाच

नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं मे दातुमीदृशम् ।  
तोषितश्च यथाशक्ति प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ७२

दीर्घतमा उवाच

तवापचाराद् देव्येष नान्यथा भविता शुभे ।  
नैव दास्यति पुत्रस्ते पौत्रो वै दास्यते फलम् ॥ ७३  
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति ।  
तस्माद् दीर्घतमाङ्गेषु कुक्षौ स्पृष्टवेदमब्रवीत् ॥ ७४  
प्राशितं यद्यदङ्गेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते ।  
तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्णमास्यामिवोद्गराट् ॥ ७५

पिताका दर्शन और स्पर्श करता था। दीर्घकालके पश्चात् महान् तपस्यासे शुद्ध हुए कक्षीवान् ने शूद्रा माताके गर्भसे उत्पन्न हुए शरीरको तपाकर ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति कर ली। तब पिता गौतमने उससे कहा—‘बेटा! तुम्हारे-जैसे यशस्वी सत्पुत्रसे मैं पुत्रवान् हो गया हूँ। धर्मज्ञ! अब मैं कृतार्थ हो गया।’ ऐसा कहकर गौतम अपने शरीरका त्याग कर ब्रह्मलोकको चले गये। ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करके कक्षीवान् ने हजारों पुत्रोंको उत्पन्न किया। कक्षीवान् के वे पुत्र कौष्माण्ड और गौतम नामसे विख्यात हुए ॥ ८४—८९ ॥

इधर बलिने अपने पाँचों निष्पाप पुत्रोंका अभिनन्दन करके उनसे कहा—‘पुत्रो! मैं कृतार्थ हो गया।’ स्वयं धर्मात्मा एवं सामर्थ्यशाली बलि योगमायासे समावृत था। वह सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य रहकर कालकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन पुत्रोंमें अङ्गका पुत्र राजा दधिवाहन हुआ। राजा दिविरथ दधिवाहनके पुत्र कहे जाते हैं। दिविरथका पुत्र विद्वान् राजा धर्मरथ था। ये धर्मरथ बड़े सम्पत्तिशाली नरेश थे। इन्होंने विष्णुपद पर्वतपर महात्मा शुक्राचार्यके साथ सोमरसका पान किया था। धर्मरथका पुत्र चित्ररथ हुआ। उसका पुत्र सत्यरथ हुआ और उससे दशरथका जन्म हुआ जो लोमपाद नामसे विख्यात था। उसके शान्ता नामकी एक (दत्रिमा) कन्या हुई थी।

भविष्यन्ति कुमारास्तु पञ्च देवसुतोपमाः ।  
तेजस्विनः सुवृत्ताश्च यज्वानो धार्मिकाश्च ते ॥ ७६

सूत उवाच

तदंशस्तु सुदेष्याया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत ।  
अङ्गस्तथा कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्यस्तथैव च ॥ ७७  
वङ्गराजस्तु पञ्चते बले: पुत्राश्च क्षेत्रजाः ।  
यस्यैते दीर्घतमसा बलेदत्ताः सुतास्तथा ॥ ७८  
प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारयन्त्स्ततः ।  
ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः ॥ ७९  
ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत् ।  
विचार्य यस्माद् गोर्धर्मं प्रमाणं ते कृतं विभो ॥ ८०  
भक्त्या चानन्ययास्मासु तेन प्रीतास्मि तेऽनघ ।  
तस्मात् तु भृत्यं तमो दीर्घमाद्यायापनुदामि वै ॥ ८१  
बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि ।  
जरां मृत्युं तमश्चैव आद्यायापनुदामि ते ॥ ८२  
सद्यः स ध्रातमात्रस्तु अभितो मुनिसत्तमः ।  
आयुष्मांश्च वपुष्मांश्च चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत् ॥ ८३  
गोऽभ्याहते तमसि वै गौतमस्तु ततोऽभवत् ।  
कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम् ॥ ८४  
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुर्वै स ह्युपविष्टश्चिरं तपः ।  
ततः कालेन महता तपसा भावितस्तु सः ॥ ८५  
विधूय मातृजं कायं ब्राह्मणं प्राप्तवान् विभुः ।  
ततोऽब्रवीत् पिता तं वै पुत्रवानस्म्यहं त्वया ॥ ८६  
सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञं कृतार्थोऽहं यशस्विना ।  
मुक्त्वा ऽत्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान् ब्रह्मणः क्षयम् ॥ ८७  
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान् ।  
कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवतः सुताः ॥ ८८  
इत्येष दीर्घतमसो बलेवैरोचनस्य च ।  
समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा ॥ ८९  
बलिस्तानभिनन्द्याह पञ्च पुत्रानकल्पषान् ।  
कृतार्थः सोऽपि धर्मात्मा योगमायावृतः स्वयम् ॥ ९०  
अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः ।  
तत्राङ्गस्य तु दायादो राजासीद् दधिवाहनः ॥ ९१  
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः ।  
आसीद् दिविरथापत्यं विद्वान् धर्मरथो नृपः ॥ ९२

दशरथका पुत्र महायशस्वी शूरवीर चतुरङ्ग हुआ ।  
चतुरङ्गका पुत्र पृथुलाक्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ । अपने  
कुलकी वृद्धि करनेवाला यह पृथुलाक्ष महर्षि ऋष्यशृङ्गकी  
कृपासे पैदा हुआ था । पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र  
हुआ । चम्पकी राजधानीका नाम चम्पा (भागलपुर)  
था, जो पहले मालिनी नामसे प्रसिद्ध थी । पूर्णभद्रकी  
कृपासे चम्पका पुत्र हर्यङ्ग हुआ । इस राजाके यज्ञमें  
महर्षि विभाषणकर्ता मन्त्रोद्घारा एक ऐसे हस्तीको  
भूतलपर अवतीर्ण किया था जो शत्रुओंको विमुख  
कर देनेवाला एवं उत्तम वाहन था । हर्यङ्गका पुत्र  
भद्ररथ पैदा हुआ । भद्ररथका पुत्र राजा बृहत्कर्मा  
हुआ । उसका पुत्र बृहद्भानु हुआ । उससे महात्मवान्‌का  
जन्म हुआ । राजेन्द्र बृहद्भानुने एक अन्य पुत्रको भी  
उत्पन्न किया था जिसका नाम जयद्रथ था । उससे  
राजा बृहद्रथका जन्म हुआ । बृहद्रथसे विश्वविजयी  
जनमेजय पैदा हुआ था । उसका पुत्र अङ्ग था और  
उससे राजा कर्णकी उत्पत्ति हुई थी । कर्णका वृषसेन और  
उसका पुत्र पृथुसेन हुआ । द्विजवरो! ये सभी राजा अङ्गके  
वंशमें उत्पन्न हुए थे, मैंने इनका आनुपूर्वी विस्तारपूर्वक  
वर्णन कर दिया । अब आप लोग पूरके वंशका  
वर्णन सुनिये ॥ ९०—९०३ ॥

स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ।  
 सोमः शुक्रेण वै राजा सह पीतो महात्मना ॥ १३  
 अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल।  
 तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद् दशरथः किल ॥ १४  
 लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत्।  
 अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशः ॥ १५  
 ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः।  
 चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ॥ १६  
 पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह।  
 चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनी भवत् ॥ १७  
 पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत्।  
 यज्ञे विभाण्डकाच्चास्य वारणः शत्रुवारणः ॥ १८  
 अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्।  
 हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल ॥ १९  
 अथ भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा जनेश्वरः।  
 बृहद्भानुः सुतस्तस्य तस्माज्जे महात्मवान् ॥ २००  
 बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम्।  
 नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद् बृहद्रथो नृपः ॥ २०१  
 आसीद् बृहद्रथाच्चैव विश्वजिज्जनमेजयः।  
 दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्मात् कर्णोऽभवन्नृपः ॥ २०२  
 कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः।  
 एतेऽङ्गस्यात्मजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।  
 विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु शृणुत द्विजाः ॥ २०३

ऋषय ऊचुः

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः।  
 एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥ २०४

सूत उवाच

बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नामा बृहन्मनाः।  
 तस्य पतीद्वयं ह्यासीच्छैव्यस्य तनये हुभे।  
 यशोदेवी च सत्या च तयोर्वशं च मे शृणु ॥ २०५  
 जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्।  
 सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम् ॥ २०६  
 विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः।  
 बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः ॥ २०७  
 सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः।  
 यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः।  
 तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम् ॥ २०८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें अङ्गतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४८ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कर्ण कैसे अधिरथ सूतके पुत्र थे, पुनः किस प्रकार अङ्गके पुत्र कहलाये? इस रहस्यको सुननेकी हम लोगोंकी उत्कट इच्छा है, इसका वर्णन कीजिये; क्योंकि आप कथा कहनेमें परम प्रवीण हैं ॥ १०४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बृहद्भानुका पुत्र बृहन्मना नामका राजा हुआ। उसके दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों शैव्यकी कन्याएँ थीं। उनका नाम यशोदेवी और सत्या था। अब मुझसे उन दोनोंका वंश-वर्णन सुनिये। बृहन्मनाके संयोगसे यशोदेवीने राजा जयद्रथको और सत्याने विश्वविख्यात विजयको जन्म दिया था। विजयका पुत्र बृहत्पुत्र और उसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथका पुत्र महामना सत्यकर्मा हुआ। सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ हुआ। यही अधिरथ सूत नामसे भी विख्यात था, जिसने (गङ्गामें बहते हुए) कर्णको पकड़ा था। इसी कारण कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते हैं। इस प्रकार कर्णके प्रति जो किंवदन्ती फैली है, उसे पूर्णतया मैंने आप लोगोंसे कह दिया ॥ १०५—१०८ ॥

## उनचासवाँ अध्याय

पूरु-वंशके वर्णन-प्रसङ्गमें भरत-वंशकी कथा, भरद्वाजकी उत्पत्ति और उनके वंशका कथन, नीप-वंशका वर्णन तथा पौरवोंका इतिहास

सूत उवाच

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः ।  
 प्राचीत्वतः सुतस्तस्य यः प्राचीमकरोद् दिशम् ॥ १  
 प्राचीत्वतस्य तनयो मनस्युश्च तथाभवत् ।  
 राजा वी( पी ) तायुधो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥ २  
 दायादस्तस्य चाप्यासीद् धुम्धुर्नाम महीपतिः ।  
 धुम्धोर्बहुविधः पुत्रः संयातिस्तस्य चात्मजः ॥ ३  
 संयातेस्तु रहंवर्चा भद्राश्वस्तस्य चात्मजः ।  
 भद्राश्वस्य धृतायां तु दशाप्सरसि सूनवः ॥ ४  
 औचेयुश्च हषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः ।  
 धृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः ॥ ५  
 धर्मेयुः संनतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश ।  
 औचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ॥ ६  
 तस्यां स जनयामास रन्तिनारं महीपतिम् ।  
 रन्तिनारो मनस्विन्यां पुत्राञ्ज्ञे पराञ्जुभान् ॥ ७  
 अमूर्तरयसं वीरं त्रिवनं चैव धार्मिकम् ।  
 गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा ॥ ८  
 इलिना तु यमस्यासीत् कन्या साजनयत् सुतम् ।  
 त्रिवनाद् दयितं पुत्रमैलिनं ब्रह्मवादिनम् ॥ ९  
 उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजात् ।  
 ऋष्यन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ १०  
 चक्रवर्ती ततो जज्ञे दुष्यन्तात् समितिञ्चयः ।  
 शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना च भारताः ॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! (यथातिके सबसे छोटे पुत्र) पूरुका पुत्र महातेजस्वी राजा जनमेजय (प्रथम) था । उसका पुत्र प्राचीत्वत (प्राचीनवंत) हुआ, जिसने प्राची (पूर्व) दिशा बसायी । प्राचीत्वतका पुत्र मनस्यु\* हुआ । मनस्युका पुत्र राजा वीतायुध (अभय) हुआ । उसका पुत्र धुम्धु नामका राजा हुआ । धुम्धुका पुत्र बहुविध (बहुविद्य, अन्यत्र बहुगव) और उसका पुत्र संयाति हुआ । संयातिका पुत्र रहंवर्चा और उसका पुत्र भद्राश्व (रौद्राश्व) हुआ । भद्राश्वके धृता (धृताची, अन्यत्र मिश्रकेशी) नामकी अप्सराके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए । उन दसोंके नाम हैं—औचेयु (अधिकांश पुराणोंमें ऋचेयु), हषेयु, कक्षेयु, सनेयु, धृतेयु, विनेयु, श्रेष्ठ स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु और पुण्येयु । औचेयु (ऋचेयु)-की पत्नीका नाम ज्वलना था । वह नागराज तक्षककी कन्या थी । उसके गर्भसे उन्होंने भूपाल रन्तिनार (यह प्रायः सर्वत्र मतिनार, पर भागवतमें रन्तिभार है) -को जन्म दिया । रन्तिनारने अपनी पत्नी मनस्विनीके गर्भसे कई सुन्दर पुत्रोंको उत्पन्न किया, जिनमें वीरवर अमूर्तरय और धर्मात्मा त्रिवन प्रधान थे । उसकी तीसरी संतति गौरी नामकी सुन्दरी कन्या थी, जो मान्धाताकी जननी हुई । इलिना यमराजकी कन्या थी । उसने त्रिवनसे ब्रह्मवादमें श्रेष्ठ पराक्रमी ऐलिन (ऐलिक, त्रंसु या जंसु) नामक प्रिय पुत्र उत्पन्न किया । इलिना-नन्दन ऐलिन (जंसु)-के संयोगसे उपदानवीने ऋष्यन्त, दुष्यन्त, प्रवीर तथा अनघ नामक चार पुत्रोंको प्राप्त किया । इनमें द्वितीय पुत्र राजा दुष्यन्तके संयोगसे शकुन्तलाके गर्भसे भरतका जन्म हुआ, जो आगे चलकर संग्राम-विजयी चक्रवर्ती सप्तराट् हुआ । उसीके नामपर उसके वंशधर 'भारत' नामसे कहे जाने लगे ॥ १—११ ॥

\* महाभारत १ । १४ । १ तथा अन्य वायु, विष्णु, ब्रह्माण्डादि पुराणोंमें प्राचीनवंत या प्राचीनवंशका पुत्र प्रवीर और उसका पुत्र मनस्यु कहा गया है । इसमें आगे भी जहाँ-तहाँ कुछ पुरुष छोड़ दिये गये हैं जो पढ़ते समय स्पष्ट ज्ञात हो जाता है ।

दौष्यन्ति प्रति राजानं वागूचे चाशरीरिणी।  
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ १२  
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम्।  
रेतोधां नयते पुत्रः परेतं यमसादनात्।  
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ १३  
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल।  
पुत्राणां मातृकात् कोपात् सुप्रहान् संक्षयः कृतः ॥ १४  
ततो मरुद्धिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः।  
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्धिर्भरतस्य तु ॥ १५  
ऋग्य ऊचुः

भरतस्य भरद्वाजः पुत्रार्थं मारुतैः कथम्।  
संक्रामितो महातेजास्तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ १६  
सूत उवाच

पत्न्यामापन्नसत्त्वायामुशिजः स स्थितो भुवि।  
भ्रातुर्भार्या स दृष्ट्वा तु बृहस्पतिरुवाच ह ॥ १७  
उपतिष्ठ स्वलंकृत्य मैथुनाय च मां शुभे।  
एवमुक्तोब्रवीदेनं स्वयमेव बृहस्पतिम् ॥ १८  
गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा।  
अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मं चैवं विगर्हितम् ॥ १९  
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमेव बृहस्पतिः।  
नोपदेष्टव्यो विनयस्त्वया मे वरवर्णिनि ॥ २०  
धर्षमाणः प्रसहैनां मैथुनायोपचक्रमे।  
ततो बृहस्पतिं गर्भो धर्षमाणमुवाच ह ॥ २१  
संनिविष्टो ह्यहं पूर्वमिह नाम बृहस्पते।  
अमोघरेताश्च भवान् नावकाश इह द्वयोः ॥ २२  
एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह।  
यस्मात् त्वमीदृशे काले सर्वभूतेष्पिते सति।  
अभिषेधसि तस्मात् त्वं तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ २३  
ततः कामं संनिवर्त्य तस्यानन्दाद् बृहस्पतेः।  
तद्रेतस्त्वपतद् भूमौ निवृत्तं शिशुकोऽभवत् ॥ २४  
सद्योजातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताब्रवीत्।  
गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वैनं बृहस्पते ॥ २५  
एवमुक्त्वा गता सा तु गतायां सोऽपि तं त्यजत्।

इसी दुष्यन्त-पुत्र भरतके विषयमें आकाशवाणीने राजा दुष्यन्तसे कहा था—‘दुष्यन्त ! माताका गर्भाशय तो एक चमड़ेके थैलेके समान है, उसमें गर्भाधान करनेके कारण पुत्र पिताका ही होता है; अतः जो जिससे पैदा होता है, वह उसका आत्मस्वरूप ही होता है। इसलिये तुम अपने पुत्रका भरण-पोषण करो और शकुन्तलाका अपमान मत करो। पुत्र अपने मरे हुए पिताको यमपुरीके कष्टोंसे छुटकारा दिलाता है। इस गर्भका आधान करनेवाले तुम्हीं हो, शकुन्तलाने यह बिलकुल सच बात कही है।’ पूर्वकालमें भरतके सभी पुत्रोंका विनाश हो गया था। माताके कोपके कारण उनके पुत्रोंका यह महान् संहार हुआ था। यह देखकर मरुदगाणोंने बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजको लाकर भरतके हाथोंमें समर्पित किया था। बृहस्पति अपने इस पुत्रको बनमें छोड़कर चले गये थे ॥ १२—२५ १/२ ॥

मातापितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम् ।  
 जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः ॥ २६  
 तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिर्ऋतुभिर्विभुः ।  
 पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत् पुत्रलिप्सया ॥ २७  
 यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत् प्रभुः ।  
 ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थं समुपाहरत् ॥ २८  
 तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टवुः ।  
 उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै ॥ २९  
 दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः ।  
 संक्रामितो भरद्वाजा मरुद्विर्भरतं प्रति ॥ ३०  
 भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत् ।  
 आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहं त्वया विभो ॥ ३१  
 पूर्वं तु वितथे तस्मिन् कृते वै पुत्रजन्मनि ।  
 ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत् ॥ ३२  
 तस्मादपि भरद्वाजाद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि ।  
 द्व्यामुष्यायणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च ॥ ३३  
 ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ ।  
 भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतं ऋषिः ॥ ३४  
 दायादो वितथस्यासीद् भुवमन्युर्महायशाः ।  
 महाभूतोपमाः पुत्राशृत्वारो भुवमन्यवः ॥ ३५  
 बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान् ।  
 नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः ॥ ३६  
 गुरुधी रन्तिदेवश्च सत्कृत्यां तावुभौ स्मृतौ ।  
 गर्गस्य चैव दायादः शिविर्विद्वानजायत ॥ ३७  
 स्मृताः शैव्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।  
 आहार्यतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः ॥ ३८  
 तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम् ।  
 अरुणं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशाः ॥ ३९

इस प्रकार माता-पिताद्वारा त्यागे गये उस शिशुको देखकर मरुदगणोंका हृदय दयार्द्र हो गया, तब उन्होंने उस भरद्वाज नामक शिशुको उठा लिया। उसी समय राजा भरत पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे अनेकों ऋतुकालके अवसरोंपर पुत्रनिमित्तक यज्ञोंका अनुष्ठान करते आ रहे थे, परंतु जब उन सामर्थ्यशाली नरेशको उन यज्ञोंके करनेसे भी पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त 'मरुत्स्तोम' नामक यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। राजा भरतके उस मरुत्स्तोम यज्ञसे सभी मरुदगण प्रसन्न हो गये। तब वे उस भरद्वाज नामक शिशुको साथ लेकर भरतको पुत्ररूपमें प्रदान करनेके लिये उस यज्ञमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पतिके औरस पुत्र भरद्वाजको भरतके हाथोंमें समर्पित कर दिया। तब राजा भरत भरद्वाजको पुत्ररूपमें पाकर इस प्रकार बोले—'विभो! पहले तो आप (इस शिशुको लेकर) आत्महितकी ही बात सोच रहे थे, परंतु अब इसे पाकर मैं आपकी कृपासे कृतार्थ हो गया हूँ।' पुत्र-जन्मके हेतु किये गये पहलेके सभी यज्ञ वितथ (निष्फल) हो गये थे, इसलिये वह भरद्वाज राजा वितथके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस भरद्वाजसे भी भूतलपर ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों प्रकारके पुत्र उत्पन्न हुए, जो द्व्यामुष्यायण और कौलीन नामसे विख्यात हुए ॥ २६—३३ ॥

तदनन्तर वितथके पुत्ररूपमें प्राप्त हो जानेपर राजा भरत (उसे राज्याभिषिक्त करके) स्वर्गलोकको चले गये। राज्यिं भरद्वाज भी यथासमय अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वर्गलोक सिधारे। महायशस्वी भुवमन्यु वितथका पुत्र था। भुवमन्युके बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और वीर्यशाली गर्ग नामक चार पुत्र थे, जो वायु आदि चार महातत्त्वोंके समान थे। नरका पुत्र संकृति हुआ। संकृतिके दो पुत्र महायशस्वी गुरुधी और रन्तिदेव हुए। वे दोनों सत्कृतिके गर्भसे उत्पन्न हुए बतलाये जाते हैं। गर्गके पुत्ररूपमें विद्वान् शिवि उत्पन्न हुआ। उसके बंशधर जो क्षत्रियांशसे युक्त द्विज थे, शैव्य और गर्गके नामसे विख्यात हुए। शिविके आहार्यतनय और बुद्धिमान् उरुक्षव नामक दो पुत्र थे। उरुक्षवकी पत्नी विशालाने त्र्यरुण, पुष्करि और महायशस्वी कवि—इन तीन पुत्रोंको जन्म दिया।

उरुक्षवा: स्मृता होते सर्वे ब्राह्मणतां गताः ।  
 काव्यानां तु वरा होते त्रयः प्रोक्ता महर्षयः ॥ ४०  
 गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।  
 सम्भृताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्य च क्षितिः ॥ ४१  
 बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह ।  
 तेनेदं निर्मितं पूर्वे पुरं तु गजसाह्वयम् ॥ ४२  
 हस्तिनश्वैव दायादास्त्रयः परमकीर्तयः ।  
 अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ॥ ४३  
 अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्त्रः कुरुकुलोद्ध्राहाः ।  
 नीलिनी धूमिनी चैव केशिनी चैव विश्रुताः ॥ ४४  
 स तासु जनयामास पुत्रान् वै देववर्चसः ।  
 तपसोऽन्ते महातेजा जाता बृद्धस्य धार्मिकाः ॥ ४५  
 भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु ।  
 अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत् किल ॥ ४६  
 मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात् काण्वायना द्विजाः ।  
 अजमीढस्य भूमिन्यां जज्ञे बृहदनुर्नृपः ॥ ४७  
 बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः ।  
 बृहन्मनः सुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः ॥ ४८  
 बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः ।  
 अश्वजित् तनयस्तस्य सेनजित् तस्य चात्मजः ॥ ४९  
 अथ सेनजितः पुत्राश्वत्वारो लोकविश्रुताः ।  
 रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा ॥ ५०  
 वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः ।  
 रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः ॥ ५१  
 पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान् ।  
 नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम् ॥ ५२  
 नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ।  
 तेषां वंशकरः श्रीमान्नीपानां कीर्तिवर्धनः ॥ ५३  
 काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत् ।  
 समरस्य पारसम्पारौ सदश्च इति ते त्रयः ॥ ५४  
 पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि ।  
 पारपुत्रः पृथुर्जातिः पृथुस्तु सुकृतोऽभवत् ॥ ५५

ये सभी उरुक्षव कहलाते हैं और अन्तमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये थे। काव्यके वंशधरों (भार्गव गोत्र-प्रवरों)-में ये तीनों महर्षि कहे गये हैं। इस प्रकार गर्ग, संकृति और कविके वंशमें उत्पन्न हुए लोग क्षत्रियांशसे युक्त ब्राह्मण थे। अङ्गिरागोत्रीय बृहत्क्षत्रने भी इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीका शासन किया था। बृहत्क्षत्रका हस्ति नामक पुत्र हुआ। उसीने पूर्वकालमें इस हस्तिनापुर नामक नगरको बसाया था। हस्तीके अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नामक तीन परम कीर्तिशाली पुत्र हुए। अजमीढकी तीन पत्नियाँ थीं, जो कुरुकुलमें उत्पन्न हुई थीं। वे नीलिनी, धूमिनी और केशिनी नामसे प्रसिद्ध थीं। अजमीढने उनके गर्भसे अनेकों पुत्रोंको पैदा किया था, जो सभी देवताओंके समान वर्चस्वी, महान् तेजस्वी और धर्मात्मा थे। वे अपने बृद्ध पिताकी तपस्याके अन्तमें महर्षि भारद्वाजकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। उनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ ३४—४५ १/२ ॥

अजमीढके केशिनीके गर्भसे कण्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि हुआ। उससे काण्वायन ब्राह्मणोंकी\* उत्पत्ति हुई। भूमिनी (धूमिनी)-के गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें राजा बृहदनुका जन्म हुआ। बृहदनुका पुत्र बृहन्त, बृहन्तका पुत्र बृहन्मना और बृहन्मनाका पुत्र बृहद्धनु नामसे विख्यात हुआ। बृहद्धनुका पुत्र बृहदिषु और उसका पुत्र जयद्रथ हुआ। उसका पुत्र अश्वजित् और उसका पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काव्य, राजा दृढरथ और राजा वत्सावर्तक—ये चार लोकविख्यात पुत्र हुए। इनमें वत्सावर्तकके वंशधर परिवत्सक नामसे कहे जाते हैं। रुचिराश्वका पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेनसे पौरका और पौरसे नीपका जन्म हुआ। नीपके अमित तेजस्वी पुत्रोंकी संख्या एक सौ थी। वे सभी राजा थे और नीप नामसे ही विख्यात थे। काव्यसे समर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो उन नीपवंशियोंका वंशप्रवर्तक, लक्ष्मीसे युक्त और कीर्तिवर्धक था। वह समरके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था। समरके पार, सम्पार और सदश्च—ये तीन पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न तथा भूतलपर विख्यात थे। पारका पुत्र पृथु हुआ और पृथुसे सुकृतकी उत्पत्ति हुई।

\* विशेष द्रष्टव्य—ऋग्वेदसंहिता—८।५५।४, ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड, भागवत १२।१।४९ तथा पुनः मत्स्यपुराण १९१।२६।

जन्ने सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ।  
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान् ॥ ५६  
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः ।  
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ ५७  
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः ।  
विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ५८  
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।  
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः ।  
उग्रायुधेन तस्यार्थं सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ ५९

ऋषय ऊचुः

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते ।  
किमर्थं तेन ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिताः ॥ ६०

सूत उवाच

उग्रायुधः सूर्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे ।  
स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रं तं भेजे जनमेजयः ॥ ६१  
तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान् प्रभुः ।  
उवाच सान्त्वं विविधं जघ्नुस्ते वै ह्युभावपि ॥ ६२  
हन्यमानांश्च तांश्चैव यस्माद्देतोर्न मे वचः ।  
शरणागतरक्षार्थं तस्मादेवं शपामि वः ॥ ६३  
यदि मेऽस्ति तपस्तसं सर्वान् नयतु वो यमः ।  
ततस्तान् कृष्यमाणांस्तु यमेन पुरतः स तु ॥ ६४  
कृपया परयाऽविष्टो जनमेजयमूच्चिवान् ।  
गतानेतानिमान् वीरांस्त्वं मे रक्षितुमर्हसि ॥ ६५

जनमेजय उवाच

अरे पापा दुराचारा भवितारोऽस्य किंकराः ।  
तथेत्युक्तस्ततो राजा यमेन युयुधे चिरम् ॥ ६६

उससे सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न विभ्राज नामक पुत्र पैदा हुआ ।  
विभ्राजका पुत्र महायशस्वी एवं पराक्रमी अणुह हुआ, जो  
शुकदेवजीका जामाता एवं कृत्वीका पति था । अणुहका  
पुत्र राजा ब्रह्मदत्त हुआ । उसका पुत्र युगदत्त और युगदत्तका  
पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ । अपने पुण्यकर्मोंके  
फलस्वरूप राजा विभ्राजने ही पुनः विष्वक्सेनरूपसे  
जन्म धारण किया था । विष्वक्सेनका पुत्र उदक्सेन हुआ ।  
उसका पुत्र भल्लाट\* और उसका पुत्र जनमेजय (द्वितीय)  
हुआ । इसी जनमेजयकी रक्षाके लिये उग्रायुधने सभी  
नीपवंशी नरेशोंको मौतके घाट उतारा था ॥ ४६—५९ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! उग्रायुध किसका पुत्र  
था ? वह किसके वंशमें उत्पन्न हुआ बतलाया जाता है ?  
तथा किस कारण उसने समस्त नीपवंशी राजाओंका  
संहार किया था ? (यह हमें बतलाइये) ॥ ६० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! उग्रायुध सूर्यवंशमें  
उत्पन्न हुए थे । इन्होंने एक श्रेष्ठ आश्रममें जाकर स्थाणुकी  
भाँति स्थित हो आठ हजार वर्षोंतक घोर तप किया ।  
उसी समय (युद्धमें पराजित हुए) राजा जनमेजय उनके  
पास पहुँचे । (जनमेजयकी प्रार्थनापर) उन्हें राज्य दिलानेकी  
प्रतिज्ञा करके सामर्थ्यशाली उग्रायुधने नीपवंशियोंका  
संहार किया था । प्रथमतस्तु उग्रायुधने उन्हें अनेक प्रकारके  
सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा समझाने-बुझानेकी चेष्टा की, किंतु  
जब वे (इनकी बात न मानकर) इन्हीं दोनोंको मार  
डालनेके लिये उतारू हो गये, तब मारनेके लिये उद्यत हुए  
उनसे उग्रायुधने कहा—‘जिस कारण तुमलोग मेरी बातको  
अनसुनी कर रहे हो, इसीलिये शरणागतकी रक्षाके हेतु  
मैं तुमलोगोंको इस प्रकारका शाप दे रहा हूँ कि यदि मैंने  
तपका अनुष्ठान किया है तो यमराज तुम सबको अपने  
घर उठा ले जायँ ।’ तदनन्तर अपने सामने ही उन्हें  
यमराजद्वारा घसीटा जाता हुआ देखकर उग्रायुधके हृदयमें  
अतिशय दया उत्पन्न हो गयी । तब उन्होंने जनमेजयसे  
कहा—‘जनमेजय ! तुम मेरे कहनेसे इन ले जाये गये हुए  
तथा ले जाये जाते हुए वीरोंकी रक्षा करो’ ॥ ६१—६५ ॥

जनमेजय बोले—अरे पापी एवं दुराचारी यमदूतो !  
तुमलोग दण्डके भागी होओगे, अन्यथा उन्हें छोड़  
दो । यमदूतोंद्वारा भी उसी प्रकारका उत्तर दिये जानेपर  
राजा जनमेजयने यमके साथ चिरकालतक युद्ध किया ।

\* इसने भल्लाटनगर (सुलेमानपर्वतके पासका एक शहर) बसाया, जहाँका राजा शशिध्वज (कल्किपुराण, अ० २१-२२) प्रसिद्ध था।

व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात्।  
 विजित्य मुनये प्रादात् तदद्भुतमिवाभवत्॥ ६७  
 यमस्तुष्टस्तस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम्।  
 सर्वे यथोचितं कृत्वा जगमुस्ते कृष्णमव्ययम्॥ ६८  
 येषां तु चरितं गृह्य हन्यते नापमृत्युभिः।  
 इह लोके परे चैव सुखमक्षव्यमश्रुते॥ ६९  
 अजमीढस्य धूमिन्यां विद्वाञ्ज्ञे यवीनरः।  
 धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः स्मृतः।  
 अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्॥ ७०  
 दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः।  
 आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान्॥ ७१  
 सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराद् बभौ।  
 तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः॥ ७२  
 महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः।  
 अथ रुक्मरथस्यासीत् सुपाश्रो नाम पार्थिवः॥ ७३  
 सुपाश्र्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः।  
 सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमानपि॥ ७४  
 तस्यासीत् संनतिमतः कृतो नाम सुतो महान्।  
 हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौसल्यस्य<sup>१</sup> महात्मनः॥ ७५  
 चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।  
 स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः॥ ७६  
 कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः।  
 बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः॥ ७७  
 नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वर्शी।  
 उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः॥ ७८  
 क्षेमात् सुनीथः सञ्ज्ञे सुनीथस्य नृपञ्जयः।  
 नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः॥ ७९

अन्ततोगत्वा उन्होंने भयंकर नारकीय व्याधियोंके साथ उन सबको बलपूर्वक जीतकर यमराजसहित उन्हें उग्रायुध मुनिको समर्पित कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। इससे प्रसन्न हुए यमराजने राजा जनमेजयको मुक्तिका उत्तम ज्ञान प्रदान किया। तत्पश्चात् वे सभी यथोचित धर्मकार्य कर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गये। इन नरेशोंके जीवन-चरितको जान लेनेपर मनुष्य अपमृत्यु आदिका शिकार नहीं होता। उसे इस लोक और परलोकमें अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है॥ ६६—६९॥

धूमिनीके गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें विद्वान् यवीनरका जन्म हुआ। उसका पुत्र धृतिमान् हुआ और उसका पुत्र सत्यधृति कहा जाता है। सत्यधृतिका पुत्र प्रतापी दृढनेमि हुआ। दृढनेमिका पुत्र सुधर्मा नामक भूपाल हुआ। सुधर्माका पुत्र प्रतापी सार्वभौम था, जो भूतलपर एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सुशोभित हुआ। उसके उस विशाल वंशमें एक महापौरव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा रुक्मरथ महापौरवके पुत्र कहे गये हैं। रुक्मरथका पुत्र सुपाश्र्व नामका राजा हुआ। सुपाश्र्वका पुत्र धर्मात्मा सुमति हुआ। सुमतिका पुत्र धर्मात्मा राजा संनतिमान् था। उस संनतिमान्का कृत नामक महान् प्रतापी पुत्र था, जो महात्मा हिरण्यनाभ कौसल्य (कौथुम<sup>२</sup>)-का शिष्य हुआ। इसी राजाने सामवेदकी संहिताओंको चौबीस भागोंमें विभक्त किया, जो प्राच्यसामके नामसे प्रसिद्ध हुई तथा उन साम-संहिताओंका गान करनेवाले कार्त नामसे कहे जाने लगे। ये उग्रायुध इसी कृतके पुत्र थे, जो पौरववंशकी विशेषरूपसे वृद्धि करनेवाले थे। इन्होंने ही पराक्रम प्रकट करके पृथुकके पिता पाञ्चाल-नरेश जितेन्द्रिय महाराज नीलका वध किया था। उग्रायुधका पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ। क्षेमसे सुनीथका और सुनीथसे नृपञ्जयका जन्म हुआ। नृपञ्जयसे विरथकी उत्पत्ति हुई। ये सभी नरेश पौरवनामसे विख्यात हुए॥ ७०—७९॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे पौरववंशकीर्तनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पौरव-वंश-कीर्तन नामक उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४९॥

१. वायुपुराण ९९। १०० में यहाँ ‘कौथुम’ पाठ है। सामवेदियोंकी कौथुमी संहिता प्रसिद्ध है।

२. यहाँ सामवेद-संहिताके इतिहासकी एकसे चौबीस (तथा पुनः एक हजार शाखा होनेकी) बड़ी रहस्यात्मक बात कही गयी है। कार्त शाखाका उल्लेख सभी चरणव्यूहोंमें भी है। इसी प्रकार वायु ५९—६१ तथा ब्रह्माण्ड २। ३८—४१ में भी वेदोंका सच्चा एवं विस्तृत इतिहास है। २४ सामशाखाएँ चरणव्यूह आदिमें यों निर्दिष्ट हैं—१-वार्तान्तरेय, २-राणायनीय, ३-शाट्यायनीय, ४-आसुरायणीय, ५-वासुरायणीय, ६-प्राचीनयोग, ७-प्राञ्जल ऋग, ८-साक्ष्यमुद्गल, ९-खल्वल, १०-महाखल्वल, ११-माङ्गल, १२-कौथुम, १३-गौतम, १४-जेमिनीय, १५-सुपर्ण, १६-बालखिल्य, १७-सांत्यमुग्र, १८-कालेय, १९-महाकालेय, २०-लाङ्गलायन, २१-शार्दूल, २२-तातायन, २३-नैगमीय और २४-पावमान।

## पचासवाँ अध्याय

### पूरुषंशी नरेशोंका विस्तृत इतिहास

सूत उवाच

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवनृपः ।  
 नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुदपद्यत ॥ १  
 पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः ।  
 भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयाज्ञृणु ॥ २  
 मुद्गलश्च जयश्वैव राजा बृहदिषुस्तथा ।  
 जवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्वैव पञ्चमः ॥ ३  
 पञ्चानां चैव पञ्चालानेताज्जनपदान् विदुः ।  
 पञ्चालरक्षिणो होते देशानामिति नः श्रुतम् ॥ ४  
 मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।  
 एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः ॥ ५  
 मुद्गलस्य सुतो जज्ञे ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः ।  
 इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्य चात्मजः ॥ ६  
 विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः ।  
 दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥ ७  
 शरद्वतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत ।  
 शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः ॥ ८  
 सुतः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ।  
 आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिकस्य तु ॥ ९  
 स्कन्नं रेतः सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसं जले ।  
 मिथुनं तत्र सम्भूतं तस्मिन् सरसि सम्भृतम् ॥ १०  
 ततः सरसि तस्मिंस्तु क्रममाणं महीपतिः ।  
 दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः ॥ ११  
 एते शरद्वतः पुत्रा आख्याता गौतमा वराः ।  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य वै प्रजाः ॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अजमीढकी नीलिनी नामकी पत्नीके गर्भसे राजा नीलका जन्म हुआ । नीलकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप सुशान्तिकी उत्पत्ति हुई । सुशान्तिसे पुरुजानुका और पुरुजानुसे पृथुका जन्म हुआ । पृथुका पुत्र भद्राश्व हुआ । अब भद्राश्वके पुत्रोंके विषयमें सुनिये—मुद्गल, जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी जवीनर और पाँचवाँ कपिल—ये पाँचों भद्राश्वके पुत्र थे । इन पाँचोंके द्वारा शासित जनपद पञ्चाल नामसे प्रसिद्ध हुए । ये सभी पञ्चाल देशोंके रक्षक थे—ऐसा हमलोगोंने सुना है । मुद्गलके पुत्रगण, जो क्षत्रियांशसे युक्त द्विजाति थे, मौद्गल्य नामसे प्रसिद्ध हुए । ये कण्व और मुद्गलके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले द्विजाति अङ्गिराके पक्षमें सम्मिलित हो गये । महायशस्वी ब्रह्मिष्ठने मुद्गलके पुत्ररूपमें जन्म लिया । उसका पुत्र इन्द्रसेन और उसका पुत्र विन्ध्याश्व हुआ । विन्ध्याश्वके संयोगसे मेनकाके गर्भसे जुड़वीं संतान उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है । उनमें एक तो राजर्षि दिवोदास थे और दूसरी यशस्विनी अहल्या थी । अहल्याने शरद्वान् गौतमके पुत्र ऋषिश्रेष्ठ शतानन्दको उत्पन्न किया था । शतानन्दका पुत्र महातपस्वी एवं धनुर्वेदका पारंगत विद्वान् सत्यधृति हुआ । धर्मात्मा सत्यधृतिका वीर्य अमोघ था । एक बार एक अप्सराको देखकर सत्यधृतिका वीर्य (सरोवरमें स्नान करते समय) जलमें स्खलित हो गया । उस वीर्यसे उस सरोवरमें जुड़वीं संतान उत्पन्न हो गयी । वे उसी सरोवरमें पल रहे थे । एक बार महाराज शंतनु शिकारके लिये निकले हुए थे । वे उस सरोवरमें घूमते हुए उन बच्चोंको देखकर कृपा-परवश हो उन्हें उठा लाये । इस प्रकार मैंने शरद्वान् के उन पुत्रोंका जो गौतम (गोत्र) नामसे विख्यात हैं, वर्णन कर दिया । अब इसके आगे दिवोदासकी संततिका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये ॥ १—१२ ॥

१. यह नील राजाकी चर्चा गत अध्यायके अन्तमें ७८ वें श्लोकमें भी है । ये उनसे भिन्न हैं ।

२. यह रुहेलखण्ड है, जो दिल्लीसे पूर्व गङ्गाके उत्तर तथा दक्षिणमें चम्बल नदीके तटतक फैला है । ये दक्षिण और उत्तर पञ्चालके नामसे प्रसिद्ध हैं । उत्तर पञ्चालकी राजधानी अहिच्छत्र (रामनगर) तथा दक्षिण पञ्चालकी राजधानी कम्पिल और माकंद थी । (द्रष्टव्य- महाभारत आदि १४०, उद्योग १९३, गर्गसंहिता १३९ आदि) गौतमबुद्धके समय उत्तर पञ्चालकी राजधानी कन्नौज भी रहा । राइस् डैविड्स । 'Buddhist India'.

दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः ।  
 मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः ॥ १३  
 एते वंशया यतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः ।  
 राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः ॥ १४  
 अथ चैद्यवराद् विद्वान् सुदासस्तस्य चात्मजः ।  
 अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः ॥ १५  
 सोमकस्य सुतो जन्तुहते तस्मिन्नातं बभौ ।  
 पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः ॥ १६  
 महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी ।  
 पुत्राभावे तपस्तेषे शतं वर्षाणि दुश्शरम् ॥ १७  
 हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना ।  
 अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता ॥ १८  
 तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान् ।  
 ऋक्षं सा जनयामास धूमवर्ण शताग्रजम् ॥ १९  
 ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् ततः ।  
 यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत् ॥ २०  
 कृष्टतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ ।  
 कृष्टमाणस्ततः शक्रो भयात् तस्मै वरं ददौ ॥ २१  
 पुण्यं च रमणीयं च कुरुक्षेत्रं तु तत् स्मृतम् ।  
 तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नामा तु कौरवाः ॥ २२  
 कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च ।  
 परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः ॥ २३  
 सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतां वरः ।  
 च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ २४  
 च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्ज्ञे महातपाः ।  
 कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यातस्त्विन्द्रसमो विभुः ॥ २५  
 चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः ।  
 चैद्योपरिचराज्ज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान् ॥ २६

दिवोदासका ज्येष्ठ पुत्र धर्मिष्ठ राजा मित्रयु हुआ । तत्पश्चात् उससे छोटे मैत्रायण और उसके बाद मैत्रेयकी उत्पत्ति हुई । ये सभी पुत्र (ययातिके भाई) यतिके पक्षके थे और क्षत्रियांशसे युक्त भार्गव (भृगुवंशी) कहलाते थे । राजा चैद्यवर मैत्रेयके पुत्र कहे जाते हैं । चैद्यवरसे विद्वान् सुदासका जन्म हुआ । वंशके नष्ट हो जानेपर पुनः अजमीढ़ सुदासके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए । इन्हींका दूसरा नाम सोमक भी है । सोमकका पुत्र जन्म हुआ । उसके मारे जानेपर महात्मा अजमीढ़ सोमकके सौ पुत्र हुए । अजमीढ़की धूमिनी नामकी पत्नी थी, जो पुत्रोंकी वृद्धि करनेवाली थी । जन्मुके मारे जानेसे पुत्रका अभाव हो जानेपर वह सौ वर्षोंतक दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गयी । एक समय भलीभौति पवित्र किये हुए पदार्थोंको ही भोजन करनेवाली महान् व्रतपरायणा धूमिनी अग्निहोत्रके क्रमसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके नींदके वशीभूत हो गयी । निरन्तर अग्निहोत्र करनेके कारण उसके शरीरका रंग धूमिल पड़ गया था । उसी समय अजमीढ़ने उसमें गर्भाधान किया । उस गर्भसे धूमिनीने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था तथा जिसके शरीरका रंग धूम-वर्णका था । ऋक्षसे संवरणकी और संवरणसे कुरुकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रयागका अतिक्रमण कर कुरुक्षेत्रकी तीर्थरूपमें कल्पना की थी । महाराज कुरु अनेकों वर्षोंतक इस कुरुक्षेत्रको अपने हाथों जोतते रहे । उन्हें इस प्रकार जोतते देखकर इन्द्रने भयभीत हो उन्हें वर प्रदान किया । इसी कारण कुरुक्षेत्र पुण्यप्रद और रमणीय क्षेत्र कहा जाता है । उन महाराज कुरुक्षे वंश अत्यन्त विशाल था, जो उन्हींके नामसे (आगे चलकर) कौरव कहलाया ॥ १३—२२ ॥

कुरुके सुधन्वा, जह्नु, महातेजस्वी परीक्षित् और शत्रुविनाशक प्रजन—ये चार परम प्रिय पुत्र हुए । सुधन्वाका पुत्र राजा च्यवन हुआ, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ एवं धर्म और अर्थके तत्त्वका ज्ञाता था । च्यवनका पुत्र कृमि हुआ, जो ऋक्षसे उत्पन्न हुआ था । (इन्हीं) कृमिके पुत्र महापराक्रमी चैद्योपरिचर वसु हुए । वे प्रभावशाली, शूरवीर, इन्द्रके समान विख्यात और (सदा विमानद्वारा) आकाशमें गमन करनेवाले थे । चैद्योपरिचरके संयोगसे गिरिकाने सात

महारथो मगधराद् विश्रुतो यो बृहद्रथः ।  
 प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः ॥ २७  
 पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी ।  
 बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥ २८  
 कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान् ।  
 वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान् नाम पार्थिवः ॥ २९  
 पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः ।  
 दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्च जज्ञिवान् ॥ ३०  
 सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद् राजा बृहद्रथः ।  
 द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः ॥ ३१  
 जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः ।  
 जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासंधो महाबलः ॥ ३२  
 जरासंधस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान् ।  
 सहदेवात्मजः श्रीमान् सोमवित् स महातपाः ॥ ३३  
 श्रुतश्रवास्तु सोमाद् वै मागधाः परिकीर्तिताः ।  
 जहुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् ॥ ३४  
 सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः ।  
 विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः ॥ ३५  
 सार्वभौमाज्यत्सेनो रुचिरस्तस्य चात्मजः ।  
 रुचिरस्य सुतो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत् ॥ ३६  
 अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद् देवातिथिः स्मृतः ।  
 देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह ॥ ३७  
 भीमसेनस्ततो दक्षाद् दिलीपस्तस्य चात्मजः ।  
 दिलीपस्य प्रतीपस्तु तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः ॥ ३८  
 देवापिः शंतनुश्चैव बाह्णीकश्चैव ते त्रयः ।  
 बाह्णीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्णीश्वरा नृपाः ।  
 देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन्मुनिः ॥ ३९

ऋषय ऊचुः

प्रजाभिस्तु किमर्थं वै ह्यपध्यातो जनेश्वरः ।  
 को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिः समुदाहतः ॥ ४०

सूत उवाच

किलासीद् राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन् ।  
 भविष्यं कीर्तयिष्यामि शंतनोस्तु निबोधत ॥ ४१

संतानोंको जन्म दिया । इनमें पहला महारथी मगधराज था, जो बृहद्रथ नामसे विख्यात हुआ । उसके बाद दूसरा प्रत्यश्रवा, तीसरा कुश, चौथा हरिवाहन, पाँचवाँ यजुष् और छठा मत्स्य नामसे प्रसिद्ध हुआ । सातवाँ संतान काली नामकी कन्या थी । बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे विख्यात हुआ । कुशाग्रका पुत्र पराक्रमी वृषभ हुआ । वृषभका पुत्र राजा पुण्यवान् था । पुण्यवान्-से पुण्य और उससे राजा सत्यधृतिका जन्म हुआ । उसका पुत्र धनुष हुआ और उससे सर्वकी उत्पत्ति हुई । सर्वका पुत्र सम्भव हुआ और उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ । बृहद्रथका पुत्र दो टुकड़ेके रूपमें उत्पन्न हुआ, जिन्हें जरानामकी राक्षसीने जोड़ दिया था । जराद्वारा जोड़ दिये जानेके कारण वह जरासंध नामसे विख्यात हुआ । महाबली जरासंध अपने समयके समस्त क्षत्रियोंका विजेता था । जरासंधका पुत्र प्रतापी सहदेव हुआ । सहदेवका पुत्र लक्ष्मीवान् एवं महातपस्वी सोमवित् हुआ । सोमवित्-से श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई । (मगधपर शासन करनेके कारण) ये सभी नरेश मागध नामसे विख्यात हुए ॥ २३—३३ १ ॥

जहुने सुरथ नामक भूपालको पुत्ररूपमें जन्म दिया । सुरथका पुत्र वीरवर राजा विदूरथ हुआ । विदूरथका पुत्र सार्वभौम कहा गया है । सार्वभौमसे जयत्सेन उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र रुचिर हुआ । रुचिरसे भौमका और उससे त्वरितायुका जन्म हुआ । त्वरितायुका पुत्र अक्रोधन और उससे देवातिथिकी उत्पत्ति बतलायी जाती है । देवातिथिका एकमात्र पुत्र दक्ष ही था । दक्षसे भीमसेनका जन्म हुआ और उसका पुत्र (पुरुवंशी) दिलीप तथा दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ । प्रतीपके तीन पुत्र कहे जाते हैं, ये तीनों देवापि, शंतनु और बाह्णीक हैं । बाह्णीकके सात पुत्र थे, जो सभी राजा थे और बाह्णीक (बल्ख) देशके अधीश्वर थे । देवापिको प्रजाओंने दोषी ठहरा दिया था; इसलिये वह राजपाट छोड़कर मुनि हो गया ॥ ३४—३९ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! प्रजाओंने राजा देवापिको किस कारण दोषी ठहराया था? तथा प्रजाओंने उस राजकुमारका कौन-सा दोष प्रकट किया था? ॥ ४० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! राजकुमार देवापि कुष्ठ-रेणी था, इसीलिये प्रजाओंने उसका आदर-सत्कार नहीं किया । अब मैं शंतनुके भविष्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये ।

शंतनुस्त्वभवद् राजा विद्वान् स वै महाभिषक् ।  
 इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम् ॥ ४२  
 यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च ।  
 पुनर्युवा स भवति तस्मात् तं शंतनुं विदुः ॥ ४३  
 तत् तस्य शंतनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते ।  
 ततोऽवृणुत भार्यार्थं शंतनुर्जाह्वीं नृपः ॥ ४४  
 तस्यां देवब्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः ।  
 काली विचित्रवीर्यं तु दाशोदी जनयत् सुतम् ॥ ४५  
 शंतनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम् ।  
 कृष्णद्वौपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ ४६  
 धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ।  
 धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्या पुत्रानजनयच्छतम् ॥ ४७  
 तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः ।  
 माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥ ४८  
 देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजिञ्चिरे ।  
 धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ॥ ४९  
 इन्द्राद् धनञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः ।  
 नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्चिभ्यामजीजनत् ॥ ५०  
 पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः ।  
 द्रौपद्यजनयच्छेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात् ॥ ५१  
 श्रुतसेनं भीमसेनाच्छुतकीर्तिं धनञ्जयात् ।  
 चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत ॥ ५२  
 नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः ।  
 तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः ॥ ५३  
 हैडम्बो भीमसेनात् तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः ।  
 काशी बलधराद् भीमाज्ज्ञे वै सर्वगं सुतम् ॥ ५४  
 सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत ।  
 करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः ॥ ५५

(देवापिके वन चले जानेपर) शंतनु राजा हुए। ये विद्वान् तो थे ही, साथ ही महान् वैद्य भी थे। इनकी महावैद्यताके प्रति लोग एक श्लोक कहा करते हैं, जिसका आशय यह है कि 'महाराज शंतनु जिस-जिस रोगी अथवा वृद्धको अपने हाथोंसे स्पर्श कर लेते थे, वह पुनः नौजवान हो जाता था। इसी कारण लोग उन्हें शंतनु कहते थे।' उस समय प्रजागण उनके इस शंतनुत्वं (रोगी और वृद्धको युवा बना देनेवाले) गुणका ही वर्णन करते थे। तदनन्तर प्रभावशाली राजा शंतनुने जहु-नन्दिनी गङ्गाको अपनी पत्नीके रूपमें वरण किया और उनके गर्भसे देवब्रत (भीष्म) नामक कुमारको पैदा किया। दाश-कन्या काली सत्यवतीने शंतनुके संयोगसे विचित्रवीर्य नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पिताके लिये परम प्रिय, शान्तात्मा और निष्पाप था। महर्षि कृष्णद्वौपायन व्यासने विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा (दासीसे) विदुरको उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौं पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनमें दुर्योधन सबसे श्रेष्ठ था और वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशका स्वामी था। इसी प्रकार पाण्डुकी कुन्ती और माद्री नामकी दो पत्नियाँ हुईं। इन्हीं दोनोंके गर्भसे महाराज पाण्डुकी वंश-वृद्धिके लिये देवताओंद्वारा प्रदान किये गये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्तीने धर्मके संयोगसे युधिष्ठिरको, वायुके संयोगसे वृकोदर (भीमसेन)-को और इन्द्रके संयोगसे इन्द्रसरीखे पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन)-को जन्म दिया। इसी प्रकार माद्रीने अश्विनीकुमारोंके संयोगसे नकुल और सहदेवको पैदा किया ॥ ४१—५० ॥

इन पाँचों पाण्डवोंके संयोगसे द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें द्रौपदीने युधिष्ठिरके संयोगसे ज्येष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्यको, भीमसेनके संयोगसे श्रुतसेनको और अर्जुनके संयोगसे श्रुतकीर्तिको जन्म दिया था। चौथा पुत्र श्रुतकर्मा सहदेवसे और शतानीक नकुलसे उत्पन्न किया था। ये पाँचों द्रौपदेय अर्थात् द्रौपदीके पुत्र कहलाये। इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके छः अन्य महारथी पुत्र भी थे। (उनका विवरण इस प्रकार है—) भीमसेनके संयोगसे हिंडिम्बा नामकी राक्षसीके गर्भसे घटोत्कच नामक पुत्रका जन्म हुआ था। उनकी दूसरी पत्नी काशीने बलवान् भीमसेनके संयोगसे सर्वग नामक पुत्रको जन्म दिया था। मद्राज-कुमारी सहदेव-पत्नीने सहदेवके संयोगसे सुहोत्र नामक पुत्रको पैदा किया था। नकुल-पुत्र निरमित्र चेदिराज-कुमारी करेणुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।  
यौधेयं देवकी चैव पुत्रं ज़ज्ञे युधिष्ठिरात् ॥ ५६  
अभिमन्योः परीक्षित् तु पुत्रः परपुरञ्जयः ।  
जनमेजयः परीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः ॥ ५७  
ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम् ।  
स वैशम्पायनेनैव शसः किल महर्षिणा ॥ ५८  
न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद् वचनं भुवि ।  
यावत् स्थास्यसि त्वं लोके तावदेव प्रपत्यति ॥ ५९  
क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः ।  
अभिगम्य स्थिताश्वैव नृपं च जनमेजयम् ॥ ६०  
ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः ।  
उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः ॥ ६१  
क्षत्रस्य याजिनः केचिच्छापात् तस्य महात्मनः ।  
पौर्णमासेन हविषा इष्ट्वा तस्मिन् प्रजापतिम् ।  
स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः ॥ ६२  
परीक्षितः सुतोऽसौ वै पौरवो जनमेजयः ।  
द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः ॥ ६३  
प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम् ।  
विवादे ब्राह्मणैः सार्थमभिशसो वनं ययौ ॥ ६४  
जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्ज्ञे स वीर्यवान् ।  
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान् ॥ ६५  
अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान् ।  
जज्ञेऽधिसीमकृष्णाख्यः साम्प्रतं यो महायशाः ॥ ६६  
तस्मिज्ञासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहृतम् ।  
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे ।  
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृष्टद्वयां द्विजोत्तमाः ॥ ६७  
ऋष्य ऊचुः  
भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे ।  
पुरा किल यदेतद् वै व्यतीतं कीर्तिं त्वया ॥ ६८

पृथा-पुत्र अर्जुनके संयोगसे सुभद्राके गर्भसे महारथी अभिमन्यु पैदा हुआ था । युधिष्ठिर-पल्ली देवकीने युधिष्ठिरके संयोगसे यौधेय नामक पुत्रको जन्म दिया था । अभिमन्युके पुत्र शत्रुओंकी नगरीको जीतनेवाले परीक्षित् हुए । परीक्षित्के पुत्र परम धर्मात्मा जनमेजय (तृतीय) हुए ॥ ५१—५७ ॥

जनमेजयने अपने यज्ञमें वाजसनेय (शुक्लयजुर्वेदके आचार्य) ऋषिको ब्रह्माके पदपर नियुक्त किया । यह देखकर वैशम्पायन (कृष्णयजुर्वेदके आचार्य)-ने उन्हें शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे ! तुम्हारा यह (नवीन) वचन अर्थात् (संहिता-ग्रन्थ) भूतलपर स्थायी नहीं हो सकेगा । जबतक तुम लोकमें जीवित रहोगे, तभीतक यह भी ठहर सकेगा ।' तभीसे क्षत्रियजातिकी विजय जानकर बहुत-से लोग चारों ओरसे (शुक्लयजुर्वेदके प्रवर्धक) राजा जनमेजयके पास आकर रहने लगे । परंतु महात्मा वैशम्पायनके शापके कारण उस यज्ञमें बहुत-से यज्ञानुष्ठान करनेवाले क्षत्रिय तथा कुछ याजक भी नष्ट हो गये । तब उस यज्ञमें जब जनमेजय पौर्णमास हविद्वारा ब्रह्माका यजन कर यज्ञशालामें प्रवेश करनेके लिये प्रयत्नशील हुए उसी समय महर्षि वैशम्पायनने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया । तदनन्तर परीक्षितपुत्र पूर्ववंशी जनमेजयने दो अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया । उनमें उन्होंने अपने द्वारा प्रवर्तित महावाजसनेय (शौकलयाजुष) विधिका ही प्रयोग किया । वह सारा कार्य वाजसनेय ऋषिकी अध्यक्षतामें ही सम्पन्न हो रहा था । उसी समय ब्राह्मणोंके साथ विवाद हो जानेपर ब्राह्मणोंने उन्हें शाप दे दिया, जिससे वे वनमें चले गये ।\* उन जनमेजयसे पराक्रमी शतानीकका जन्म हुआ । जनमेजयने (वन-गमन करते समय) अपने पुत्र शतानीकको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया था । शतानीकद्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किये जानेपर उसके फलस्वरूप शतानीकके एक महायशस्वी एवं पराक्रमी अधिसीमकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस (पुराणप्रवचनके) समय सिंहासनासीन है । द्विजवरो ! उसीके राज्यशासन करते समय आपलोगोंने अभी-अभी पुष्करक्षेत्रमें तीन वर्षोंतक तथा कुरुक्षेत्रमें दृष्टद्वयीके टटपर दो वर्षोंतक इस दुर्लभ दीर्घ सत्रका अनुष्ठान सम्पन्न किया है ॥ ५८—६७ ॥

ऋषियोंने पूछा—लोमहर्षणके पुत्र सूतजी ! पूर्वकालमें जो बातें बीत चुकी हैं, उनका वर्णन तो आपने कर दिया । अब हमलोग प्रजाओंके भविष्यके विषयमें सुनना चाहते हैं।

\* द्रष्टव्य-हरिविंशतिपुण्य, भविष्यपुण्य, अ० ५ ।

येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये ।  
तेषामायुःप्रमाणं च नामतश्चैव तान् नृपान् ॥ ६९  
कृतयुगप्रमाणं च त्रेताद्वापरयोस्तथा ।  
कलियुगप्रमाणं च युगदोषं युगक्षयम् ॥ ७०  
सुखदुःखप्रमाणं च प्रजादोषं युगस्य तु ।  
एतत् सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो ॥ ७१

सूत उवाच

यथा मे कीर्तिं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा ।  
भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च ॥ ७२  
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत ।  
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा ॥ ७३  
ऐडेक्ष्वाक्नाव्ये चैव पौरवे चान्वये तथा ।  
येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम् ।  
तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान् ॥ ७४  
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः ।  
क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथान्ये ये बहिश्वराः ॥ ७५  
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा ।  
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः ।  
पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥ ७६  
अधिसीमकृष्णाश्चैतेषां प्रथमं वर्तते नृपः ।  
तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान् ॥ ७७  
अधिसीमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृपः ।  
गङ्गाया तु हृते तस्मिन् नगरे नागसाहृये ॥ ७८  
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति ।  
भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमाः ॥ ७९  
भूरिज्येष्टः सुतस्तस्य तस्य चित्ररथः स्मृतः ।  
शुचिद्रवश्चित्ररथाद् वृष्णिमांश्च शुचिद्रवात् ॥ ८०  
वृष्णिमतः सुषेणाद् भविता सुनीथो नाम पार्थिवः ॥ ८१  
तस्मात् सुषेणाद् भविता नृचक्षुः सुमहायशाः ।  
नृपात् सुनीथाद् भविता नृचक्षुः सुमहायशाः ।  
नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः ॥ ८२  
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः ।  
परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः ॥ ८३  
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशयः ।  
मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जयः ॥ ८४

यह क्षत्रिय-जाति जिन-जिन वंशोंमें स्थित रहेगी और उनमें जो-जो नरेश उत्पन्न होंगे, उनके क्या नाम होंगे तथा उनकी आयुका प्रमाण कितना होगा ? कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—इन चारों युगोंकी कितनी-कितनी अवधि होगी ? प्रत्येक युगमें क्या-क्या दोष होंगे ? तथा उन युगोंका विनाश कैसे होगा ? सुख और दुःखका प्रमाण क्या होगा ? तथा प्रत्येक युगकी प्रजाओंमें क्या-क्या दोष उत्पन्न होंगे ? प्रभो ! यह सब क्रमशः हमें बतलाइये; क्योंकि हमलोग इसे जानना चाहते हैं ॥ ६८—७१ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें अक्लिष्टकर्मा व्यासजीने मुझसे भावी कलियुग तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंके विषयमें जैसा वर्णन किया था, वही मैं आपलोंगोंको बतला रहा हूँ; सुनिये । इसके बाद अब मैं उन्हीं राजाओंका वर्णन करने जा रहा हूँ, जो भविष्यमें ऐड (ऐल) और इक्ष्वाकुके वंशमें तथा पौरववंशमें उत्पन्न होनेवाले हैं । जिन राजाओंमें ये मङ्गलमय ऐड और इक्ष्वाकुवंश स्थित रहेंगे, भविष्यमें होनेवाले उन सभी तथाकथित नरेशोंका मैं वर्णन करूँगा । इनके अतिरिक्त भी जो अन्य नृपतिगण क्षत्रिय, पारशव, शूद्र, बहिश्वर, अंध, शक, पुलिन्द, चूलिक, यवन, कैवर्त, आभीर और शबर जातियोंमें उत्पन्न होंगे तथा दूसरे जो म्लेच्छ-जातियोंमें पैदा होंगे, उन सभी नरेशोंका पर्याय क्रमसे नामनिर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ । इन सबमें सर्वप्रथम राजा अधिसीमकृष्ण हैं, जो सम्प्रति वर्तमान हैं । इनके वंशमें भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले राजाओंका वर्णन कर रहा हूँ । अधिसीमकृष्णका पुत्र राजा विवक्षु होगा । गङ्गाद्वारा हस्तिनापुर नगरके डुबो (बहा) दिये जानेपर विवक्षु उस नगरका परित्याग कर कौशाम्बी नगरीमें निवास करेगा । उसके महान् बलपराक्रमसे सम्पन्न आठ पुत्र होंगे । उसका ज्येष्ठ पुत्र भूरि होगा और उसका पुत्र चित्ररथ नामसे विख्यात होगा । चित्ररथसे शुचिद्रव, शुचिद्रवसे वृष्णिमान् और वृष्णिमान्से परम पवित्र राजा सुषेण उत्पन्न होगा । उस सुषेणसे सुनीथ नामका राजा होगा । राजा सुनीथसे महायशस्वी नृचक्षुकी उत्पत्ति होगी । नृचक्षुका पुत्र सुखीबल होगा । सुखीबलका पुत्र भावी राजा परिष्णव और परिष्णवका पुत्र राजा सुतपा होगा । उसका पुत्र निस्संदेह मेधावी होगा । मेधावीका पुत्र पुरञ्जय होगा ।

उर्वो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः ।  
 तिग्माद् बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात् ॥ ८५  
 वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः ।  
 भविष्यते चोदयनाद् वीरो राजा वहीनरः ॥ ८६  
 वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति ।  
 दण्डपाणेनिरमित्रो निरमित्रात् क्षेमकः ॥ ८७  
 अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः ।  
 ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वशो देवर्षिसत्कृतः ।  
 क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे ॥ ८८  
 इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्तितः ।  
 धीमतः पाण्डुपुत्रस्य चार्जुनस्य महात्मनः ॥ ८९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पुरुवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५०  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पूरुवंशानुकीर्तन नामक पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५० ॥

उसका भावी पुत्र उर्व और उसका पुत्र तिग्मात्मा होगा । तिग्मात्मासे बृहद्रथ और बृहद्रथसे वसुदामाका जन्म होगा । वसुदामासे शतानीक और उससे उदयनकी उत्पत्ति होगी । उदयनसे वीरवर राजा वहीनर उत्पन्न होगा । वहीनरका पुत्र दण्डपाणि होगा । दण्डपाणिसे निरमित्र और निरमित्रसे क्षेमकका जन्म होगा । इस वंशपरम्पराके विषयमें प्राचीनकालिक विप्रोंद्वारा एक श्लोक गाया गया है, जिसका आशय यह है कि 'ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी योनिस्वरूप यह वंश, जो देवर्षियोंद्वारा सत्कृत है, कलियुगमें राजा क्षेमकको प्राप्त कर समाप्त हो जायगा ।' इस प्रकार पुरु-वंशका तथा पाण्डुपुत्र परम बुद्धिमान् महात्मा अर्जुनके वंशका वर्णन मैंने यथार्थरूपसे कर दिया ॥ ७२—८९ ॥

## इक्यावनवाँ अध्याय

अग्नि-वंशका वर्णन तथा उनके भेदोपभेदका कथन

ऋषय ऊचुः

ये पूज्याः स्युर्द्विजातीनामग्नयः सूत सर्वदा ।  
 तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः ॥ १  
 सूत उवाच

योऽसावग्निरभिमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।  
 ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजायती ॥ २  
 पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः ।  
 निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः ॥ \* ३  
 शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः ।  
 पवमानात्मजो ह्यग्निः कव्यवाहन उच्यते ॥ ४  
 पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ।  
 देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितृणां कव्यवाहनः ॥ ५  
 सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः ।  
 एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्रैव च ॥ ६

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! जो अग्नि द्विजातियोंके लिये सदा परम पूज्य माने गये हैं, अब उनका तथा उनके वंशका आनुपूर्वी वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें जो ये अग्निके अभिमानी देवता कहे गये हैं, वे ब्रह्माके मानस पुत्र हैं । स्वाहाने उनके संयोगसे पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जो अग्नि भी कहलाते हैं । उनमेंसे पावकको वैद्युत (जलबिजलीसे उत्पन्न), पवमानको निर्मथ्य (निर्मन्थन करनेपर उत्पन्न) और शुचिको सौर (सूर्यके सम्बन्धसे उत्पन्न) अग्नि कहा जाता है । ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाववाले) माने गये हैं । पवमानके पुत्र जो अग्नि हुए, उन्हें कव्यवाहन कहा जाता है । पावकके पुत्र सहरक्ष और शुचिके पुत्र हव्यवाहन हुए । देवताओंके अग्नि हव्यवाह हैं, जो ब्रह्माके प्रथम पुत्र हैं । सहरक्ष असुरोंके अग्नि हैं तथा पितरोंके अग्नि कव्यवाहन हैं । इस प्रकार ये तीनों देव-असुर-पितर—इन तीनोंके पृथक्-पृथक् अग्नि हैं । इनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या उनचास हैं ।

\* 'अव्योनिर्वैद्युतः स्मृतः' इति पाठान्तरम् ।

प्रवक्ष्ये नामतस्तान् वै प्रविभागेन तान् पृथक् ।  
 पावनो लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः ॥ ७  
 ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ।  
 वैश्वानरः सुतस्तस्य वहन् हव्यं समाः शतम् ॥ ८  
 सम्भूतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करादधि ।  
 सोऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दध्यडङ्गाथर्वणःसुतः ॥ ९  
 भृगोः प्रजायताथर्वा दध्यडङ्गाथर्वणः स्मृतः ।  
 तस्य ह्यलौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स वै स्मृतः ॥ १०  
 अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते ।  
 स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः ॥ ११  
 ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ ।  
 ततः षोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः ।  
 यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥ १२  
 कावेरीं कृष्णवेणां च नर्मदां यमुनां तथा ।  
 गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥ १३  
 विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा ।  
 सीतां मनस्विनीं चैव ह्रादिनीं पावनां तथा ॥ १४  
 तासु षोडशधाऽत्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक् ।  
 तदा तु विहरंस्तासु धिष्ययेच्छः स बभूव ह ॥ १५  
 स्वाभिधानस्थिता धिष्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णावः ।  
 धिष्ययेषु जज्ञिरेयस्मात् ततस्ते धिष्णावः स्मृताः ॥ १६  
 इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ययेषु प्रतिपेदिरे ।  
 तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताऽशृणु ।  
 विभुः प्रवाहणोऽग्नीधस्तत्रस्था धिष्णावोऽपरे ॥ १७  
 विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे ।  
 अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम् ॥ १८  
 वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ।  
 सप्राडग्निसुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः ॥ १९

उनको मैं विभागपूर्वक पृथक्-पृथक् नामनिर्देशानुसार बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम पावन नामक लौकिक अग्निदेव हुए, जो ब्रह्माके पुत्र हैं। उनके पुत्र ब्रह्मौदनाग्नि हुए, जो भरत नामसे भी विख्यात हैं। वैश्वानर नामक अग्नि सौ वर्षांतक हव्यको वहन करते रहे। पुष्कर (या आकाश)-का मन्थन करनेपर अथर्वके पुत्ररूपमें जो अग्नि उत्पन्न हुए, वे दध्यडङ्गाथर्वणके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हींको दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है। भृगुसे अथर्वाकी और अथर्वासे अङ्गिराकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। उनसे अलौकिक अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिसे दक्षिणाग्नि भी कहते हैं ॥ २—१० ॥

हम पहले कह चुके हैं कि जो पवमान अग्नि हैं, वे ही निर्मथ्य नामसे भी कहे जाते हैं। वे ही ब्रह्माके प्रथम पुत्र गार्हपत्य\* अग्नि हैं। फिर संशतिसे सभ्य और आवस्थ्य—इन दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। तदनन्तर आहवनीय नामक अग्निने जिन्हें ब्राह्मणोंने अग्निके अभिमानी देवता नामसे अभिहित किया है, अपनेको सोलह भागोंमें विभक्त कर कावेरी, कृष्णवेणा, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी (कोसी), शतद्रु (सतलज), सरयू, सीता, मनस्विनी, ह्रादिनी तथा पावना—इन सोलह नदियोंके साथ पृथक्-पृथक् विहार किया। उनके साथ विहार करते समय अग्निको स्थान-प्राप्तिकी इच्छा उत्पन्न हो गयी थी, इसलिये उन नदियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र उस इच्छाके अनुसार धिष्णु (या धिष्य) कहलाये। चूँकि वे यज्ञिय अग्निके स्थापनयोग्य स्थानपर पैदा हुए थे, इसलिये धिष्णु नामसे कहे जाने लगे। इस प्रकार ये सभी नदीपुत्र धिष्य (यज्ञिय अग्निके स्थापनयोग्य स्थान)-में उत्पन्न हुए थे। अब इनके विहार एवं उपासनायोग्य स्थानका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। यज्ञादि पुण्य अवसरके उपस्थित होनेपर विभु, प्रवाहण, अग्नीध्र आदि अन्यान्य धिष्णु वहाँ उपस्थित होकर यथास्थान विचरते रहते हैं। अब अनिर्देश्य और अनिवार्य अग्नियोंके क्रमको सुनिये। वासव नामक अग्नि, जिसे कृशानु भी कहते हैं, यज्ञकी दूसरी वेदीके उत्तर भागमें स्थित होते हैं। उन्हीं अग्निका एक नाम सप्राट् भी है। इन अग्निके आठ पुत्र हैं, जिनकी विप्रगण उपासना करते हैं।

\* इन अग्नियोंकी वैदिक २१ यज्ञसंस्थाओंमें बड़ी प्रतिष्ठा है। इनका विस्तृत विवरण आश्वलायनादि (२। १-२) श्रौतसूत्रों, कौशिकसूत्र, महाभारत, ब्रह्मण्डपुराणादिमें हैं। वासुदेवशरण अग्रवालने 'Matsya Puran A Study' में, अनेक कर्मोंमें अग्निनाम संग्रहमें विधानपारिजातकारने तथा 'यज्ञमीमांसा' ग्रन्थमें वेणीराम शर्मने बहुत श्रम किया है।

पर्जन्यः पवमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदूश्यते ।  
पावकोष्णः समूहास्तु वोत्तरे सोऽग्निरुच्यते ॥ २०  
हव्यसूदो ह्यसम्भूज्यः शामित्रः स विभाव्यते ।  
शतधामा सुधाज्योती रौद्रैश्वर्यः स उच्यते ॥ २१  
ब्रह्मज्योतिर्विसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते ।  
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखो यतः ॥ २२  
अनिर्देश्यो ह्याहिर्बुद्ध्यो बहिरन्ते तु दक्षिणे ।  
पुत्रा होते वासवस्य उपस्थेया द्विजैः स्मृताः ॥ २३  
ततो विहरणीयांस्तु वक्ष्याम्यष्टौ तु तान् सुतान् ।  
होत्रियस्य सुतो ह्यग्निर्बहिर्षो हव्यवाहनः ॥ २४  
प्रशंस्योऽग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः संसहायकः ।  
सुतो ह्यग्नेर्विश्ववेदा ब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते ॥ २५  
अपां योनिः स्मृतः स्वाम्भः सेतुर्नाम विभाव्यते ।  
धिष्य आहरणा होते सोमेनेज्यन्त वै द्विजैः ॥ २६  
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते ।  
अग्निः सोऽवभूथो ज्ञेयो वरुणेन सहेज्यते ॥ २७  
हृदयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन् ।  
मन्युमाञ्चठरश्चाग्निर्विद्वाग्निः सततं स्मृतः ॥ २८  
परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन् ।  
अग्नेर्मन्युमतः पुत्रो घोरः संवर्तकः स्मृतः ॥ २९  
पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखे ।  
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते ॥ ३०  
सहरक्षस्तु वै कामान् गृहे स वसते नृणाम् ।  
क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान् योऽत्ति वै मृतान् ॥ ३१  
इत्येते पावकस्याग्रेद्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।  
ततः सुतास्तु सौवीर्याद् गन्धवैरसुरैर्हताः ॥ ३२  
मथितो यस्त्वरण्यां तु सोऽग्निराप समिन्धनम् ।  
आयुर्नाम्ना तु भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ॥ ३३  
आयुषो महिमान् पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः ।  
पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः ॥ ३४

पवमान नामक जो द्वितीय अग्नि हैं, वे पर्जन्यके रूपमें देखे जाते हैं और उत्तर दिशामें स्थित पावक नामक अग्निको समूहा अग्नि कहा जाता है। असम्भूज्य हव्यसूद अग्निको शामित्र कहा जाता है। शतधामा अग्नि सुधाज्योति हैं, इन्हें रौद्रैश्वर्य नामसे अभिहित किया जाता है। ब्रह्मज्योति अग्निको वसुधाम और ब्रह्मस्थानीय भी कहते हैं। अजैकपाद उपासनीय अग्नि हैं, इन्हें शालामुख भी कहा जाता है। अहिर्बुद्ध्य अनिर्देश्य अग्नि हैं, ये वेदीकी दक्षिण दिशामें परिधिके अन्तमें स्थित होते हैं। वासव नामक अग्निके ये आठों पुत्र ब्राह्मणोंद्वारा उपासनीय बतलाये गये हैं॥ ११—२३ ॥

अब मैं उन आठ विहरणीय अग्निपुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। बर्हिष नामक होत्रिय अग्निके पुत्र हव्यवाहन अग्नि हैं। इसके पश्चात् प्रचेता नामक प्रशंसनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिनका दूसरा नाम संसहायक है। पुनः अग्निपुत्र विश्ववेदा हुए, जिन्हें ब्राह्मणाच्छंसिं भी कहा जाता है। जलसे उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध स्वाम्भ अग्नि सेतु नामसे भी अभिहित होते हैं। इन धिष्यसंज्ञक अग्नियोंका यज्ञमें यथास्थान आवाहन होता है और ब्राह्मणलोग सोम-रसद्वारा इनकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् जो पावक नामक अग्नि हैं, जिन्हें सत्पुरुषगण योग नामसे पुकारते हैं, उन्हींको अवभूथ अग्निर्म समझना चाहिये। उनकी वरुणके साथ पूजा होती है। हृदय नामक अग्निके पुत्र मन्युमान् हैं, जिन्हें जठराग्नि भी कहते हैं। ये मनुष्योंके उदरमें स्थित रहकर भक्षित पदार्थोंको पचाते हैं। परस्परके संघर्षसे उत्पन्न हुए प्रभावशाली अग्निको, जो जगत्में निरन्तर प्राणियोंको जलाते रहते हैं, विद्वाग्नि कहते हैं। मन्युमान् अग्निके पुत्र संवर्तक हैं जो अत्यन्त भयंकर बताये जाते हैं। वे समुद्रमें बडवामुखद्वारा निरन्तर जलपान करते हुए निवास करते हैं। समुद्रवासी संवर्तक अग्निके पुत्र सहरक्ष बतलाये जाते हैं। सहरक्ष मनुष्योंके घरोंमें निवास करते हैं और उनकी सभी कामनाओंको सम्पन्न करते रहते हैं। सहरक्षके पुत्र क्रव्यादग्नि हैं, जो मरे हुए पुरुषोंका भक्षण करते हैं। इस प्रकार ये सभी ब्राह्मणोंद्वारा पावक नामक अग्निके पुत्र बतलाये गये हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य पुत्र हैं, उन्हें सौवीर्यसे गन्धर्वों और असुरोंने हरण कर लिया था। अरणीमें मन्थन करनेसे जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह तो इन्धनके आश्रित रहता है। पृथु-योनिके लिये जिन अग्निकी नियुक्ति हुई है, उन ऐश्वर्यशाली अग्निका नाम आयु है। आयुके पुत्र महिमान् और उनके पुत्र दहन हैं, जो पाकयज्ञोंके अभिमानी देवता हैं। वे ही उन यज्ञोंमें हवन किये गये हविको खाते हैं।

१. यह अग्निष्टोमके १६ ऋत्विजोंमेंसे भी एक होता है, जिसका इस अग्निपरिचर्यासे विशेष सम्बन्ध होता है।

२. यज्ञान्तहवन एवं अवभूथ स्नानके समय इसका उपयोग होता है।

सर्वस्माद् देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः ।  
 पुत्रोऽस्य स हितो ह्यग्निरद्धृतः स महायशाः ॥ ३५  
 प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः ।  
 अद्धृतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान् स्मृतः ॥ ३६  
 विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः ।  
 विविधाग्निसुतादर्कादग्रयोऽष्टौ सुताः स्मृताः ॥ ३७  
 काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहा यतिकृच्च यः ।  
 सुरभिर्वसुमान् नादो ह्यर्थश्वश्रैव रुक्मवान् ॥ ३८  
 प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्वैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिः ।  
 शुच्यग्रेस्तु प्रजा होषा अग्रयश्च चतुर्दशा ॥ ३९  
 इत्येते ह्यग्रयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे ।  
 समतीते तु सर्गे ये यामैः सह सुरोत्तमैः ॥ ४०  
 स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्रयस्तेऽभिमानिनः ।  
 एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेष्विह ॥ ४१  
 स्थानाभिमानिनोऽग्नीधाः प्रागासन् हव्यवाहनाः ।  
 काम्यनैमित्तिकाद्यास्ते ये ते कर्मस्ववस्थिताः ॥ ४२  
 पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैयमैश्च तैः सह ।  
 एते देवगणैः सार्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥ ४३  
 इत्येता योनयो ह्युक्ताः स्थानाख्या जातवेदसाम् ।  
 स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सवर्णान्तेषु सप्तसु ॥ ४४  
 तैरेवं तु प्रसंख्यातं साम्प्रतानागतेष्विह ।  
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ॥ ४५  
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ।  
 वर्तन्ते वर्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्रयः ॥ ४६  
 अनागतैः सुरैः सार्धं वत्स्यन्तोऽनागतास्त्वथ ।  
 इत्येष प्रचयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथाक्रमम् ।  
 विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ४७

दहनके पुत्र अद्धृत नामक अग्नि हैं, जो समस्त देवलोकोंमें दिये गये हव्य एवं कव्यका भक्षण करते हैं । वे महान् यशस्वी और जनताके हितकारी हैं । ये प्रायश्चित्तनिमित्तक यज्ञोंके अभिमानी देवता हैं, इसी कारण उन यज्ञोंमें हवन किये गये हव्यको खाते हैं । अद्धृतके पुत्र वीर नामक अग्नि हैं, जो देवांशसे उद्धृत और महान् कहे जाते हैं । उनके पुत्र विविधाग्नि हैं और विविधाग्निके पुत्र महाकवि हैं । विविधाग्निके दूसरे पुत्र अर्कसे आठ अग्नि-पुत्रोंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है ॥ २४—३७ ॥

कामना-पूर्तिके निमित्त किये जानेवाले यज्ञोंके जो अभिमानी देवता हैं, उनका नाम रक्षोहा अग्नि है । उनका दूसरा नाम यतिकृत भी है । इनके अतिरिक्त सुरभि, वसुरल, नाद, हर्यश्च, रुक्मवान्, प्रवर्ग्य और क्षेमवान्—ये आठ अग्नि कहे गये हैं । ये सभी शुचि नामक अग्निकी संतान हैं । इन सबकी संख्या चौदह है । इस प्रकार मैंने उन सभी अग्नियोंका वर्णन कर दिया, जिनका यज्ञ-कार्यमें प्रयोग किया जाता है । प्रलयकालमें ये सभी अग्निपुत्र याम नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सभी चेतन एवं अचेतन विहरणीय पदार्थोंके अभिमानी देवता थे । इस पूर्व मन्वन्तरके समाप्त हो जानेपर पुनः प्रथम मन्वन्तरमें ये सभी अग्निगण शुक्र एवं याम नामक देवगणोंके साथ स्थानाभिमानी देवता बनकर अग्नीध नामक अग्निके साथ हव्य-वहनका कार्य करते थे और काम्य एवं नैमित्तिक आदि जो यज्ञ किये जाते थे, उन कर्मोंमें अवस्थित रहते थे । इस प्रकार मैंने अग्नियोंकी स्थाननामी योनियोंका वर्णन कर दिया । उन्हें स्वारोचिष् मन्वन्तरसे लेकर सावर्णि मन्वन्तरतकके सातों लोकोंमें वर्तमान जानना चाहिये । ऋषियोंने वर्तमान एवं भविष्यमें आनेवाली सभी मन्वन्तरोंमें इसी प्रकार अग्नियोंके लक्षणका वर्णन किया है । ये सभी अग्नि समस्त मन्वन्तरोंमें नाना प्रकारके रूप और प्रयोजनोंसे समन्वित हो वर्तमानकालीन याम नामक देवताओंके साथ वर्तमान थे और इस समय भी हैं तथा भविष्यमें भी उत्पन्न होकर इन नये उत्पन्न होनेवाले देवगणोंके साथ निवास करेंगे । इस प्रकार मैं अग्नियोंके वंश-समूहका क्रमशः विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर चुका । अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ३८—४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निवंशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अग्निवंश-वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५१ ॥

## बावनवाँ अध्याय

### कर्मयोगकी महत्ता

ऋष्य ऊचुः

इदानीं प्राह यद् विष्णुः पृष्ठः परममुत्तमम्।  
तमिदानीं समाचक्ष्व धर्मधर्मस्य विस्तरम्॥ १  
सूत उवाच

एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः।  
विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम्॥ २  
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे।  
कर्मयोगं च सांख्यं च यथावद् विस्तरान्वितम्॥ ३

ऋष्य ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत कर्मयोगस्य लक्षणम्।  
यस्मादविदितं लोके न किंचित् तव सुव्रत॥ ४

सूत उवाच

कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम्।  
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते॥ ५  
कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात् तत्परमं पदम्।  
कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः॥ ६  
तस्मात् कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम्।  
वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम्॥ ७  
अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः।  
दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽतुरस्य तु॥ ८  
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः।  
अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम्॥ ९  
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषु पार्जितेषु च।  
तथास्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा॥ १०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सूर्यपुत्र मनुद्वारा पूछे जानेपर भगवान् विष्णुने उनसे धर्म और अधर्मके जिस परम उत्तम प्रसङ्गको विस्तारपूर्वक कहा था, वह इस समय आप हमलोगोंको बतलाइये ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्रलयकालके उस एकार्णवके जलमें मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने सूर्यपुत्र मनुके प्रति सर्गके विस्तारका पूर्णरूपसे वर्णन किया था। साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोगको भी उन्हें विस्तारपूर्वक यथार्थरूपसे बतलाया था (उसे ही मैं आपलोगोंको सुनाना चाहता हूँ) ॥ २-३ ॥

ऋषियोंने पूछा—उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले सूतजी! आपके लिये लोकमें कोई वस्तु अज्ञात तो है नहीं, अतः हमलोग आपसे कर्मयोगका लक्षण सुनना चाहते हैं ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! विष्णुभगवान् ने जिस प्रकार कर्मयोगकी व्याख्या की थी, उसे मैं बतला रहा हूँ। कर्मयोग ज्ञानयोगसे हजारोंगुना अधिक प्रशस्त है; क्योंकि ज्ञान कर्मयोगसे ही प्रादुर्भूत होता है; अतः वह परमपद है। ब्रह्म भी कर्मज्ञानसे उद्भूत होता है। कर्मके बिना तो ज्ञानकी सत्ता ही नहीं है। इसीलिये कर्मयोगके अभ्यासमें संलग्न मनुष्य अविनाशी तत्त्वको प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण वेद और वेदज्ञोंके आचार-विचार धर्मके मूल हैं। उनमें आठ प्रकारके आत्मगुण प्रधानरूपसे विद्यमान रहते हैं; जैसे समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा, दुःखसे पीड़ित प्राणीको आश्वासन प्रदान करना और उसकी रक्षा करना, जगत् में किसीसे ईर्ष्याद्वेष न करना, बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, परिश्रमरहित अथवा अनायास प्राप्त हुए कार्योंके अवसरपर उन्हें माङ्गलिक आचार-व्यवहारके द्वारा सम्पन्न करना, अपने द्वारा उपार्जित द्रव्योंसे दीन-दुखियोंकी सहायता करते समय कृपणता न करना तथा पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा निःस्पृह

अष्टावात्मगुणः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः ।  
 अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ॥ ११  
 कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दूश्यते ।  
 श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत् प्रयत्नतः ॥ १२  
 देवतानां पितृणां च मनुष्याणां च सर्वदा ।  
 कुर्यादहरहर्यज्ञेर्भूतर्विगणतर्पणम् ॥ १३  
 स्वाध्यायैर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि ।  
 पितृञ्श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः ॥ १४  
 पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये ।  
 कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी ॥ १५  
 पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति ।  
 तत्पापनाशनायामी पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः \* ॥ १६  
 द्वात्रिंशच्च तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्तिताः ।  
 तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः ॥ १७  
 तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म समाचरेत् ।  
 गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ॥ १८  
 गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च ।  
 पूजयेद् ब्रह्मविष्वर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम् ॥ १९  
 व्रतोपवासैर्विधिवच्छ्रद्धया च विमत्सरः ।  
 योऽसावतीन्द्रियः शान्तः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।  
 वासुदेवो जगन्मूर्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यामी ॥ २०

रहना—पुराणोंके ज्ञाना विद्वानेंद्रारा ये आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं। यही कर्मयोग ज्ञानयोगका साधक है। जगत्में कर्मयोगके बिना किसीको ज्ञानकी प्राप्ति हुई हो, ऐसा नहीं देखा गया है; इसलिये श्रुतियों एवं स्मृतियोंद्वारा कहे गये धर्मका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। प्रतिदिन सर्वदा देवताओं, पितरों और मनुष्योंको यज्ञोंद्वारा तृप्त करना चाहिये। साथ ही पितरों और ऋषियोंके तर्पणका कार्य भी कर्तव्य है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह स्वाध्यायद्वारा देवताओंकी, हवनद्वारा ऋषियोंकी, श्राद्धद्वारा पितरोंकी, अन्नद्वारा अतिथियोंकी तथा बलिकर्मद्वारा मृत प्राणियोंकी विधिपूर्वक अर्चना करे। गृहस्थोंके घरमें जीवहिंसाके पाँच प्रकारके स्थानोंपर घटित हुए पापकी निवृत्तिके लिये इन पाँच प्रकारके यज्ञोंका विधान बतलाया गया है। गृहस्थके घरमें जीवहिंसाके पाँच स्थान ये हैं—कण्डनी (वस्तुओंके कूटनेका पात्र ओखली, खरल आदि), पेषणी (पीसनेका उपकरण चक्की, सिलवट आदि), चुल्ली (चूल्हा), जलकुम्भी (पानी रखे जानेवाले घड़े) और प्रमार्जनी (झाड़ू आदि)। इन स्थानोंपर उत्पन्न हुए पापके कारण गृहस्थ पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता, अतः उन पापोंके विनाशके लिये ये पाँचों यज्ञ बतलाये गये हैं ॥५—१६॥

द्विजातियोंके लिये जो चालीस प्रकारके संस्कार बतलाये गये हैं, उनसे संस्कृत होनेपर भी जो मनुष्य (उपर्युक्त आठ) आत्मगुणोंसे रहित है, वह मोक्षका भागी नहीं हो सकता। इसलिये आत्मगुणोंसे सम्पन्न होकर ही वैदिक कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। गृहस्थको सदा उपर्जित धनद्वारा गौओं और ब्राह्मणोंका कल्याण करना चाहिये। उसका कर्तव्य है कि वह व्रत एवं उपवास आदि करके गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, गन्ध, माला और जल आदिसे ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र और वसुस्वरूप शिवकी श्रद्धापूर्वक विधिसहित पूजा करे; इसमें कृपणता न करे। जो ये इन्द्रियोंके अगोचर, परम शान्त, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अव्यक्त, अविनाशी एवं विश्वस्वरूप भगवान् वासुदेव हैं,

\* ये १३—१६ तकके ४ श्लोक मनुस्मृति ३। ६८—७१ में भी प्राप्त होते हैं। और आठ गुणोंके निर्देशक श्लोक गौतमधर्मसूत्र शुक्र स० २१। १७१, चाणक्य० १२। १५ आदिमें उपलब्ध भी हैं।

ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्तण्डो वृषवाहनः ।  
अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादश गणाधिपाः ।  
लोकपालाधिपाश्चैव पितरो मातरस्तथा ॥ २१

इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः ।  
ब्रह्माद्याश्चतुरो मूलमव्यक्ताधिपतिः स्मृतः ॥ २२

ब्रह्मणा चाथ सूर्येण विष्णुनाथ शिवेन वा ।  
अभेदात् पूजितेन स्यात् पूजितं सच्चराचरम् ॥ २३

ब्रह्मादीनां परं धाम त्रयाणामपि संस्थितिः ।  
वेदमूर्तावितः पूषा पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ २४

तस्मादग्निद्विजमुखान् कृत्वा सम्पूजयेदिमान् ।  
दानैर्वैतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः ॥ २५

इति क्रियायोगपरायणस्य  
वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य ।  
विकर्मभीतस्य सदा न किंचित्  
प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके ॥ २६

उन्हींकी ये विभूतियाँ हैं। उन विभूतियोंके नाम ये हैं—ब्रह्मा, भगवान्, विष्णु, सूर्य, शिव, आठ वसु, ग्यारह गणाधिप, लोकपालाधीश्वर, पितर और मातृकाएँ। चराचर जगत् सहित ये सभी विभूतियाँ बतलायी गयी हैं। ब्रह्मा आदि चार (ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शिव) देवता मूलरूपसे इस जगत् के अव्यक्त अधिपति कहे जाते हैं। इसलिये ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु अथवा शिवकी अभेदभावसे पूजा करनेपर चराचर जगत् की पूजा सम्पन्न हो जाती है। सूर्य ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंके परम धाम हैं, जिनमें वे निवास करते हैं। सूर्यदेव वेदोंके मूर्तस्वरूप हैं, अतः इनकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अग्नि अथवा ब्राह्मणोंके मुखोंमें इनका आवाहन करके दान, व्रत, उपवास, जप, हवन आदि-द्वारा इनकी पूजा करे। इस प्रकार जो मनुष्य कर्मयोगनिष्ठ, वेदान्तशास्त्र और स्मृतियोंका प्रेमी तथा अधर्मसे सदा भयभीत रहता है, उसके लिये इस लोक अथवा परलोकमें कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता, अर्थात् सभी पदार्थ उसके हस्तगत हो जाते हैं ॥ १७—२६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कर्मयोगमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कर्मयोगमाहात्म्यनामक बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५२ ॥

## तिरपनवाँ अध्याय

पुराणोंकी नामावलि और उनका संक्षिप्त परिचय

ऋष्य ऊचुः

पुराणसंख्यामाचक्षव् सूत विस्तरशः क्रमात्।  
दानर्थर्ममशेषं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १

सूत उवाच

इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा।  
यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत ॥ २

मत्स्य उवाच

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।  
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥ ३  
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ ।  
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ४  
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।  
अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणं न्यायविस्तरम् ॥ ५  
मीमांसां धर्मशास्त्रं च परिगृह्य मया कृतम्।  
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ॥ ६  
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च ।  
श्रुत्वा जगाद् च मुनीन् प्रति देवांश्चतुर्मुखः ॥ ७  
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत् ततः ।  
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ॥ ८  
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे ।  
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥ ९  
तथाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशयते ।  
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन्द्वापरेष्ठतकोटिप्रविस्तरम् ॥ १०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमलोगोंसे क्रमशः पुराणोंकी संख्याका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। साथ ही उनके दान और धर्मकी सम्पूर्ण आनुपूर्वी विधि भी यथार्थरूपसे बतलाइये ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसे ही प्रश्नके उत्तरमें उस समय पुराणपुरुष विश्वात्मा मत्स्यभगवानने मनुके प्रति पुराणोंके विषयमें जो कुछ कहा था, उसे सुनिये ॥ २ ॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजर्णे! ब्रह्माजीने (सृष्टिनिर्माणके समय) समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणका ही स्मरण किया था। उसके बाद उनके मुखोंसे वेद प्रादुर्भूत हुए हैं। अनघ! उस कल्पान्तरमें सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत, पुण्यप्रद और त्रिवर्ग—तीन पुरुषार्थके समुदाय (धर्म, अर्थ, काम)-का साधनस्वरूप पुराण एक ही था। सभी लोकोंके जलकर नष्ट हो जानेपर मैंने ही अश्व (हयग्रीव)-रूपसे व्याकरणादि छहों अङ्गोंसहित चारों वेद, पुराण, न्यायशास्त्र, मीमांसा और धर्मशास्त्रको ग्रहण करके उनका संकलन किया था। पुनः मैंने ही कल्पके आदिमें एकार्णवके समय मत्स्यरूपसे जलके भीतर स्थित रहकर इस (विषय)-का पूर्णरूपसे वर्णन किया था। उसे सुनकर ब्रह्माने देवताओं और मुनियोंसे कहा था। राजन्! तभीसे संसारमें समस्त शास्त्रों और पुराणोंका प्रचार हुआ। काल-प्रभावसे पुराणकी ओरसे लोगोंकी उदासीनता देखकर प्रत्येक द्वापरयुगमें मैं सदा व्यासरूपसे प्रकट होता हूँ\* और उस (पुराण)-का संक्षेप कर चार लाख श्लोकोंमें बना देता हूँ। वही अठारह भागोंमें विभक्त होकर इस भूलोकमें प्रकाशित होता है। आज भी यह पुराण इस देवलोकमें सौ करोड़ श्लोकोंमें ही है।

\* व्यासजीके विष्णुरूप होनेकी बात महाभारत, विष्णुपुराण (३।४।५.) आदिमें भी कही गयी है, यथा—‘कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।’ को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद् भवेत्॥’ इत्यादि।

तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्।  
पुराणानि दशाष्टौ च साम्ग्रतं तदिहोच्यते ॥ ११  
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।  
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ॥ १२  
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते।  
लिखित्वा तच्च यो दद्याज्जलधेनुसमन्वितम्।  
वैशाखपूर्णिमायां च ब्रह्मलोके महीयते ॥ १३  
एतदेव यदा पद्मभूद्वैरण्यं जगत्।  
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः।  
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते ॥ १४  
तत्पुराणं च यो दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्।  
ज्येष्ठे मासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफलं लभेत् ॥ १५  
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।  
यत् प्राह धर्मानखिलांस्तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ॥ १६  
तदाषाढे च यो दद्याद् घृतधेनुसमन्वितम्।  
पौर्णमास्यां विपूतात्मा स पदं याति वारुणम्।  
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ॥ १७  
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।  
यत्र तद्वायवीयं स्याद् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम्।  
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ॥ १८  
श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितम्।  
यो दद्याद् वृषसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।  
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ॥ १९

उसका पूरा सारांश मैंने संक्षेपसे इस चार लाख श्लोकोंवाले पुराणमें भर दिया है। अब उन अठारह पुराणोंका यहाँ वर्णन किया जाता है ॥ ३—११ ॥

श्रेष्ठ मुनियो! अब मैं उनका नाम निर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महर्षि मरीचिके प्रति जितने श्लोकोंका वर्णन किया था, वह प्रथम ब्रह्मपुराण कहा जाता है। उसमें तेरह हजार श्लोक हैं। जो मानव इस पुराणको लिखकर उस पुस्तकका जलधेनु<sup>१</sup> (दानके लिये जलके घड़ेमें कल्पित गौ)-के साथ वैशाखकी पूर्णिमा तिथिके दिन ब्राह्मणको दान कर देता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जिस समय यह जगत् स्वर्णमय कमलके रूपमें परिणत था, उस समयका वृत्तान्त जिसमें वर्णन किया गया है, उसे विद्वान्लोग (द्वितीय) पद्मपुराण नामसे अभिहित करते हैं। उस पद्मपुराणकी श्लोक-संख्या पचपन हजार बतायी जाती है। स्वर्णनिर्मित कमलसे युक्त उस पुराणका जो मनुष्य तिलके साथ ज्येष्ठमासमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ<sup>२</sup>के फलकी प्राप्ति होती है। महर्षि पराशरने वाराह-कल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर जिन सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किया है, उनसे युक्त (तृतीय) पुराणको वैष्णव (विष्णुपुराण) कहा जाता है। विद्वान्लोग उसका प्रमाण तेईस<sup>३</sup> हजार श्लोकोंका बतलाते हैं। जो मानव आषाढ़मासकी पूर्णिमाको घृतधेनुयुक्त इस पुराणका दान करता है, उसका आत्मा पवित्र हो जाता है और वह वरुण-लोकमें जाता है। श्वेतकल्पके प्रसङ्गवश वायुने इस मर्त्यलोकमें जिन धर्मोंका वर्णन किया था, उनका संकलन जिसमें हुआ है, उसे (चतुर्थ) वायवीय (वायुपुराण या शिवपुराण<sup>४</sup>) कहते हैं। वह शङ्करजीके माहात्म्यसे भी परिपूर्ण है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य श्रावणमासमें श्रावणी पूर्णिमाको गुडधेनु और बैलके साथ इस पुराणका कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह पवित्रात्मा होकर शिवलोकमें एक कल्पतक निवास करता

१. जलधेनु-दानकी विधि वाराहादि पुराणोंमें तथा इसी मत्स्यपुराणके ८२ वें अध्यायमें भी आयी है। इसके आगे घृतधेनु आदिकी भी विधि है, जिसकी चर्चा यहाँ भी आगे १७ वें श्लोकमें हुई है।

२. विष्णुपुराण (५। ५। १४) तथा मनुस्मृति (११। २६०) आदि स्मृतियोंके अनुसार यह क्रतुराद्-सभी यज्ञोंका राजा तथा सर्वपापानोदक है। शतपथब्राह्मणके अश्वमेधकाण्डके पचासों पृष्ठों तथा ऐतेरेय-तैत्तिरीय ब्राह्मणों, तैत्तिरीय संहिता-भाष्य, आश्वलायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, कात्यायनादि श्रौतसूत्रों तथा वाल्मीकीय रामायण वालकाण्ड, उत्तरकाण्ड, पद्म आदि कई स्थानों और रामाश्वमेध, महाभारतके आश्वमेधिकर्पवं, जैमिनीयाश्वमेध आदि कई ग्रन्थोंमें इसकी विस्तृत महिमा एवं विधि निरूपित है। इसमें प्रति आठवें पूरे दिन 'परिप्लव' में पुराण (विशेषकर मत्स्यपुराण) सुननेकी विधि है और इसमें पुराण-श्रवणकी ३६ बार पुनरावृत्ति होती है।

३. यह संख्या विष्णुधर्मोत्तरको लेकर है। अन्यथा लिङ्गपुराणादिके वचनानुसार इसमें साढ़े पाँच सहस्र श्लोक ही हैं।

४. पुराणगणनामें चौथी संख्यापर कहीं वायु और कहीं शिवपुराणका उल्लेख है। शिवपुराणमें भी एक वायवीय संहिता है तथा शूलपाणिके वचनानुसार वायुपुराण भी शैवपुराण ही है।

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।  
वृत्रासुरवधोपेतं तद् भागवतमुच्यते॥ २०

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः।  
तद्वृत्तान्तोद्धर्वं लोके तद् भागवतमुच्यते॥ २१

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्देमसिंहसमन्वितम्।  
पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्मां स याति परमां गतिम्।  
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत् प्रचक्षते॥ २२

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च।  
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते॥ २३

आश्विने पञ्चदश्यां तु दद्याद् धेनुसमन्वितम्।  
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ २४

यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा।  
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः॥ २५

मार्कण्डेयेन कथितं तत् सर्वं विस्तरेण तु।  
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते॥ २६

प्रतिलिख्य च यो दद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम्।  
कार्तिक्यां पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग् भवेत्॥ २७

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।  
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्रेयं तत् प्रचक्षते॥ २८

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्देमपद्मसमन्वितम्।  
मार्गशीर्ष्या विधानेन तिलधेनुसमन्वितम्।  
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम्॥ २९

है। जिसमें गायत्रीका आश्रय लेकर विस्तारपूर्वक धर्मका वर्णन किया गया है तथा जो वृत्रासुरवधके वृत्तान्तसे संयुक्त है, उसे (पञ्चम) भागवतपुराण<sup>१</sup> कहा जाता है। इसी प्रकार सारस्वतकल्पमें जो श्रेष्ठ मनुष्य हो गये हैं, लोकमें उनके वृत्तान्तसे सम्बन्धित पुराणको 'भागवतपुराण' कहा जाता है। यह पुराण अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया जाता है। जो मनुष्य इसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित सिंहके साथ भाद्रपदमासकी पूर्णिमा तिथिको दान कर देता है वह परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है॥ १२—२२॥

जिस पुराणमें बृहत्कल्पका आश्रय लेकर देवर्षि नारदने धर्मोंका उपदेश किया है, उसे (षष्ठ) नारदीय (नारदपुराण) कहा जाता है। उसमें पचीस हजार श्लोक हैं। जो मनुष्य आश्विनमासकी पूर्णिमा तिथिको धेनुके साथ इस पुराणका दान करता है, वह पुनर्जन्मसे रहित परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। जिस पुराणमें पक्षियोंका आश्रय लेकर एक मुनिके प्रश्न करनेपर धर्मचारी मुनियोंद्वारा धर्म और अधर्मके विचारका जो कुछ व्याख्यान दिया गया है, उन सबका महर्षि मार्कण्डेयने पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, वह लोकमें (सप्तम) मार्कण्डेयपुराणके नामसे विख्यात है। इसकी श्लोक-संख्या नौ हजार है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर स्वर्णनिर्मित हाथीके सहित कार्तिकी पूर्णिमाको उस पुस्तकका दान करता है, वह पुण्डरीक-यज्ञके<sup>२</sup> फलका भागी होता है। जिसमें ईशानकल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर अग्निने महर्षि वसिष्ठके प्रति उपदेश किया है, उसे (अष्टम) आग्रेय (अग्निपुराण) कहते हैं। इसमें सोलह सहस्र श्लोक हैं। जो मनुष्य इसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित कमल और तिलधेनुसहित मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमा तिथिको विधि-विधानके साथ दान करता है, उसके लिये यह सम्पूर्ण यज्ञोंके फलका प्रदाता हो जाता है।

१. भागवतपुराण बहुत प्राचीन सर्वाधिक प्रसिद्ध है; क्योंकि इसपर ११ वीं शतीकी श्रीधरीसे १९ वीं शतीकी अन्वितार्थप्रकाशिकातक पचासों संस्कृत टीकाएँ हैं तथा सूरसागर आदि-जैसे सैकड़ों देशी-विदेशी भाषाओंमें इसके गद्य-पद्यानुवाद हैं। बर्नफका फ्रेंच अनुवाद भी श्रेष्ठरूप पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसपर प्रथम शतीसे लेकर मध्यादितकके 'भागवत'-तात्पर्यनिर्णय, लघुभागवतामृत, वृहद्भागवतामृतादि अगणित प्रबन्ध निवद्ध हुए हैं और गोपाल भट्ट आदिके हरिभक्तिविलासादिमें इसके हजारों चरन उद्धृत हैं। कल्याणके १६वें वर्षमें १-२ अङ्कोंमें यह अनुवाद तथा मूलसहित प्रकाशित है। गीताप्रेससे इसकी प्रायः लाखों प्रतियाँ विभिन्न संस्करणोंमें बिक चुकी हैं।

२. इस यज्ञकी विस्तृत महिमा एवं प्रक्रिया आश्वलायन, सत्यापाठ, कात्यायन देवयाज्ञिक पद्धति आदिमें है।

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।  
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम् ।  
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ॥ ३०  
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।  
भविष्यच्चरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते ॥ ३१  
तत्पौषे मासि यो दद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः ।  
गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्ठोमफलं भवेत् ॥ ३२  
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।  
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुक्तमम् ॥ ३३  
यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदनं वर्णितं मुहुः ।  
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैर्वतमुच्यते ॥ ३४  
पुराणं ब्रह्मवैर्वतं यो दद्यान्माघमासि च ।  
पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३५  
यत्राग्निलङ्घमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ।  
धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्रेयमधिकृत्य च ॥ ३६  
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम् ।  
तदेकादशसाहस्रं फाल्युन्यां यः प्रयच्छति ।  
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम् ॥ ३७  
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।  
विष्णुनाभिहितं क्षोणयै तद्वाराहमिहोच्यते ॥ ३८  
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः ।  
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥ ३९  
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ।  
पौर्णमास्यां मधौ दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम् ॥ ४०

जिसमें अघोर कल्पके वृत्तान्तके प्रसङ्गवश सूर्यके माहात्म्यका आश्रय लेकर ब्रह्माने मनुके प्रति जगत्की स्थिति और प्राणिसमूहके लक्षणका वर्णन किया है तथा जिसमें प्रायः भविष्यकालीन चरितका वर्णन आया है, उसे इस लोकमें (नवम) भविष्यपुराण कहते हैं। उसमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक हैं। जो मनुष्य ईर्ष्या-द्वेषरहित हो पौषमासकी पूर्णिमा तिथिको उसका गुड़से पूर्ण घड़ेसहित दान करता है, उसे अग्निष्टोम\* नामक यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। जिसमें रथन्तर कल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर सावर्णि मनुने नारदजीके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके श्रेष्ठ माहात्म्यका वर्णन किया है तथा जिसमें ब्रह्मवराहका वृत्तान्त बारम्बार वर्णित हुआ है, उसे (दशम) ब्रह्मवैर्वतपुराण कहते हैं। इसमें अठारह सहस्र श्लोक हैं। जो मनुष्य माघमासमें पूर्णिमा तिथिको शुभ दिनमें इस ब्रह्मवैर्वतपुराणका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें सत्कृत होता है ॥ २३—३५ ॥

जिसमें कल्पान्तके समय अग्निका आश्रय लेकर देवाधिदेव महेश्वरने अग्निलङ्घके मध्यमें स्थित रहते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिके लिये उपदेश दिया है, उस पुराणको स्वयं ब्रह्माने (एकादश) लैङ्ग (लिङ्ग)-पुराण नामसे अभिहित किया है। उसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। जो मानव फाल्युनमासकी पूर्णिमा तिथिको तिलधेनुसहित इस पुराणका दान करता है, वह शिवजीकी साम्यताको प्राप्त कर लेता है। मुनिवरो! जिसमें मानवकल्पके प्रसङ्गवश पुनः महावराहके माहात्म्यका आश्रय लेकर भगवान् विष्णुने पृथ्वीके प्रति उपदेश दिया है, उसे भूतलपर (द्वादश) वराहपुराण कहते हैं। उस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य गरुड़की सोनेकी मूर्ति बनवाकर उस मूर्ति तथा तिल-धेनुके साथ इस पुराणका चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथिको कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह वराहभगवान्की कृपासे विष्णुपदको प्राप्त कर लेता है।

\* यह ज्योतिष्टोमका एक अङ्ग है।

यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः।  
कल्पे तत्पुरुषं वृत्तं चरितैरुपबृहितम्॥ ४१

स्कान्दं नाम पुराणं च होकाशीति निगद्यते।  
सहस्राणि शतं चैकमिति मत्येषु गद्यते॥ ४२

परिलिख्य च यो दद्याद्देमशूलसमन्वितम्।  
शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ॥ ४३

त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः।  
त्रिवर्गमध्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम्॥ ४४

पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्।  
यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौ पदम्॥ ४५

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले।  
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः॥ ४६

इन्द्रद्युम्प्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसंनिधौ।  
अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम्॥ ४७

यो दद्यादयने कूर्मं हैमकूर्मसमन्वितम्।  
गोसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्यान्नः॥ ४८

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः।  
मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम्॥ ४९

अधिकृत्याब्रवीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः।  
तन्मात्म्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश॥ ५०

जिसमें कल्पान्तके समय स्वामिकार्तिकने माहेश्वर धर्मोंका आश्रय लेकर शिवजीके सुशोभन चरित्रोंसे युक्त वृत्तान्तका वर्णन किया है, उस (त्रयोदश पुराण)-का नाम स्कन्दपुराण है। वह मृत्युलोकमें इक्यासी हजार एक सौ श्लोकोंका बतलाया जाता है<sup>१</sup> जो मनुष्य उसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित त्रिशूलके साथ सूर्यके मीन राशिपर आनेपर (प्रायः चैत्रमासमें) दान करता है, वह शिव-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें ब्रह्माने त्रिविक्रमके माहात्म्यका आश्रय लेकर त्रिवर्गोंका वर्णन किया है, उसे (चतुर्दश) वामनपुराण कहते हैं। इसमें दस हजार श्लोक हैं। यह कूर्मकल्पका अनुगमन करनेवाला तथा मङ्गलप्रद है। जो मानव शरत्कालीन विषुवयोग (१८ सितम्बरके लगभग दिन-रातके बराबर होनेके काल—तुलासंक्रान्ति)-में इसका दान करता है, वह विष्णु-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें कूर्मरूपी भगवान् जनार्दनने रसातलमें इन्द्रद्युम्प्रकी कथाके प्रसङ्गवश इन्द्रके निकट धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके माहात्म्यका ऋषियोंके प्रति वर्णन किया है, उसे (पञ्चदश) कूर्मपुराण कहते हैं। यह लक्ष्मीकल्पसे सम्बन्ध रखनेवाला है। इसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जो मनुष्य सूर्यके उत्तरायण एवं दक्षिणायनके प्रारम्भकालमें स्वर्णनिर्मित कच्छपसहित कूर्मपुराणका दान करता है, उसे एक हजार गोदान करनेका फल प्राप्त होता है॥ ३६—४८॥

मुनिवरो! जिसमें कल्पके प्रारम्भमें भगवान् जनार्दनने मत्स्य-रूप धारण करके मनुके प्रति श्रुतियोंकी प्रवृत्तिके निर्मित नृसिंहावतारके वृत्तान्तका आश्रय लेकर सातों कल्पोंके वृत्तान्तोंका वर्णन किया है, उसे (षोडश<sup>२</sup> मात्स्य) मत्स्यपुराण जानना चाहिये। उसमें चौदह हजार श्लोक हैं।

१. यहाँके अतिरिक्त विष्णुपुराण ३। ६। २१—२४; भागवत १२। ७ तथा १३; मार्कण्डेय १३४; वाराह ११२। ७९—७२; कूर्म १। १३—१५; लिङ्ग १। ३९। ६१—४; पद्म १। ६२। २—७; नारद १। ९२—१०९ आदिमें पुराणक्रम एवं श्लोक-संख्यादिका वर्णन है। शोधकर्ताओंने इन क्रमोंको तीन भागोंमें क्रमबद्ध किया है। इनमें मत्स्य, भागवत, विष्णु आदि क्रमको मत्स्य या विष्णुपुराणक्रम कहा है। इनके अनुसार स्कन्दपुराण १३वीं संख्यापर तथा लिङ्गपुराणद्वारा निर्दिष्ट क्रममें १७ वीं संख्यापर निर्दिष्ट है। इसके सूतसंहितादि छ: संहिताओंका एक रूप तथा माहेश्वरादि सात खण्डोंका दूसरा रूप—दोनों मिलकर पैने दो लाख श्लोक होते हैं। फिर शम्भल-माहात्म्य, सत्यनारायण-ब्रतकथा आदि इसके अनेक खिल ग्रंथ भी हैं।

२. यह विष्णुपुराण आदिक्रममें १६ वीं संख्यापर, पर लिङ्गादिक्रममें १५ वीं संख्यापर परिगणित है।

विषुवे हेममत्स्येन थेन्वा चैव समन्वितम्।  
यो दद्यात् पृथिवी तेन दत्ता भवति चाखिला ॥ ५१

यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद् गरुडोद्भवम्।  
अधिकृत्याब्रवीत् कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते ॥ ५२

तदष्टादशकं चैकं सहस्राणीह पठ्यते।  
सौवर्णहंससंयुक्तं यो ददाति पुमानिह ।

स सिद्धिं लभते मुख्यां शिवलोके च संस्थितिम् ॥ ५३

ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः ।  
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम् ॥ ५४

भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः ।  
तद् ब्रह्माण्डपुराणं च ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥ ५५

यो दद्यात् तद् व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम्।  
राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।

हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम् ॥ ५६

चतुर्लक्ष्मिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्दुतकर्मणा ।  
मत्पितुर्मम पित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५७

इह लोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा ।  
इदमद्यापि देवेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ५८

उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः ।  
पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम् ।

तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥ ५९

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते ।  
नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते ॥ ६०

जो मनुष्य विषुवयोग (मेष अथवा तुलाकी संक्रान्ति)-में स्वर्णनिर्मित मत्स्य और दुधरू गौके साथ इस पुराणका दान करता है, उसके द्वारा समग्र पृथ्वीका दान सम्पन्न हो जाता है अर्थात् उसे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त होता है। जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने गरुड़-कल्पके समय विश्वाण्ड (ब्रह्माण्ड)-से गरुडकी उत्पत्तिके वृत्तान्तका आश्रय लेकर उपदेश दिया है, उसे इस लोकमें सप्तदश गारुड (गरुडपुराण) कहते हैं। उसे भूतलपर उन्नीस हजार श्लोकोंका कहा जाता है। जो पुरुष स्वर्णनिर्मित हंसके साथ इस पुराणका दान करता है, उसे मुख्य सिद्धि प्राप्त होती है और वह शिवलोकमें निवास करता है। जिसमें ब्रह्माने पुनः ब्रह्माण्डके माहात्म्यका आश्रय लेकर वृत्तान्तोंका वर्णन किया है तथा जिसमें भविष्यकल्पोंका भी विस्तारपूर्वक वर्णन सुना जाता है, उसे ब्रह्माने (अन्तिम—अष्टादश) ब्रह्माण्डपुराण बतलाया है१। वह ब्रह्माण्डपुराण बारह हजार दो सौ श्लोकोंवाला है। जो मानव व्यतीपात नामक योगमें पीले रंगके दो ऊनी वस्त्रोंके साथ इस पुराणका दान करता है, उसे एक हजार राजसूय-यज्ञके२ फलकी प्राप्ति होती है। उसी (ब्रह्माण्डपुराण)-को यदि स्वर्णनिर्मित गौके साथ दान किया जाय तो वह ब्रह्मलोक-प्राप्तिरूपी फलका प्रदाता बन जाता है। अद्भुतकर्मा महर्षि वेदव्यासने मेरे पिता रोमहर्षणके प्रति इन चार लाख श्लोकोंका वर्णन किया था। उसीको मेरे पिताने मुझे बतलाया और मैंने आपलोगोंके प्रति निवेदन कर दिया। परमर्षि व्यासजीने मृत्युलोकमें लोकहितके लिये इसका संक्षेप कर दिया है, किंतु देवलोकमें तो यह आज भी सौ करोड़ श्लोकोंसे युक्त ही है॥ ४९—५८॥

ऋषियो! अब मैं उन उपपुराणोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो लोकमें प्रचलित हैं। पद्मपुराणमें जहाँ नृसिंहवतारके वृत्तान्तका वर्णन किया गया है, उसे नारसिंह (नरसिंहपुराण३) कहते हैं। उसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जिसमें स्वामिकार्तिकने नन्दाके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे लोग नन्दीपुराणके नामसे पुकारते हैं।

१. यह पुराण प्रायः सर्वांशमें वायुपुराणसे (और अत्यधिक अंशोंमें मत्स्यपुराणसे भी) मिल जाता है, यह एक विचित्र बात है। केवल अन्तमें उसके गयामाहात्म्यकी जगह इसमें ललितोपाख्यान है।

२. यह भी अश्वमेधवत् प्रसिद्ध तथा श्रौतसूत्रोंमें प्रायः उन्हों स्थलोंपर चर्चित है।

३. कल्याण वर्ष ४५ में यह मूलसहित और सानुवाद प्रकाशित है और अब ग्रन्थरूपमें पुनर्मुद्रित हो चुका है।

यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम्।  
प्रोच्यते तत् पुनलोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः ॥ ६१

एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगण्यते।  
अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदिश्यते ॥ ६२

विजानीधं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्।  
पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमतः स्मृतम् ॥ ६३

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।  
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥ ६४

ब्रह्मविष्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।  
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके ॥ ६५

धर्मश्शार्थश्च कामश्च मोक्षशैवात्र कीर्त्यते।  
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत् फलम् ॥ ६६

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।  
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥ ६७

तद्वदग्रेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।  
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते ॥ ६८

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।  
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्।

लक्षणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ॥ ६९

वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।  
ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ७०

आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः।  
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्।  
एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः ॥ ७१

मुनिवरो! जहाँ भविष्यकी चर्चासहित साम्बका प्रसङ्ग लेकर कथानकका वर्णन किया गया है, उसे लोकमें साम्बपुराण कहते हैं। इस प्रकार सूर्य-महिमाके प्रसङ्गमें होनेसे उसे आदित्यपुराण भी कहा जाता है। द्विजवरो! उपर्युक्त अठारह पुराणोंसे पृथक् जो पुराण बतलाये गये हैं, उन्हें इन्हींसे निकला हुआ समझना चाहिये। पुराणोंमें बतलाये गये सर्गादि पाँच अङ्ग तथा आख्यान भी कहे गये हैं। उनमें—सर्ग (ब्रह्मद्वारा की गयी सृष्टिरचना), प्रतिसर्ग (ब्रह्माके मानस पुत्रोंद्वारा की गयी सृष्टिरचना\*), वंश (सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि), मन्वन्तर (स्वायम्भुव आदि मनुओंका कार्यकाल) और वंश्यानुचरित (पूर्वोक्त वंशोंमें उत्पन्न हुए नरेशोंका जीवन-चरित)।—ये पाँच पुराणोंके लक्षण बतलाये गये हैं। इन पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है ॥ ५९—६६ ॥

सत्त्वगुणप्रधान पुराणोंमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यकी तथा रजोगुणप्रधान पुराणोंमें ब्रह्माकी प्रधानता जाननी चाहिये। उसी प्रकार तमोगुणप्रधान पुराणोंमें अग्नि और शिवजीके माहात्म्यका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। संकीर्ण पुराणों (उपपुराणों)-में सरस्वती और पितरोंका वृत्तान्त कहा गया है। सत्यवती-नन्दन व्यासजीने इन अठारह पुराणोंकी रचना कर इनके कथानकोंसे समन्वित सम्पूर्ण महाभारत नामक इतिहासकी रचना की, जो वेदोंके अर्थसे सम्पन्न है। वह एक लाख श्लोकोंमें वर्णित है। महर्षि वाल्मीकिने जिस उत्तम रामोपाख्यान—रामायणका वर्णन किया है, उसीको पहले सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तार करके ब्रह्माने नारदजीको बतलाया था। नारदजीने उसे लाकर वाल्मीकिजीको प्रदान किया। वाल्मीकिजीने धर्म, अर्थ और कामके साधनस्वरूप उस रामायणका लोकोंमें प्रचार किया। इस प्रकार ये सवा पाँच लाख श्लोक मृत्युलोकमें प्रचलित बतलाये गये हैं।

\* पुराणोंमें प्रायः 'प्रतिसर्ग'का दूसरा अर्थ प्रतिसंचर या प्रलय भी आया है। यहाँ केवल तीन ही उपपुराणोंका वर्णन हुआ है। पर कूर्मपुराणके आरम्भमें अठारह उपपुराणोंका रूप कथन है।

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।  
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम् ।  
यः पठेच्छृणुयाद् वापि स याति परमां गतिम् ॥ ७२  
इदं पवित्रं यशसो निधान-  
मिदं पितृणामतिवल्लभं च ।  
इदं च देवेष्वमृतायितं च  
नित्यं त्विदं पापहरं च पुंसाम् ॥ ७३\*

विद्वान्लोग इन पुराणोंको पुरातन कल्पकी कथाएँ मानते हैं ।  
इन पुराणोंका अनुक्रम धन, यश और आयुकी वृद्धि  
करनेवाला है । जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह परम  
गतिको प्राप्त हो जाता है । यह परम पवित्र और यशका  
खजाना है । यह पितरोंको परम प्रिय है । यह देवताओंमें  
अमृतके समान प्रतिष्ठित है और नित्य मनुष्योंके पापका  
हरण करनेवाला है ॥ ६७—७३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पुराणानुक्रमणिकाभिधानं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पुराणानुक्रमणिकाभिधान नामक तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५३ ॥

## चौवनवाँ अध्याय

### नक्षत्र-पुरुष-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषतः ।  
व्रतोपवाससंयुक्तान् यथा मत्स्योदितानिह ॥ १

महादेवस्य संवादे नारदस्य च धीमतः ।  
यथावृत्तं प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थसाधकम् ॥ २

कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदः पुरा ।  
त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गहरं हरम् ॥ ३

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मविष्णवन्दनायक ।  
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा ।  
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत् ॥ ४

नारी वा विधवा सर्वगुणसौभाग्यसंयुता ।  
क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किञ्चिद् व्रतमिहोच्यताम् ॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इसके बाद अब मैं  
व्रत और उपवाससे समन्वित सभी दान-धर्मोंका पूर्णरूपसे  
उसी प्रकार वर्णन कर रहा हूँ, जैसे इस मृत्युलोकमें  
मत्स्यभगवान्-मनुके प्रति किया था । इसी प्रकार महादेवजी  
तथा बुद्धिमान् नारदजीके संवादमें धर्म, काम और अर्थको  
सिद्ध करनेवाला जैसा वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे भी  
बतला रहा हूँ । पूर्वकालकी बात है, एक बार भगवान्  
शङ्कर, जो तीन नेत्रोंसे युक्त, कामदेवके शत्रु और कामदेवके  
शरीरको दग्ध कर देनेवाले हैं, कैलास पर्वतके शिखरपर  
सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय देवर्षि नारदने उनके  
पास जाकर ऐसा प्रश्न किया ॥ १—३ ॥

नारदजीने पूछा—भगवन् ! आप तो देवेश्वरोंके  
भी देव तथा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रके अधीश्वर हैं,  
इसलिये यह बताइये कि आपका अथवा भगवान्  
विष्णुका भक्त पुरुष किस प्रकार धन-सम्पत्ति, नीरोगता,  
सौन्दर्य, आयु, भाग्य और सौभाग्यरूपी सम्पत्तिसे सम्पन्न  
हो सकता है ? अथवा विधवा स्त्री (जन्मान्तरमें) किस  
प्रकार समस्त गुणों एवं सौभाग्यसे संयुक्त हो सकती है ?  
तथा देव ! इस लोकमें कोई अन्य मुक्तिदायक व्रत हो  
तो क्रमशः उसे भी बतलाइये ॥ ४-५ ॥

\* पुराण-संख्या-निर्देश-दाननिरूपणादि प्रायः अठारह पुराणोंमें ही वर्णित है । पर यहाँ तथा नारदपुराण ९१—१०८में यह कुछ  
विस्तारसे निरूपित है । गीतामें ब्रह्मसूत्रका, ब्रह्मसूत्रमें गीताका, पुराणोंमें महाभारतका तथा परस्पर एक-दूसरेका एवं महाभारतमें  
पुराणोंका ठीक-ठीक वर्णन व्यासजीके अन्द्रुत दिव्य ज्ञान एवं वैदुष्यका ही चमत्कार है ।

ईश्वर उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया ब्रह्मन् सर्वलोकहितावहम् ।  
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद् व्रतं शृणु नारद ॥ ६

नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतं नारायणात्मकम्।  
पादादि कर्यादि शीर्षान्तं विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥ ७

प्रतिमां वासुदेवस्य मूलक्षर्णादिषु चार्चयेत् ।  
चैत्रमासं समाप्ताद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ८

मूले नमो विश्वधराय पादौ  
 गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।  
 जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव  
 द्वे जानुनी चाश्मिकुमारऋक्षे ॥ ९

पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरु  
 नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।  
 पूर्वोत्तराफल्मुनियुगमके च  
 मेद्रुं नमः पञ्चशराय पूज्यम् ॥ १०

कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः  
 सम्पूजयेन्नारद कृत्तिकासु ।  
 तथार्चयेद् भाद्रपदाद्वये च  
 पाश्च नमः केशनिषूदनाय ॥ ११

कुक्षिद्वयं नारद रेवतीषु  
दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।  
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय  
नमस्तथोरःस्थलमेव पूज्यम् ॥ १२

पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीय-  
मधौघविध्वंसकराय तत्त्वं ।  
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय  
नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ॥ १३

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! आपने तो बड़ा उत्तम प्रश्न किया, यह तो समस्त लोकोंके लिये हितकारी है। नारद! जो सुननेमात्रसे शान्ति प्रदान करनेवाला है, वह ब्रत मैं बतला रहा हूँ, सुनो। नक्षत्रपुरुष\* नामक एक ब्रत है, जो भगवान् नारायणका स्वरूप ही है। इस ब्रतमें चैत्रमास आनेपर भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करते हुए विधिपूर्वक चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्तकी एक विष्णुकी मूर्ति बनावे। फिर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर मूल आदि नक्षत्रोंमें क्रमशः भगवान् विष्णुकी उस प्रतिमाका पूजन करे। मूल-नक्षत्रमें 'विश्वधराय नमः'—'विश्वके धारकको नमस्कार है'—यों कहकर दोनों चरणोंकी, रोहिणी नक्षत्रमें 'अनन्ताय नमः'—'अनन्तको प्रणाम है'—कहकर दोनों गुलफोंकी तथा अश्विनी नक्षत्रमें 'वरदाय नमः'—'वरदाताको अभिवादन है'—कहकर दोनों जानुओं और दोनों जङ्घाओंकी पूजा करे। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंमें 'शिवाय नमः'—'शिवजीको नमस्कार है'—कहकर दोनों ऊरुओंकी पूजा करे। पूर्वाफाल्युनी और उत्तराफाल्युनी नक्षत्रोंमें 'पञ्चशराय नमः'—'पाँच बाण धारण करनेवालेको प्रणाम है'—कहकर जननेन्द्रियकी पूजा करे। नारद! कृत्तिकानक्षत्रमें 'शार्ङ्गधराय नमः'—'शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवालेको अभिवादन है'—कहकर भगवान् विष्णुकी कटिका पूजन करे। इसी प्रकार पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रोंमें 'केशिनिष्ठूदनाय नमः'—'केशी नामक असुरके संहारकको नमस्कार है'—कहकर दोनों पार्श्वभागोंकी पूजा करे। नारद! रेवती नक्षत्रमें 'दामोदराय नमः'—'दामोदरको प्रणाम है'—कहकर दोनों कुक्षियोंकी पूजा करनी चाहिये। अनुराधा नक्षत्रमें 'माधवाय नमः'—'माधव (लक्ष्मीके प्राणपति)-को अभिवादन है'—कहकर वक्षःस्थलकी पूजा करे। धनिष्ठा नक्षत्रमें 'अघौघविध्वंसकराय नमः'—'पापसमूहके विनाशकको नमस्कार है'—कहकर पृष्ठभागकी पूजा करनी चाहिये। विशाखा नक्षत्रमें 'श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमः'—'लक्ष्मी, शङ्ख, चक्र, खड़ग और गदा धारण करनेवालेको प्रणाम है'—कहकर भुजाओंका पूजन करना चाहिये ॥ ६—१३ ॥

\* वामनपुराण अध्याय ८० के 'नक्षत्रपुरुष' व्रतमें भी प्रायः ये ही बातें स्वल्पान्तरसे आयी हैं। वहाँ पूजाके मन्त्र नहीं, पर दोहदपदार्थ—अभिलिप्त पदार्थ उपदिष्ट हैं। इस अर्चामें नक्षत्रक्रमसे नहीं, अङ्गक्रमसे निर्दिष्ट हैं। यह अन्धुत बात है।

हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय  
नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः ।

पुनर्वसावङ्गलिपूर्वभागः  
साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः ॥ १४

भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि  
सम्पूजयेन्मत्स्यशरीरभाजः ।

कूर्मस्य पादौ शरणं ब्रजामि  
ज्येष्ठासु कण्ठे हरिर्चर्चनीयः ॥ १५

श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्ये  
जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक् ।

पुष्ये मुखं दानवसूदनाय  
नमो नृसिंहाय च पूजनीयम् ॥ १६

नमो नमः कारणवामनाय  
स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम् ।

आस्य हरेर्भार्गवनन्दनाय  
सम्पूजनीयं द्विज वारुणे तु ॥ १७

नमोऽस्तु रामाय मधासु नासा  
सम्पूजनीया रघुनन्दनस्य ।

मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्ये  
नमोऽस्तु ते राम विघूर्णिताक्ष ॥ १८

बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं  
चित्रासु सम्पूज्यतमं मुरारेः ।

शिरोऽभिपूज्यं भरणीषु विष्णो-  
र्नमोऽस्तु विश्वेश्वर कल्किरूपिणे ॥ १९

आद्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य  
सम्पूजनीया हरये नमस्ते ।

उपोषितेनक्षत्रदिनेषु भक्त्या  
सम्पूजनीया द्विजपुङ्गवाः स्युः ॥ २०

हस्तनक्षत्रमें 'मधुसूदनाय नमः'—'मधु नामक दैत्यके वधकर्ताको अभिवादन है'—कहकर कैटभ नामक असुरके शत्रु—भगवान् विष्णुके (चारों) हाथोंका पूजन करे। पुनर्वसुनक्षत्रमें 'साम्नामधीशाय नमः'—'सामवेदकी ऋचाओंके अधीश्वरको नमस्कार है'—कहकर अङ्गलियोंके अग्रभागकी पूजा करे। आश्लेषा-नक्षत्रके दिन 'मत्स्यशरीरभाजः पादौ शरणं ब्रजामि'—'मत्स्य-शरीरधारीके चरणोंके शरणागत हूँ'—कहकर नखोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठानक्षत्रमें 'कूर्मस्य पादौ शरणं ब्रजामि'—'कूर्मरूपधारी भगवान् के चरणोंकी शरणमें जाता हूँ'—कहकर कण्ठस्थानमें भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। श्रवणनक्षत्रमें 'वराहाय नमः'—'वराहरूपधारी भगवान् को प्रणाम है'—कहकर भगवान् जनार्दनके दोनों कानोंका\* भलीभाँति पूजन करे। पुष्य-नक्षत्रमें 'दानवसूदनाय नृसिंहाय नमः'—'दानवोंके विनाशक नृसिंहरूपधारी भगवान् को अभिवादन है'—कहकर मुखकी अर्चना करनी चाहिये। स्वातीनक्षत्रमें 'कारणवामनाय नमो नमः'—'कारणवश वामनरूपधारी भगवान् को बारम्बार नमस्कार है'—कहकर दाँतोंके अग्रभागकी पूजा करनी चाहिये। द्विजवर नारद! शतभिष-नक्षत्रमें 'भार्गवनन्दनाय नमः'—'भार्गवनन्दन परशुरामजीको प्रणाम है'—कहकर मुखके मध्यभागका पूजन करे। मधानक्षत्रमें 'रामाय नमोऽस्तु'—'श्रीरामको अभिवादन है'—कहकर श्रीरघुनन्दनकी नासिकाकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। मृगशिरानक्षत्रमें 'विघूर्णिताक्ष राम! ते नमोऽस्तु'—'तिरछी चितवनसे युक्त राम! आपको नमस्कार है'—कहकर उत्तमाङ्गरूप नेत्रोंकी पूजा करे। चित्रानक्षत्रमें 'शान्ताय बुद्धाय नमः'—'परम शान्त बुद्धभगवान् को प्रणाम है'—कहकर भगवान् मुरारिके ललाटका पूजन करना चाहिये। भरणीनक्षत्रमें 'विश्वेश्वर कल्किरूपिणे नमोऽस्तु'—'विश्वेश्वर! कल्किरूपधारी आपको अभिवादन है'—कहकर भगवान् विष्णुके सिरका पूजन करे। आद्रानक्षत्रमें 'हरये नमस्ते'—'श्रीहरिको नमस्कार है'—कहकर पुरुषोत्तमभगवान् के बालोंकी पूजा करनी चाहिये। ब्रती मनुष्यद्वारा उपर्युक्त नक्षत्र-दिनोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे पूजन करते रहना चाहिये ॥ १४—२० ॥

\* यहाँ पुनर्वसुका सामवेदसे, हस्तका हाथोंसे तथा श्रवणमें कानों आदिसे सम्बन्ध दिखलाकर आलंकारिक चमत्कार प्रदृष्ट हुआ है।

पूर्णे व्रते सर्वगुणान्विताय  
 वाग्रूपशीलाय च सामगाय।  
 हैर्मि विशालायतबाहुदण्डं  
 मुक्ताफलेन्दूपलवत्रयुक्ताम् ॥ २१  
 जलस्य पूर्णे कलशे निविष्टा-  
 मर्चा हरेवस्त्रगवा सहैव।  
 शश्यां तथोपस्करभाजनादि-  
 युक्तां प्रदद्याद् द्विजपुङ्गवाय ॥ २२  
 यद्यस्ति यत्किञ्चिदिहस्ति देयं  
 दद्याद् द्विजायात्महिताय सर्वम्।  
 मनोरथं नः सफलीकुरुष्व  
 हिरण्यगर्भाच्युतरुद्रस्त्रपिन् ॥ २३  
 सलक्ष्मीकं सभार्याय काञ्छनं पुरुषोत्तमम्।  
 शश्यां च दद्यान्मन्त्रेण ग्रन्थिभेदविवर्जिताम् ॥ २४  
 यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित्।  
 तथा सुरूपताऽरोग्यं केशवे भक्तिमुक्तमाम् ॥ २५  
 यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन।  
 शश्या ममाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि ॥ २६  
 एवं निवेद्य तत् सर्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनम्।  
 नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत् ॥ २७  
 भुज्ञीतातैललवणं सर्वक्षेष्वप्युपोषितः।  
 भोजनं च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ २८  
 इति नक्षत्रपुरुषमुपास्य विधिवत् स्वयम्।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ २९  
 ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदिह वामुत्र वा कृतम्।  
 आत्मना वाथ पितृभिस्तत् सर्वं क्षयमाप्नुयात् ॥ ३०  
 इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या  
 पुरुषवरो व्रतमङ्गनाथ कुर्यात्।  
 कलिकलुषविदारणं मुरारे:  
 सकलविभूतिफलप्रदं च पुंसाम् ॥ ३१

इति श्रीमात्ये महापुराणे नक्षत्रपुरुषवतं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नक्षत्रपुरुष-व्रत नामक चौकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५४ ॥

इस प्रकार व्रतके समाप्त होनेपर जो सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न, वक्ता, सौन्दर्यशाली, सुशील और सामवेदका ज्ञाता हो, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको उस स्वर्णनिर्मित एवं मुक्ताफल, चन्द्रकान्त-मणि और हीरेसे खचित जलपूर्ण कलशमें रखी हुई विशाल एवं लम्बी भुजाओंवाली श्रीहरिकी अर्चा-मूर्तिका वस्त्र और गौके साथ दान कर देना चाहिये। साथ ही पात्र आदि सभी सामग्रियोंसे युक्त शश्याका भी दान करना चाहिये। इस प्रकार उस समय अपने पास जो कुछ भी दान देनेयोग्य वस्तु हो, वह सब अपने कल्याणके लिये उस ब्राह्मणको दान कर दे और उससे यों प्रार्थना करे—‘ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप द्विजवर! आप हमारे मनोरथको सफल कीजिये।’ स्वर्णनिर्मित लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तमभगवान्की मूर्तिका तथा ग्रन्थिभेदरहित शश्याका मन्त्रोच्चारणपूर्वक सपलीक ब्राह्मणको दान करनेका विधान है। उस समय ऐसी प्रार्थना करे—‘भगवन्! जैसे विष्णु-भक्तोंको कहीं भी कष्ट नहीं प्राप्त होता, वैसे ही मुझे भी (आपकी कृपासे) सुन्दर रूप, नीरोगता और आप-भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो। जनार्दन! जैसे आपकी शश्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, श्रीकृष्ण! वैसे ही मेरी भी शश्या प्रत्येक जन्ममें अशून्य बनी रहे।’ इस प्रकार निवेदन कर वस्त्र, माला, चन्दन आदि सभी वस्तुएँ नक्षत्रपुरुष-व्रतके ज्ञाता ब्राह्मणको देकर व्रतका विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार सभी नक्षत्रोंमें उपवास करके एक बार तेल और नमकरहित भोजन करनेका विधान है। वह भोजन शक्तिके अनुसार उपयुक्त होना चाहिये। उसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार स्वयं विधिपूर्वक नक्षत्रपुरुषकी उपासना करके मनुष्य इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मृत्युके पश्चात् विष्णुलोकमें पूजित होता है। साथ ही इहलोक अथवा परलोकमें अपने अथवा पितरोंद्वारा जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप घटित हुए रहते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष अथवा स्त्री—जो कोई भी हो, उसे इस व्रतका पठन, श्रवण और अनुष्ठान करना चाहिये। भगवान् मुरारिका यह व्रत कलिके प्रभावसे घटित हुए पापोंके विदीर्ण करनेवाला और समस्त विभूतियोंके फलका प्रदाता है ॥ २१—३१ ॥

## पचपनवाँ अध्याय

### आदित्यशयन\*-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः।  
अनभ्यासेन रोगाद् वा किमिष्टं ब्रतमुत्तमम्॥ १  
ईश्वर उवाच

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते।  
यस्मिन् ब्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत्॥ २  
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्कराचर्चनम्।  
येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥ ३  
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।  
सूर्यस्य चाथ संक्रान्तिस्तिथिः सा सार्वकामिकी॥ ४  
उमामहेश्वरस्याचार्मचयेत् सूर्यनामभिः।  
सूर्याचार्म शिवलिङ्गं च प्रकुर्वन् पूजयेद् यतः॥ ५  
उमापते रवेवापि न भेदो दृश्यते क्वचित्।  
यस्मात् तस्मान्मुनिश्रेष्ठ गृहे शम्भुं(भानुं) समर्चयेत्॥ ६  
हस्ते च सूर्याय नमोऽस्तु पादाव-  
काय चित्रासु च गुल्फदेशम्।  
स्वातीषु जडे पुरुषोत्तमाय  
धात्रे विशाखासु च जानुदेशम्॥ ७  
तथानुराधासु नमोऽभिपूज्य-  
मूरुद्वयं चैव सहस्रभानोः।  
ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्य-  
मिन्द्राय भीमाय कटिं च मूले॥ ८

नारदजीने पूछा—भगवन्! जो अभ्यास न होनेके कारण अथवा रोगवश उपवास करनेमें असमर्थ है, किंतु उसका फल चाहता है, उसके लिये कौन-सा ब्रत उत्तम है—यह बताइये ॥ १ ॥

भगवान् शंकरने कहा—नारद! जो लोग उपवास करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये वही ब्रत अभीष्ट है, जिसमें दिनभर उपवास करके रात्रिमें भोजनका विधान हो; मैं ऐसे महान् एवं अक्षय फल देनेवाले ब्रतका परिचय देता हूँ, सुनो। उस ब्रतका नाम है—‘आदित्य-शयन’। उसमें विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा की जाती है। पुराणोंके ज्ञाता महर्षि जिन नक्षत्रोंके योगमें इस ब्रतका उपदेश करते हैं, उन्हें बताता हूँ। जब सप्तमी तिथिको हस्तनक्षत्रके साथ रविवार हो अथवा सूर्यकी संक्रान्ति हो, वह तिथि समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली होती है। उस दिन सूर्यके नामोंसे भगवती पार्वती और महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। सूर्यदेवकी प्रतिमा तथा शिवलिङ्गका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना उचित है; क्योंकि मुनिश्रेष्ठ! उमापति शङ्कर अथवा सूर्यमें कहीं भेद नहीं देखा जाता; इसलिये अपने घरमें शङ्करजीकी अर्चना करनी चाहिये। हस्तनक्षत्रमें ‘सूर्याय नमः’ का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रानक्षत्रमें ‘अर्काय नमः’ कहकर उनके गुल्फों (घुटियों)-की, स्वातीनक्षत्रमें ‘पुरुषोत्तमाय नमः’ से पिंडलियोंकी, विशाखामें ‘धात्रे नमः’ से घुटनोंकी तथा अनुराधामें ‘सहस्रभानवे नमः’ से दोनों जाँधोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठानक्षत्रमें ‘अनङ्गाय नमः’ से गुह्य प्रदेशकी, मूलमें ‘इन्द्राय नमः’ और ‘भीमाय नमः’ से कटिभागकी पूजा करे ॥ २—८ ॥

\* इस अध्यायमें आदित्यशयन नामक बड़े सरस ब्रतधर्मका उल्लेख है। सूर्यके नामोंमें वेद, वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड एवं भविष्यपुराणके आदित्यहृदयादिमें भी आये हुए नाम हैं। मत्स्यपुराणकी सभी प्रतियाँ यहाँ बहुत अशुद्ध हैं। अन्य पुराणों तथा ब्रतनिबन्धोंके सहरे ये पाठ शुद्ध किये गये हैं।

पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं  
 त्वष्टे नमः समतुरङ्गमाय।  
 तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ  
 पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय॥ ९  
 वक्षःस्थलं ध्वान्तविनाशनाय  
 जलाधिपक्षेः परिपूजनीयम्।  
 पूर्वोत्तराभाद्रपद्म्भूये च  
 बाहू नमश्विष्ठकराय पूज्यौ॥ १०  
 साम्प्रामधीशाय करद्वयं च  
 सम्पूजनीयं द्विज रेवतीषु।  
 नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु  
 नमोऽस्तु सप्तश्विरुद्धराय॥ ११  
 कठोरधाम्भे भरणीषु कण्ठं  
 दिवाकरायेत्यभिपूजनीया ।  
 ग्रीवाग्निपक्षेऽधरमम्बुजेशे  
 सम्पूजयेन्नारद रोहिणीषु॥ १२  
 मृगेऽर्चनीया रसना पुरारे:  
 रौद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते।  
 नमः सवित्रे इति शंकरस्य  
 नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च॥ १३  
 ललाटमम्भोरुहवल्लभाय  
 पुष्टेऽलकान् वेदशरीरधारिणे।  
 सार्पेऽथ मौलिं विबुधप्रियाय  
 मघासु कर्णाविति गोगणेशो॥ १४  
 पूर्वासु गोब्राह्यणनन्दनाय  
 नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः।  
 अथोत्तराफल्गुनिभे भ्रूवौ च  
 विश्वेश्वरायेति च पूजनीये॥ १५  
 नमोऽस्तु पाशाङ्गुशपदमशूल-  
 कपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।  
 गजासुरानङ्गपुरान्थकादि-  
 विनाशमूलाय नमः शिवाय॥ १६  
 इत्यादि चास्त्राणि च पूजयित्वा  
 विश्वेश्वरायेति शिवोऽभिपूज्यः।  
 भोक्तव्यमत्रैवमतैलशाक-  
 ममांसमक्षारमभुक्तशेषम्॥ १७

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढमें 'त्वष्टे नमः' और  
 'सप्तश्विरुद्धराय नमः' से नाभिकी, श्रवणमें 'तीक्ष्णांशवे  
 नमः' से दोनों कुक्षियोंकी, धनिष्ठामें 'विकर्तनाय नमः'  
 से पृष्ठभागकी और शतभिष नक्षत्रमें 'ध्वान्तविनाशनाय  
 नमः' से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये।  
 द्विजवर! पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदमें 'चण्डकराय  
 नमः' से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें 'साम्प्रामधीशाय  
 नमः' से दोनों हाथोंका पूजन करना चाहिये। अश्विनीमें  
 'सप्तश्विरुद्धराय नमः' से नखोंका और भरणीमें  
 'कठोरधाम्भे नमः' से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन  
 करे। नारदजी! कृत्तिकामें 'दिवाकराय नमः' से ग्रीवाकी,  
 रोहिणीमें 'अम्बुजेशाय नमः' से सूर्यदेवके ओठोंकी,  
 मृगशिरामें 'हरये नमस्ते' से त्रिपुर-दाहक शिवकी  
 जिह्वाकी और आर्द्धनक्षत्रमें 'रुद्राय नमः' से उनके  
 दाँतोंकी पूजा करनी चाहिये। पुनर्वसुमें 'सवित्रे नमः'  
 से शङ्करजीकी नासिकाका, पुष्टमें 'अम्भोरुहवल्लभाय  
 नमः' से ललाटका तथा 'वेदशरीरधारिणे नमः' से  
 शिवके बालोंका पूजन करना चाहिये। आश्लेषामें  
 'विबुधप्रियाय नमः' से उनके मस्तकका, मघामें  
 'गोगणेशाय नमः' से शङ्करजीके दोनों कानोंका,  
 पूर्वाफाल्गुनीमें 'गोब्राह्यणनन्दनाय नमः' से शम्भुके  
 नेत्रोंका तथा उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रमें 'विश्वेश्वराय नमः' से  
 उनकी दोनों भौंहोंका पूजन करे। 'पाश, अङ्गुश, त्रिशूल,  
 कमल, कपाल, सर्प, चन्द्रमा तथा धनुष धारण करनेवाले  
 श्रीमहादेवजीको नमस्कार है। गजासुर, कामदेव, त्रिपुर  
 और अन्धकासुर आदिके विनाशके मूल कारण भगवान्  
 श्रीशिवको प्रणाम है।' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करके  
 प्रत्येक अङ्गकी पूजा करनेके पश्चात् 'विश्वेश्वराय नमः'  
 से भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अन्न-  
 भोजन करना उचित है। भोजनमें तेलसे युक्त शाक और  
 खारे नमकका उपयोग नहीं करना चाहिये। मांस और  
 उच्छिष्ट अन्नका तो कदापि सेवन न करे॥ ९—१७॥

इत्येवं द्विज नक्तानि कृत्वा दद्यात् पुनर्वसौ ।  
शालेयतण्डुलप्रस्थमौदुम्बरमये धृतम् ॥ १८  
संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत् ।  
सप्तमे वस्त्रयुग्मं च पारणे त्वधिकं भवेत् ॥ १९  
चतुर्दशे तु सम्प्राप्ते पारणे नारदाब्दिके ।  
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या गुडक्षीरधृतादिभिः ॥ २०  
कृत्वा तु काञ्छनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।  
शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम् ॥ २१  
शाय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्जितम् ।  
सोपधानकविश्रामस्वास्तरव्यजनाश्रिताम् ॥ २२  
भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः ।  
भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥ २३  
तस्यां विधाय तत्पद्ममलङ्घत्य गुणान्विताम् ।  
कपिलां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलां च पयस्विनीम् ॥ २४  
रौप्यखुरीं हेमशृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।  
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाङ्गे न चैनामभिलङ्घयेत् ॥ २५  
यथैवादित्य शयनमशून्यं तव सर्वदा ।  
कान्त्या धृत्या श्रिया रत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥ २६  
यथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनधं विदुः ।  
तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ २७  
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।  
शश्यागवादि तत् सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत् ॥ २८

नैतद् विशीलाय न दाम्भिकाय  
कुतक्दुष्टाय विनिन्दकाय ।  
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौले-  
र्यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते ॥ २९

द्विजवर नारद! इस प्रकार रात्रिमें शुद्ध भोजन करके पुनर्वसुनक्षत्रमें गूलरकी लकड़ीके पात्रमें एक सेर अगहनीका चावल तथा धृत रखकर सुवर्णके साथ उसे ब्राह्मणको दान करना चाहिये। सातवें दिनके पारणमें और दिनोंकी अपेक्षा एक जोड़ा वस्त्र अधिक दान करना चाहिये। नारद! चौदहवें दिनमें पारणमें गुड़, खीर और धृत आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। तदनन्तर कर्णिकासहित सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जो आठ अङ्गुलका हो तथा जिसमें पद्मरागमणि (माणिक्य अथवा लाल)-की पत्तियाँ अङ्गुत की गयी हों। फिर सुन्दर शश्या तैयार करावे, जिसपर सुन्दर बिछौने बिछाकर तकिया रखा गया हो, शश्याके ऊपर पंखा रखा गया हो। उसके आस-पास बर्तन, खड़ाऊँ, जूता, छत्र, चौंवर, आसन और दर्पण रखे गये हों। फल, वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे वह शश्या सुशोभित होनी चाहिये। ऊपर बताये हुए सर्वगुणसम्पन्न सोनेके कमलको अलङ्कृत करके उस शश्यापर रख दे। इसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूध देनेवाली अत्यन्त सीधी कपिला गौका दान करे। वह गौ उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित और बछड़ेसहित होनी चाहिये। उसके खुर चाँदीसे और सोंग सोनेसे मढ़े होने चाहिये तथा उसके साथ काँसेकी दोहनी होनी चाहिये। दिनके पूर्व भागमें ही दान करना उचित है। समयका उल्लङ्घन कदापि नहीं करना चाहिये। शश्यादानके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—‘सूर्यदेव! जिस प्रकार आपकी शश्या कान्ति, धृति, श्री और रतिसे कभी सूनी नहीं होती, वैसे ही मुझे भी सिद्धियाँ प्राप्त हों। देवगण आपके सिवा और किसीको निष्पाप एवं श्रेयस्कर नहीं जानते, इसलिये आप सम्पूर्ण दुःखोंसे भरे हुए इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।’ इसके पश्चात् भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विसर्जन करे। शश्या और गौ आदि समस्त पदार्थोंको ब्राह्मणके घर पहुँचा दे ॥ १८—२८ ॥

दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने भगवान् शंकरके इस ब्रतकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे।

भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेत-  
दाख्येयमानन्दकरं शिवस्य ।  
इदं महापातकभिन्नराणा-  
मप्यक्षरं वेदविदो वदन्ति ॥ ३०  
न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः  
पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम् ।  
नाभ्येति रोगं न च शोकदुःखं  
या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या ॥ ३१  
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन  
कृतं कुबेरेण पुरुन्दरेण ।  
यत्कीर्तनेनाप्यखिलानि नाश-  
मायान्ति पापानि न संशयोऽस्ति ॥ ३२  
इति पठति शृणोति वा य इत्थं  
रविशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात् ।  
अपि नरकगतान् पितृनशेषा-  
नपि दिवमानयतीह यः करोति ॥ ३३

भगवान्‌के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही शिवजीका यह आनन्ददायी एवं गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह ब्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस ब्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस ब्रतका पालन करती है उसे कभी रोग, दुःख और शोकका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीनकालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस ब्रतका आचरण किया था। इस ब्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक ब्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है ॥ २९—३३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यशयनब्रतं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यशयनब्रत नामक पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५५ ॥

## छप्पनवाँ अध्याय

श्रीकृष्णाष्टमी-\*ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच  
कृष्णाष्टमीमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम् ।  
शान्तिर्मुक्तिश्च भवति जयः पुंसां विशेषतः ॥ १  
शङ्करं मार्गशिरसि शाश्वं पौषेऽभिपूजयेत् ।  
माघे महेश्वरं देवं महादेवं च फाल्गुने ॥ २  
स्थाणुं चैत्रे शिवं तद्वद् वैशाखे त्वर्चयेन्नरः ।  
ज्येष्ठे पशुपतिं चार्चेदाषाढे उग्रमर्चयेत् ॥ ३

श्रीभगवान्‌ने कहा—नारद ! अब मैं श्रीकृष्णाष्टमी-ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो समस्त पापोंका विध्वंस करनेवाला है। इस ब्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्योंको विशेषरूपसे शान्ति, मुक्ति और विजयकी प्राप्ति होती है। मनुष्यको अगहनमासमें शङ्करकी और पौषमासमें शाश्वकी पूजा करनी चाहिये। माघमासमें देवाधिदेव महेश्वरका, फाल्गुनमासमें महादेवका, चैत्रमासमें स्थाणुका, और उसी प्रकार वैशाखमासमें शिवका पूजन करना उचित है। ज्येष्ठमासमें पशुपतिकी और आषाढ़मासमें उग्रकी अर्चना करे।

\* यह श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत ब्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठानविधिका वर्णन भविष्य, नारद, सौरपुराण १४। १—३६, ब्रतकल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे हैं। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये।

पूजयेच्छावणे शर्वं नभस्ये त्र्यम्बकं तथा ।  
हरमाश्वयुजे मासि तथेशानं च कार्तिके ॥ ४  
कृष्णाष्टमीषु सर्वासु शक्तः सम्पूजयेद् द्विजान् ।  
गोभूहिरण्यवासोभिः शिवभक्तांश्च शक्तिः ॥ ५  
गोमूत्रघृतगोक्षीरतिलान् यवकुशोदकम् ।  
गोशृङ्गोदशिरीषाक्बिल्वपत्रदधीनि च ।  
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य शंकरं पूजयेन्निशि ॥ ६  
अश्वत्थं च वटं चैवोदुम्बरं प्लक्षमेव च ।  
पलाशं जम्बुवृक्षं च विदुः षष्ठं महर्षयः ॥ ७  
मार्गशीर्षादिमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामिति क्रमात् ।  
एकैकं दन्तपवनं वृक्षेष्वेतेषु भक्षयेत् ॥ ८  
देवाय दद्यादर्थं च कृष्णां गां कृष्णावाससम् ।  
दद्यात् समाप्ते दध्यन्नं वितानध्वजचामरम् ॥ ९  
द्विजानामुदकुम्भांश्च पञ्चरत्नसमन्वितान् ।  
गावः कृष्णाः सुवर्णं च वासांसि विविधानि च ।  
अशक्तस्तु पुनर्दद्यात् गामेकामपि शक्तिः ॥ १०  
न वित्तशाख्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषमवाप्न्यात् ।  
कृष्णाष्टमीमुपोष्यैव सप्तकल्पशतत्रयम् ।  
पुमान् सम्पूजितो देवैः शिवलोके महीयते ॥ ११

श्रावणमासमें शर्वकी, भाद्रपदमासमें त्र्यम्बककी, आश्विनमासमें हरकी तथा कार्तिकमासमें ईशानकी पूजा करनी चाहिये। धन-सम्पत्तिसे सम्पत्र व्रतीको चाहिये कि कृष्णपक्षकी सभी अष्टमी तिथियोंमें अपनी शक्तिके अनुसार गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रद्वारा शिव-भक्त ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करे। रातमें गोमूत्र, गोघृत, गोदुग्ध, तिल, यव, कुशोदक, गो-शृङ्गोदक, शिरीष (मौलसिरी)-का पुष्प, मन्दार-पुष्प, बिल्वपत्र और दधि—एकत्र मिश्रित हुए इन पदार्थोंका अथवा केवल पञ्चगव्य (गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, गोमूत्र और गोमय)-का प्राशन करके शङ्करजीकी पूजा करे। महर्षिगण मार्गशीर्षसे प्रारम्भकर कार्तिकतक तथा क्रमशः दो-दो मासोंमें पीपल, बरगद, गूलर, पाकड़, पलाश और छठे जामुनकी दातुनोंको—पूरे वर्षभर इस व्रतमें विशेष उपकारी मानते हैं। (इन वृक्षोंमेंसे एक-एक वृक्षकी दातुन दो-दो मासके क्रमसे करनी चाहिये, अर्थात् दो महीनेतक एक वृक्षकी दातुन करे, पुनः तीसरे-चौथे माससे दूसरे वृक्षकी करे।) फिर प्रधान देवताके निमित्त अर्घ्य देना चाहिये तथा काली गौ और काला वस्त्र दान करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिके अवसरपर दही, अन्न, वितान (तम्बू, चँदोवा आदि), ध्वज, चँवर, पञ्चरत्नसे युक्त जलपूर्ण घड़ा, काली गौ, सुवर्ण, अनेकों प्रकारके रंग-विरंगे वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको देनेका विधान है। जो उपर्युक्त वस्तुएँ देनेमें असमर्थ हो, वह अपनी शक्तिके अनुसार एक ही गौका दान करे। दान देनेमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो वह दोषका भागी होता है। जो मनुष्य इस श्रीकृष्णाष्टमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह इकीस सौ कल्पोंतक देवताओंद्वारा सम्मानित होकर शिवलोकमें पूजित होता है ॥ १—११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णाष्टमीव्रतं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें श्रीकृष्णाष्टमी-व्रत नामक छप्पनबाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५६ ॥

## सत्तावनवाँ अध्याय

**रोहिणीचन्द्रशयन-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य**

नारद उवाच

**दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धि-**

युक्तः पुमान् भूपकुलान्वितः स्यात् ।

**मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यग्**

व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ॥ १

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्ठमिदं सम्यगुक्तं चाक्षय्यकारकम् ।

रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥ २

रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम् ।

तस्मिन् नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः ॥ ३

यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् ।

अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ॥ ४

तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः ।

आप्यायस्वेति च जपेद् विद्वानष्ट शतं पुनः ॥ ५

शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः ।

सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमो नमः ॥ ६

कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम् ।

पूजयेत् फलपुष्टैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ॥ ७

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तुपादा-

वनन्तधाम्नेति च जानुजड्बे ।

ऊरुद्वयं चापि जलोदराय

सम्पूजयेन्मेद्रमनन्तबाहोः ॥ ८

नमो नमः कामसुखप्रदाय

कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया ।

अथोदरं चाप्यमृतोदराय

नाभिः शशाङ्कय नमोऽभिपूज्या ॥ ९

नमोऽस्तु चन्द्राय प्रपूज्य कण्ठं

दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।

आस्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्य-

मोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय ॥ १०

नारदजीने पूछा—चन्द्रभाल ! जिस व्रतका अनुष्ठान

करनेसे मनुष्य प्रत्येक जन्ममें दीर्घायु, नीरोगता, कुलीनता और अशुद्धयसे युक्त हो राजाके कुलमें जन्म पाता है, उस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीभगवान् कहा—नारद ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ, जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं। इस लोकमें ‘रोहिणीचन्द्रशयन’ नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है। इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा-तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणीनक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सबरे पञ्चगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष ‘आप्यायस्व०’ इत्यादि मन्त्रको एक सौ आठ बार जपे। यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक ‘सोमाय नमः’, ‘वरदाय नमः’, ‘विष्णवे नमः’—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियों—विर्धमियोंसे बातचीत न करे। जप करनेके पश्चात् अपने घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे। साथ ही चन्द्रमाके नामोंका उच्चारण करता रहे। ‘सोमाय नमः’ से भगवान्के दक्षिण चरण और ‘शान्ताय नमः’ से वाम चरणका, ‘अनन्तधाम्ने नमः’ का उच्चारण करके उनके घटनों और पिंडलियोंका, ‘जलोदराय नमः’ से दोनों जाँधोंका और ‘अनन्तबाहवे नमः’ से जननेन्द्रियका पूजन करे। ‘कामसुखप्रदाय नमो नमः’ से चन्द्रस्वरूप भगवान्के कटिभागकी सदा अर्चना करनी चाहिये। इसी प्रकार ‘अमृतोदराय नमः’ से उदरका और ‘शशाङ्काय नमः’ से नाभिका पूजन करे। ‘चन्द्राय नमोऽस्तु’ से कण्ठका और ‘द्विजानामधिपाय नमः’ से दाँतोंका पूजन करना चाहिये। ‘चन्द्रमसे नमः’ से मुँहका पूजन करे। ‘कुमुद्वन्तवनप्रियाय नमः’ से

नासा च नाथाय वनौषधीना-  
 मानन्दबीजाय पुनर्भूवौ च।  
 नेत्रद्वयं पदमनिभं तथेन्दो-  
 रिन्दीवरव्यासकराय शौरे: ॥ १  
 नमः समस्ताध्वरवन्दिताय  
 कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।  
 ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय  
 केशाः सुषुग्नाधिपतेः प्रपूज्याः ॥ २  
 शिरः शशाङ्काय नमो मुरारे-  
 विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने।  
 नमः श्रियै रोहिणिनामलक्ष्यै  
 सौभाग्यसौख्यामृतसागराय ॥ ३  
 देवीं च सम्पूज्य सुगच्छपुष्ट्यै-  
 नैवेद्याधूपादिभिरन्दुपतीम् ।  
 सुप्त्वाथ भूमौ पुनरुत्थितेन  
 स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥ ४  
 दद्यात् प्रभाते सहिरण्यवारि-  
 कुम्भं नमः पापविनाशनाय।  
 सम्प्राश्य गोमूत्रममांसमन्न-  
 मक्षारमष्टावथ विंशतिं च।  
 ग्रासान् पयःसर्पियुतानुपोष्य  
 भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम् ॥ ५  
 कदम्बनीलोत्पलकेतकानि  
 जाती सरोजं शतपत्रिका च।  
 अम्लानकुञ्जान्यथ सिन्धुवारं  
 पुष्टं पुनर्नारद मल्लिकायाः।  
 शुभ्रं च विष्णोः करवीरपुष्टं  
 श्रीचम्पकं चन्द्रमसे प्रदेयम् ॥ ६  
 श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा।  
 यस्मिन् मासे व्रतादिः स्यात् तत्पुष्टैरर्चयेद्वरिम् ॥ ७  
 एवं संवत्सरं यावदुपास्य विधिवन्नरः।  
 व्रतान्ते शयनं दद्याद् दर्पणोपस्करान्वितम् ॥ ८  
 रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वाथ काञ्जनम्।  
 चन्द्रः घडङ्गुलः कार्यो रोहिणी चतुरङ्गुला ॥ ९

ओठोंका, 'वनौषधीनां नाथाय नमः' से नासिकाका, 'आनन्दबीजाय नमः' से दोनों भौंहोंका, 'इन्दीवरव्यासकराय नमः' से चन्द्रस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके कमल-सदृश दोनों नेत्रोंका, 'समस्ताध्वरवन्दिताय दैत्यनिषूदनाय नमः' से दोनों कानोंका, 'उदधिप्रियाय नमः' से चन्द्रमाके ललाटका, 'सुषुग्नाधिपतये नमः' से केशोंका पूजन करे। 'शशाङ्काय नमः' से मस्तकका और 'विश्वेश्वराय नमः' से भगवान् मुरारिके किरीटका पूजन करे। फिर 'रोहिणिनामलक्ष्यै सौभाग्यसौख्यामृतसागराय पदमश्रियै नमः'—रोहिणी नाम धारण करनेवाली सौभाग्य और सुखरूप अमृतके समुद्र लक्ष्मीको नमस्कार है—इस मन्त्रका उच्चारण कर सुगच्छित पुष्ट, नैवेद्य और धूप आदिके द्वारा इन्दुपती रोहिणीदेवीका पूजन करे॥ २—१३ १/२॥

इसके बाद रात्रिके समय भूमिपर शयन करे और सबेरे उठकर स्नानके पश्चात् 'पापविनाशाय नमः' का उच्चारण करके ब्राह्मणको घृत और सुवर्णसहित जलसे भरा कलश दान करे। फिर दिनभर उपवास करनेके पश्चात् गोमूत्र पीकर मांसवर्जित एवं खारे नमकसे रहित अन्नके अद्वाईस ग्रास, दूध और घीके साथ भोजन करे। तदनन्तर दो घड़ीतक इतिहास, पुराण आदिका श्रवण करे। नारद! चन्द्रस्वरूप भगवान् विष्णुको कदम्ब, नील कमल, केवड़ा, जाती-पुष्ट, कमल, शतपत्रिका, बिना कुम्हलाये कुञ्जके फूल, सिन्दुवार, चमेली, अन्यान्य श्वेत पुष्ट, करवीर-पुष्ट तथा चम्पा—ये ही फूल चढ़ाने चाहिये। उपर्युक्त फूलोंकी जातियोंमेंसे एक-एकको श्रावण आदि महीनोंमें क्रमशः अर्पण करे। जिस महीनेमें व्रत प्रारम्भ किया जाय, उस समय जो भी पुष्ट सुलभ हों, उन्हींके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये॥ १४—१७॥

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय व्रतीको चाहिये कि वह दर्पण तथा शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शव्यादान करे। रोहिणी और चन्द्रमा—दोनोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये।

मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम्।  
क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम्।  
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्ले शालीक्षुफलसंयुतम्॥ २०

श्रेतामथ सुवर्णास्यां खुरै रौप्यैः समन्विताम्।  
सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च शोभनम्॥ २१

भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलङ्कृत्य गुणान्वितम्।  
चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्॥ २२

यथा न रोहिणी कृष्ण शश्यां सन्त्यज्य गच्छति।  
सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु भूतिभिः॥ २३

यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः।  
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु ते सदा॥ २४

इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ।  
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुज्ञम्॥ २५

इदमेव पितृणां च सर्वदा वल्लभं मुने।  
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम्।  
चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा विमुच्यते॥ २६

नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत्।  
सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ २७

इति पठति शृणोति वा य इत्थं  
मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तने नित्यम्।  
मतिमपि च ददाति सोऽपि  
शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौधैः॥ २८

आठ मोतियोंसे युक्त तथा दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसेके पात्रमें रखकर दुर्घटपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे और पूर्वाह्लके समय अगहनी चावल, ईख और फलके साथ उसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक दान कर दे। फिर जिसका मुख (थूथुन) सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, ऐसी वस्त्र और दोहिनीके साथ दूध देनेवाली श्वेत रंगकी गौ तथा सुन्दर शङ्ख प्रस्तुत करे। फिर उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतिको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलङ्कृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पतिके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—‘श्रीकृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी देवी चन्द्रस्वरूप आपकी शश्याको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती हैं, उसी तरह मेरा भी इन विभूतियोंसे कभी विछोह न हो। चन्द्रदेव! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त हों तथा आपमें मेरी सदा अनन्य भक्ति बनी रहे।’ (इस प्रकार विनय कर शश्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।) ॥८—२४॥

निष्ठाप नारद! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप, आरोग्य और आयु प्रदान करनेवाला है। मुने! यही पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो पुरुष इसका अनुष्ठान करता है, वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इककीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है। अथवा जो स्त्री इस रोहिणीचन्द्रशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी उसी पूर्वोक्त फलको प्राप्त होती है। साथ ही वह आवागमनसे मुक्त हो जाती है। चन्द्रमाके नामकीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है। ॥२५—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतं नाम सप्तश्चाशोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रोहिणीचन्द्रशयन-व्रत नामक सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५७॥

## अद्वावनवाँ अध्याय

तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिका विधान

सूत उवाच

जलाशयगतं विष्णुमुवाच रविनन्दनः।  
तडागारामकूपानां वापीषु नलिनीषु च ॥ १  
विधिं पृच्छामि देवेश देवतायतनेषु च।  
के तत्र चर्त्विजो नाथ वेदी वा कीदूशी भवेत् ॥ २  
दक्षिणावलयः कालः स्थानमाचार्य एव च।  
द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्षव तत्त्वतः ॥ ३

मत्स्य उवाच

शृणु राजन् महाबाहो तडागादिषु यो विधिः।  
पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते वेदवादिभिः ॥ ४  
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं सम्प्राप्ते चोत्तरायणे।  
पुण्येऽहिं विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ५  
प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः।  
चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्त्रां चतुर्मुखाम् ॥ ६  
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।  
वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः ॥ ७  
नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज।  
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलिविस्तृता ॥ ८  
गत्ताश्च हस्तमात्राः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रुतमेखलाः।  
सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः ॥ ९

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सूर्यपुत्र मनुने जलाशयके भीतर अवस्थित मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुसे पूछा—‘देवेश! अब मैं आपसे तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिकी विधि पूछ रहा हूँ। नाथ! इन कार्योंमें ऋत्विज् कैसे होने चाहिये? वेदी किस प्रकारकी बनती है? दक्षिणाका प्रमाण कितना होता है? समय कौन-सा उत्तम होता है? स्थान कैसा होना चाहिये? आचार्य किन-किन गुणोंसे युक्त हों तथा कौन-से पदार्थ प्रशस्त माने गये हैं—यह सब हमें यथार्थरूपसे बतलाइये ॥ १—३ ॥

मत्स्यभगवान् कहा—महाबाहु राजन्! सुनो; तालाब आदिकी प्रतिष्ठाका जो विधान है, उसका वेदवक्ताओंने पुराणोंमें इस रूपमें वर्णन किया है। उत्तरायण आनेपर शुभ शुक्लपक्षमें ब्राह्मणद्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा ले। उस दिन ब्राह्मणोंका वरण करे और तालाबके समीप, जहाँकी भूमि पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर सुन्दर वेदी बनाये। वेदी सब ओर समतल हो और उसका मुख चारों दिशाओंमें हो। फिर सोलह हाथका मण्डप तैयार कराये, जिसके चारों ओर एक-एक दरवाजा हो। वेदीके सब ओर कुण्डोंका निर्माण कराये। नृप-नन्दन! कुण्डोंकी संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिये, इससे कम-बेशी नहीं। कुण्डोंकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक अरति<sup>३</sup>की हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओंसे सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये। योनिकी लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः—सात अङ्गुलकी हो तथा कुण्डकी गहराई एक हाथ, मेखलाएँ तीन पर्व<sup>२</sup> ऊँची होनी चाहिये। ये चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायें।

१. इसकी पूरी विस्तृत विधि भविष्यपुराण, मध्यमर्प भाग ३, अध्याय २०, (अग्निपुराण ६४) एवं प्रतिष्ठामहोदधि, प्रतिष्ठाकल्पता, प्रतिष्ठातत्त्वादर्श आदिमें है। पद्म० सृष्टिखं० २७ की विधि तो ठीक इसी प्रकार है। भविष्यपुराणमें प्रायः १ हजार श्लोक हैं। इस अध्यायमें कुण्ड-मण्डप-वेदी-निर्माणसहित यज्ञकी भी संक्षिप्त विधि आ गयी है। इसकी विस्तृत जानकारीके लिये कुण्ड-मण्डप-सिद्धि तथा आहिकसूत्रावली आदि द्रष्टव्य हैं।

२. कोहनीसे लेकर मुट्ठी बँधे हुए हाथतककी लम्बाईको ‘रत्न’ या अरति कहते हैं।

३. अङ्गुलियोंके पोरको ‘पर्व’ कहते हैं।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु।  
 मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्॥ १०  
 शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै।  
 अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ ११  
 सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद् विजितेन्द्रियः।  
 कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद् द्विजोत्तमः॥ १२  
 प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च।  
 व्यजनं चामरे शुभे ताम्रपात्रे सुविस्तृते॥ १३  
 ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्वरवः प्रतिदैवतम्।  
 आचार्यः प्रक्षिपेद् भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः॥ १४  
 ऋरत्निमात्रो यूपः स्यात् क्षीरवृक्षविनिर्मितः।  
 यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता॥ १५  
 हेमालङ्कारिणः कार्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः।  
 कुण्डलानि च हैमानि केयूरकटकानि च॥ १६  
 तथाङ्गुल्यः पवित्राणि वासांसि विविधानि च।  
 पूजयेत् तु समं सर्वनाचार्यो द्विगुणं पुनः।  
 दद्याच्छयनसंयुक्तमात्पनश्चापि यत् प्रियम्॥ १७  
 सौवर्णीं कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुण्डुभौ।  
 ताम्रौ कुलीरमण्डूका वायसः शिशुमारकः।  
 एवमासाद्य तत् सर्वमादावेव विशाम्पते॥ १८  
 शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।  
 सर्वोषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः॥ १९  
 यजमानः सप्ततीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः।  
 पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् यागमण्डपम्॥ २०  
 ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च।  
 चूर्णेन मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित्॥ २१

मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायें। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही इस कार्यमें पुरोहित-पदपर नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, पंखा, दो चँवर और दो दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें॥ ४—१३॥

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी चरू (पुरोडास, खीर, दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंको पृथ्वीपर सब देवताओंको समर्पित करे। तीन अरतिके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले वृक्ष (वट, पाकड़ आदि)-की शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पचीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अङ्गूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषणादि प्रत्येक ऋत्विजको बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शश्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुण्डुभ (गिरगिट), ताँबेके केंकड़ा और मेढ़क तथा लोहेके दो सूँस बनवाये (और सबको सोनेके पात्रमें रखें)। राजन्! इन सभी वस्तुओंको पहलेसे ही बनवाकर ठीक रखना चाहिये। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वोषधिमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पती और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिम द्वारसे यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे। उस समय माङ्गलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये॥ १४—२० १२॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष पाँच रंगके चूर्णोंसे मण्डल बनाये

षोडशारं ततश्चक्रं पदमगर्भं चतुर्मुखम्।  
 चतुरग्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्॥ २२  
 वेद्याश्वोपरि तत् कृत्वा ग्रहांल्लोकपर्तीस्ततः।  
 संन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः॥ २३  
 कलशं स्थापयेन्मध्ये वारुण्यां मन्त्रमाश्रितः।  
 ब्रह्माणं च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद् बुधः॥ २४  
 विनायकं च विन्यस्य कमलामिकां तथा।  
 शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत् ततः॥ २५  
 पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवं कृत्वाधिवासनम्।  
 कुम्भान् सजलगर्भास्तान् वासोभिः परिवेष्टयेत्॥ २६  
 पुष्पगन्धैरलङ्घत्य द्वारपालान् समन्ततः।  
 पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत्॥ २७  
 बहूचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ।  
 सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वर्थर्वणौ॥ २८  
 उदइमुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्।  
 यजध्वमिति तान् ब्रूयाद्बौ त्रिकान् पुनरेव तु॥ २९  
 उत्कृष्टमन्त्रजापेन तिष्ठध्वमिति जापकान्।  
 एवमादिश्य तान् सर्वान् पर्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित्॥ ३०  
 जुहुयाद् वारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा।  
 ऋत्विग्भश्चाथ होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः॥ ३१  
 ग्रहेभ्यो विधिवद्वृत्वा तथेन्द्रायेश्वराय च।  
 मरुद्धयो लोकपालेभ्यो विधिवद् विश्वकर्मणे॥ ३२  
 शान्तिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं च मङ्गलम्।  
 जपेयुः पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बहूचः पृथक्॥ ३३  
 शाकं रौद्रं च सौम्यं च कुष्माण्डं जातवेदसम्।  
 सौरं सूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः॥ ३४

और उसमें सोलह अरोंसे युक्त चक्र चिह्नित करे। उसके गर्भमें कमलका आकार बनाये। चक्र देखनेमें सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओरसे गोल होनेके साथ ही मध्यभागमें अधिक शोभायमान दीख पड़ता हो। बुद्धिमान् पुरुष उस चक्रको वेदीके ऊपर स्थापित कर उसके चारों ओर प्रत्येक दिशामें मन्त्रपाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालोंकी स्थापना करे। फिर मध्यभागमें वरुण-सम्बन्धी मन्त्रका उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करे और उसीके ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वतीकी भी स्थापना करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये भूतसमुदायको स्थापित करे। इस प्रकार पुष्प, नैवेद्य और फलोंके द्वारा सबकी स्थापना करके उन सभी जलपूर्ण कलशोंको वस्त्रोंसे आवेष्टित कर दे। फिर पुष्प और चन्दनके द्वारा उन्हें अलंकृत कर द्वार-रक्षाके लिये नियुक्त ब्राह्मणोंसे स्वयं आचार्य वेदपाठ करनेके लिये प्रेमसे कहे। पूर्व दिशाकी ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिणद्वारपर दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वारपर दो सामवेदी तथा उत्तरद्वारपर दो अर्थवेदी विद्वानोंको रखना चाहिये। यजमान मण्डलके दक्षिणभागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और ऋत्विजोंसे पुनः आचार्य कहें—‘आप यज्ञ प्रारम्भ करें।’ तत्पश्चात् वे जप करनेवाले ब्राह्मणोंसे कहें—‘आपलोग उत्तम मन्त्रका जप करते रहें।’ इस प्रकार सबको प्रेरित करके मन्त्रज्ञ पुरुष अग्निका पर्युक्षण (चारों ओर जल छिड़क) कर वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण कर धी और समिधाओंकी आहुति दे। ऋत्विजोंको भी वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा सब ओरसे हवन करना चाहिये। ग्रहोंके निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञ-कर्ममें इन्द्र, शिव, मरुदण, लोकपाल और विश्वकर्माके निमित्त भी विधिपूर्वक होम करे॥ २१—३२॥

पूर्वद्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्तिसूक्त, \* रुद्रसूक्त, पवमानसूक्त (ऋग्वेद ३।४।५ आदि), सुमङ्गलसूक्त (ऋ० २।४।२१) तथा पुरुषसूक्त (१०।१०) का पृथक्-पृथक् जप करें। दक्षिणद्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र (अ० १६), रुद्र, सोम, कूष्माण्ड (२०।१४—१६), अग्नि (अ० २) तथा सूर्य-सम्बन्धी (अ० ३५) सूक्तोंका जप करें।

\* यहाँ वेद-निर्देश महत्वपूर्ण है, किंतु अन्यत्र पदम्, भविष्यादि पुराणोंमें ऋग्वेदीय ७। ३५ के मत्स्य-पाठ रात्रिसूक्तकी जगह ‘शान्तिसूक्त’ के सर्वप्रथम पाठका ही निर्देश है, जिसका सर्वारम्भमें होना विशेष उचित जाँचता है। तीनों वेदके शान्तिसूक्त तो प्रसिद्ध हैं। अर्थवेदके शान्तिसूक्तका नाम शंतातीयसूक्त है। पवमानसूक्तके बहिष्, माध्यंदिन, तृतीय और अर्यव—ये चार भेद हैं। यजुर्वेदमें कूष्माण्डसूक्त भी उपरिनिर्दिष्टके अतिरिक्त ४ हैं, जो तै० ब्रा० २।४।४; ६।६।१; ३।७।२ और तै० आरण्यक २।३।६ में प्राप्त होते हैं।

वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम्।  
शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ॥ ३५

वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं च रथन्तरम्।  
गवां व्रतं च काण्वं च रक्षोघ्नं च यमं तथा।  
गायेयुः सामगा राजन् पश्चिमं द्वारमाश्रिताः ॥ ३६

आथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा।  
जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम् ॥ ३७

पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनम्।  
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमादध्यगोकुलात्।  
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्यत्वरात् तथा ॥ ३८

रोचनां च ससिद्धार्था गन्धं गुगुलमेव च।  
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चगव्यसमन्वितम् ॥ ३९

प्रत्येकं तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः।  
एवं क्षपातिवाहाथ विधियुक्तेन कर्मणा ॥ ४०  
ततः प्रभाते विमले संजातेऽथ शतं गवाम्।  
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टष्ठिश्च वा पुनः।  
पञ्चाशद् वाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरप्यथ ॥ ४१

ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने।  
वेदशब्दैश्च गान्धर्ववैद्यैश्च विविधैः पुनः ॥ ४२

कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामवतारयेत्।  
सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाप्यते ॥ ४३  
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम्।  
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादीश्वैव सर्वशः।  
धृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४४

महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम्।  
उत्तराभिमुखां धेनुं जलमध्ये तु कारयेत् ॥ ४५

राजन्! पश्चिमद्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम (२। २९। ८०), पुरुषसूक्त (६१३—३१), सुपर्णसूक्त (साम० ३। २। १-३), रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम (१। २। २९), वामदेव्यसाम (५। ६। २५), बृहत्साम (१। २२। ३४), रौरवसाम, रथन्तरसाम (१। २२३), गोव्रत, काण्व, सूक्तसाम, रक्षोघ्न (३। १२। ३९) और यमसम्बन्धी सूक्तोंका गान करें। उत्तरद्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मनही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें। इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी, साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी तथा चौराहेकी मिट्टी (सप्तमृतिका) लेकर कलशोंमें छोड़ दे। उसके बाद सर्वोषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़। फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे। इस प्रकार प्रत्येक कार्य महामन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिसंहित करना चाहिये ॥ ३३—३९ २॥

श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार शास्त्रविहित कर्मद्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभातका उदय होनेपर ब्रती हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको सौ, अड़सठ, पचास, छत्तीस अथवा पचीस गौ दान करे। राजन्! तदनन्तर ज्योतिषीद्वारा बतलाये गये शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आनेपर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनिके साथ एक गौको सुवर्णसे अलंकृत करके तालाबके जलमें उतारे और उसे सामगान करनेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् पञ्चरत्नोंसे युक्त सोनेका पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदिको रखे और उसे किसी बड़ी नदीसे मँगाये हुए जलसे भर दे। फिर उस पात्रको दही-अक्षतसे विभूषितकर वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् चार ब्राह्मण हाथसे पकड़ें और अथर्ववेदके मन्त्रोंसे उसे स्नान कराये, फिर यजमानकी प्रेरणासे उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाबके जलमें डाल दें। इस प्रकार

आर्थर्वणेन संस्रातां पुनर्ममेत्यथेति च।  
आपो हि ष्टेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम्॥ ४६

पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात् समन्ततः।  
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः॥ ४७

चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तिः।  
दक्षिणा राजशार्दूल वरुणक्षमापणं ततः॥ ४८

कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च।  
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत् पुनः।  
हेमपात्रां च शश्यां च स्थापकाय निवेदयेत्॥ ४९

ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा।  
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद् वाथ विंशतिः।  
एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते॥ ५०

कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च।  
एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च॥ ५१

मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रासादोद्यानभूमिषु।  
अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा।  
अल्पे त्वेकाग्निवत् कृत्वा वित्तशाक्यादृते नृणाम्॥ ५२

प्रावृद्काले स्थिते तोये ह्यग्निष्टोमफलं स्मृतम्।  
शरत्काले स्थितं यत् स्यात्तदुक्तफलदायकम्।  
वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरे स्थितम्॥ ५३

अश्वमेधसमं प्राह वसन्तसमये स्थितम्।  
ग्रीष्मेऽपि तत्स्थितं तोयं राजसूयाद् विशिष्यते॥ ५४

एतान् महाराज विशेषधर्मान्।  
करोति योऽप्यागमशुद्धबुद्धिः।  
स याति रुद्रालयमाशु पूतः।  
कल्पाननेकान् दिवि मोदते च॥ ५५

‘पुनर्ममेति०’ तथा ‘आपो हि ष्टा मयो०’ इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा उसे जलमें डालकर पुनः सब लोग यज्ञमण्डपमें आ जायें और यजमान सदस्योंकी पूजा कर सब ओर देवताओंके उद्देश्यसे बलि अर्पण करे। इसके बाद लगातार चार दिनोंतक हवन होना चाहिये। राजसिंह ! चौथे दिन चतुर्थी-कर्म करना उचित है। उसमें भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। तदनन्तर वरुणसे क्षमा-प्रार्थना करके यज्ञ-सम्बन्धी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें ऋत्विजोंमें बराबर बाँट देना चाहिये। फिर मण्डपको भी विभाजित करे। सुवर्णपात्र और शश्या व्रतारम्भ करानेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। पुराणों (एवं कल्पसूत्रों)-में तालाबकी प्रतिष्ठाके लिये यही विधि बतलायी गयी है। सभी कुआँ, बावली और पुष्करिणीके लिये भी यही विधि है। देवताओंकी प्रतिष्ठामें भी ऐसा ही विधान समझना चाहिये। प्रासाद (महल अथवा मन्दिर) और बगीचे आदिके प्रतिष्ठाकार्यमें केवल (कुछ) मन्त्रोंका ही भेद है। विधि-विधान प्रायः एक-से ही हैं। उपर्युक्त विधिका यदि पूर्णतया पालन करनेकी शक्ति न हो तो आधे व्ययसे भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्माजीने कही है। किंतु इस अल्प विधानमें भी मनुष्यको कृपणताका त्याग कर एकाग्नि ब्राह्मणकी भाँति दान आदि करना चाहिये॥ ४०—५२॥

जिस पोखरेमें केवल वर्षाकालमें ही जल रहता है, वह अग्निष्टोम-यज्ञके बराबर फल देनेवाला होता है। जिसमें शरत्कालतक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकालतक रहनेवाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञका फल देता है। वसन्तकालतक टिकनेवाले जलको अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायक बतलाया गया है तथा जो जल ग्रीष्मकालतक वर्तमान रहता है, वह राजसूय-यज्ञसे भी अधिक फल देनेवाला होता है॥ ५३-५४॥

महाराज ! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है, वह शुद्धचित्त होकर शिवजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेक कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है।

अनेकलोकान् स महत्तमादीन्  
भुक्त्वा परार्धद्वयमङ्गनाभिः।  
सहैव विष्णोः परमं पदं यत्  
प्राप्नोति तद्योगबलेन भूयः॥ ५६

वह पुनः परार्ध (ब्रह्माजीकी पिछली आधी आयु)-तक देवाङ्गनाओंके साथ अनेक महत्तम लोकोंका सुख भोगनेके पश्चात् ब्रह्माजीके साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है॥ ५५-५६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तडागविधिनार्माष्टपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५८॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें तडागविधि नामक अट्टावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५८॥

## उनसठवाँ अध्याय

### वृक्ष लगानेकी विधि

ऋषय ऊचुः

पादपानां विधिं सूत यथावद् विस्तराद् वद।  
विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः।  
ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः॥ १

सूत उवाच

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु।  
तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर॥ २  
ऋत्विड्मण्डपसम्भारमाचार्यं चैव तद्विधम्।  
पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद्घेमवस्त्रानुलेपनैः॥ ३  
सर्वांषध्युदकैः सिन्कान् दध्यक्षतविभूषितान्।  
वृक्षान् माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्॥ ४  
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्।  
अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्घेमशलाकया॥ ५  
फलानि सप्त चाष्टौ वा कलधौतानि कारयेत्।  
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत्॥ ६  
धूपोऽत्र गुगुलः श्रेष्ठस्ताप्रपात्रैरधिष्ठितान्।  
सर्वान् धान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः॥ ७  
कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर।  
सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनम्॥ ८

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमें विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये। विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये तथा वृक्षारोपण करनेवालोंके लिये जिन लोकोंकी प्राप्ति बतलायी गयी है, उन्हें भी आप इस समय हमलोगोंको बतलाइये॥ १॥

सूतजी कहते हैं—[यही प्रश्न जब मनुने मत्स्य-भगवान्-से किया था तो इसे उनसे मत्स्य (भगवान्)-ने कहा था।] जगदीश्वर! मैं बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि तुम्हें बतलाता हूँ। तड़ागकी प्रतिष्ठाके विषयमें जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि समझनी चाहिये। इसमें भी ऋत्विड्, मण्डप, सामग्री और आचार्यको पूर्ववत् रखे। उसी प्रकार सुवर्ण, वस्त्र और चन्दनद्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। रोपे गये पौधोंको सर्वांषधिमिश्रित जलसे सींचे। फिर उनके ऊपर दही और अक्षत छोड़े। उसके बाद उन्हें पुष्पमालाओंसे अलंकृत कर वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। सोनेकी सूईसे सबका कर्णवेध करे। उसी प्रकार सोनेकी सलाईसे अञ्जन भी लगाना चाहिये। सात अथवा आठ सुवर्णके फल बनवावे, फिर इन फलोंके साथ सभी वृक्षोंको वेदीपर स्थापित कर दे। वहाँ गुगुलका धूप देना श्रेष्ठ माना गया है। वृक्षोंको पृथक्-पृथक् ताप्रपात्रमें रखकर उन्हें सप्तधान्यसे आवृत करे तथा उनके ऊपर वस्त्र और चन्दन चढ़ाये। नरेश्वर! फिर प्रत्येक वृक्षके पास कलश-स्थापन करके उन सभी कलशोंमें स्वर्ण-खण्ड डाले, फिर बलि प्रदान करके उनकी पूजा करे।

यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः ।  
 वनस्पतेश्च विद्वद्विर्होमः कार्यो द्विजातिभिः ॥ ९  
 ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम् ।  
 सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम् ।  
 पयस्त्विनीं वृक्षमध्यादुत्सज्जेद् गामुदङ्गमुखीम् ॥ १०  
 ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।  
 ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा ।  
 तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युद्वाह्यणं पुङ्गवाः ॥ ११  
 स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद् यजमानोऽभिपूजयेत् ।  
 गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजस्तान् समाहितः ॥ १२  
 हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः ।  
 वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः ।  
 क्षीरेण भोजनं दद्याद् यावदिनचतुष्टयम् ॥ १३  
 होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा ।  
 पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽहिं तथोत्सवः ।  
 दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रापि शक्तिः ॥ १४  
 यद् यदिष्टतमं किञ्चित् तत्तद् दद्यादमत्सरी ।  
 आचार्ये द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ १५  
 अनेन विधिना यस्तु कुर्याद् वृक्षोत्सवं बुधः ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति फलं चानन्त्यमश्नुते ॥ १६  
 यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः ।  
 सोऽपि स्वर्गे वसेद् राजन् यावदिन्द्रायुतत्रयम् ॥ १७  
 भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् द्वुमसम्मितान् ।  
 परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ १८  
 य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः ।  
 सोऽपि सम्पूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते ॥ १९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृक्षोत्सवो नामैकोनष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वृक्षोत्सव नामक उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५९ ॥

रातमें विद्वान् द्विजातियोंद्वारा इन्द्रादि लोकपालों तथा वनस्पतिके निमित्त वित्तानुसार हवन कराये। तदनन्तर दूध देनेवाली एक गौको लाकर उसे श्वेत वस्त्र ओढ़ाये। उसके मस्तकपर सोनेकी कँलगी लगाये, सींगोंको सोनेसे मँड़ा दे। उसको दूहनेके लिये काँसेकी दोहनी प्रस्तुत करे। इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न उस गौको उत्तराभिमुख खड़ी करके वृक्षोंके बीचसे छोड़े। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण बाजों और मङ्गलगीतोंकी ध्वनिके साथ अभिषेकके मन्त्र—तीनों वेदोंकी वरुणसम्बन्धिनी ऋचाएँ पढ़ते हुए उक्त कलशोंके जलसे यजमानका अभिषेक करें। अभिषेकके पश्चात् यज्ञकर्ता पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार सावधानीपूर्वक गौ, सोनेकी जंजीर, कड़े, अँगूठी, पवित्री, वस्त्र, शव्या शय्योपयोगी सामान तथा चरणपादुका देकर सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन करे। इसके बाद चार दिनोंतक उन्हें दूधके साथ भोजन कराये तथा सरसोंके दाने, जौ और काले तिलोंसे होम कराये। होममें पलाश (ढाक) की लकड़ी उत्तम मानी गयी है। वृक्षारोपणके पश्चात् चौथे दिन विशेष उत्सव करे। उसमें भी अपनी शक्तिके अनुसार पुनः उसी प्रकार दक्षिणा दे। जो-जो वस्तु अपनेको अधिक प्रिय हो, ईर्ष्णा छोड़कर उस-उसका दान करे। आचार्यको दूनी दक्षिणा दे तथा प्रणाम करके यज्ञकी समाप्ति करे ॥ २—१५ ॥

जो विद्वान् उपर्युक्त विधिसे वृक्षारोपणका उत्सव करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा वह अक्षय फलका भागी होता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य इस प्रकार एक भी वृक्षकी स्थापना करता है, राजन्! वह भी जबतक तीस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तबतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। वह जितने वृक्षोंका रोपण करता है, अपने पहले और पीछेकी उतनी ही पीढ़ियोंका वह उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्तिसे रहित परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह भी देवताओंद्वारा सम्मानित और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है\* ॥ १६—१९ ॥

\* वृक्ष मुनियों तथा कवियोंको बहुत प्रिय थे। वृक्ष-उद्यानादि रोपण-प्रतिष्ठाकी सभी विधियाँ पद्म, भविष्य, स्कन्दादि पुराणोंमें बहुत विस्तारसे हैं। अमरसिंह, कालिदासादिने भी इनका खूब वर्णन किया है। मत्स्यपुराणमें वृक्षोंका वर्णन बार-बार मिलेगा।

## साठवाँ अध्याय

सौभाग्यशयन-व्रत तथा जगद्वात्री सतीकी आराधना

मत्स्य उवाच

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम्।  
सौभाग्यशयनं नाम यत् पुराणविदो विदुः ॥ १

पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु।  
सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत् तदा।  
वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षःस्थलस्थितम् ॥ २

ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप।  
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते ॥ ३

स्पर्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णायोः।  
पिङ्गाकारा\* समुद्भूता वहेज्वालातिभीषणा।  
तयाभितसस्य हरेवक्षसस्तद् विनिःसृतम् ॥ ४

वक्षःस्थलं समाश्रित्य विष्णौ सौभाग्यमास्थितम्।  
रसं रूपं न तद् यावत् प्राप्नोति वसुधातले ॥ ५

उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद् ब्रह्मपुत्रेण धीमता।  
दक्षेण पीतमात्रं तद् रूपलावण्यकारकम् ॥ ६

बलं तेजो महजातं दक्षस्य परमेष्ठिनः।  
शेषं यदपतद् भूमावष्टधा तद् व्यजायत ॥ ७

ततस्त्वोषधयो जाताः सप्त सौभाग्यदायिकाः।  
इक्षवो रसराजश्च निष्पावा राजधान्यकम् ॥ ८

विकारवच्च गोक्षीरं कुसुमं कुङ्कुमं तथा।  
लवणं चाष्टमं तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥ ९

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! इसी प्रकार एक दूसरा व्रत बतलाता हूँ, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। उसका नाम है—‘सौभाग्यशयन’। इसे पुराणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक आदि सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्रित हो गया। वह वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी (अथवा शिवलिङ्गके आकारकी) अत्यन्त भयंकर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय लेकर स्थित वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने भी न पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। ब्रह्म-पुत्र दक्षका बल और तेज बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, रसराज (पारा), निष्पाव (सेम), राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम (कुसुम नामक) पुष्प, कुङ्कुम (केसर) तथा आठवाँ पदार्थ नमक है। इन आठोंको सौभाग्याष्टक कहते हैं ॥ १—९ ॥

\* कहीं-कहीं लिङ्गाकारा पाठ है; जिसका शिव, स्कन्द आदि पुराणोंकी तथा शिवरात्रि-व्रत कथाके लिङ्गोद्भव-वृत्तान्तसे तात्पर्य माना जाना चाहिये।

पीतं यद् ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुनः।  
दुहिता साभवत् तस्य या सतीत्यभिधीयते ॥ १०

लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते ।  
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् ॥ ११

त्रिविश्वसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।  
तामाराध्य पुमान् भक्त्या नारी वा किं न विन्दति ॥ १२

मनुरुबाच

कथमाराधनं तस्या जगद्वात्रा जनार्दन ।  
तद्विधानं जगन्नाथ तत् सर्वं च वदस्व मे ॥ १३

मत्स्य उवाच

वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय ।  
शुक्लपक्षस्य पूर्वाङ्गे तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥ १४  
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती ।  
पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरवसद् वरवर्णिनी ॥ १५  
तया सहैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत् ।  
फलैर्नानाविधैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥ १६

प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन तु ।  
स्नापयित्वार्चयेद् गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥ १७  
नमोऽस्तु पाटलायै तु पादौ देव्याः शिवस्य तु ।  
शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोर्द्योः ॥ १८  
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्युगम् ।  
शिवं भद्रेश्वरायेति विजयायै च जानुनी ।  
संकीर्त्य हरिकेशाय तथोरु वरदे नमः ॥ १९  
ईशायै च कटिं देव्याः शंकरायेति शंकरम् ।  
कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिने शूलपाणये ॥ २०  
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत् ।  
सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम् ॥ २१

योग और ज्ञानके तत्त्वको जाननेवाले ब्रह्मपुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्य-रसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई; जिसे सती नामसे अभिहित किया जाता है। अपनी सुन्दरतासे तीनों लोकोंको पराजित कर देनेके कारण वह कन्या लोकमें ललिता\* के नामसे भी प्रसिद्ध है। पिनाकधारी भगवान् शंकरने उस त्रिभुवनसुन्दरी देवीके साथ विवाह किया। सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। उनकी भक्तिपूर्वक आराधना करके नर या नारी क्या नहीं प्राप्त कर सकती ॥ १०—१२ ॥

मनुजीने पूछा—जनार्दन! जगद्वात्री सतीकी आराधना कैसे की जाती है? जगन्नाथ! उसके लिये जो विधान हो, वह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १३ ॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—जनप्रिय! चैत्रमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको दिनके पूर्वभागमें मनुष्य तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उस दिन परम सुन्दरी भगवती सतीका विश्वात्मा भगवान् शंकरके साथ वैवाहिक मन्त्रोद्वारा विवाह हुआ था, अतः तृतीयाको सती देवीके साथ ही भगवान् शंकरका भी पूजन करे। पञ्चगव्य तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोद्वारा उन दोनोंकी पूजा करनी चाहिये। 'पाटलायै नमोऽस्तु', 'शिवाय नमः' इन मन्त्रोंसे क्रमशः पार्वती और शिवके चरणोंका, 'जयायै नमः', 'शिवाय नमः' से दोनोंकी घुट्ठियोंका, 'त्रिगुणाय रुद्राय नमः', 'भवान्यै नमः' से गुल्फोंका, 'भद्रेश्वराय नमः', 'विजयायै नमः' से घुटनोंका 'हरिकेशाय नमः', 'वरदायै नमः' से ऊरुओंका, 'शङ्कराय नमः', 'ईशायै नमः' से दोनों कटिभागका, 'कोटव्यै नमः', 'शूलिने नमः' से दोनों कुक्षिभागोंका, 'शूलपाणये नमः', 'मङ्गलायै नमः' से उदरका पूजन करना चाहिये। 'सर्वात्मने नमः', 'ईशान्यै नमः' से दोनों स्तनोंकी,

\* इसमें वर्णित—'सौभाग्य' एवं 'ललिता' देवीके रहस्यका सामङ्गस्य-स्थापन तथा पूर्ण चित्रण भास्करराय भारतीने 'ललितासहस्रनाम' के परम श्रेष्ठ 'सौभाग्य-भास्कर-भाष्य'में मत्स्यपुराणके नामोल्लेखपूर्वक किया है।

शिवं वेदात्मने तद्वद् रुद्राणयै कण्ठमर्चयेत्।  
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम्॥ २२

त्रिलोचनाय च हरं बाहू कालानलप्रिये।  
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत्।  
स्वाहास्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम्॥ २३  
अशोकमधुवासिन्यै पूज्याकोष्ठौ च भूतिदौ।  
स्थाणवे तु हरं तद्वद्धास्यं चन्द्रमुखप्रिये॥ २४  
नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम्।  
नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भूतौ॥ २५  
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यै तु तथालकान्।  
नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत्।  
भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः॥ २६  
शिवमध्यर्च्य विधिवत् सौभाग्याष्टकमग्रतः।  
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान्॥ २७  
रसराजं च लवणं कुस्तुम्बुरं तथाष्टकम्।  
दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः॥ २८  
एवं निवेद्य तत् सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः।  
रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम्॥ २९  
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्वानजपः शुचिः।  
सम्पूज्य द्विजदाप्त्यं वस्त्रपाल्यविभूषणैः॥ ३०  
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम्।  
प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ३१  
एवं संवत्सरं यावत् तृतीयायां सदा मनो।  
कर्तव्यं विधिवद् भक्त्या सर्वसौभाग्यमीप्सुभिः॥ ३२  
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे।  
शृङ्गोदकं चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः॥ ३३  
ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम्।  
श्रावणे दधि सम्प्राशयं नभस्ये च कुशोदकम्॥ ३४  
क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्तिके पृष्ठदान्यकम्।  
मार्गे मासे तु गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम्॥ ३५

'वेदात्मने नमः', 'रुद्राणयै नमः' से कण्ठकी, 'त्रिपुरघ्नाय नमः', 'अनन्तायै नमः' से दोनों हाथोंकी पूजा करे ॥ १४—२२ ॥

फिर 'त्रिलोचनाय नमः', 'कालानलप्रियायै नमः' से बाँहोंका, 'सौभाग्यभवनाय नमः' से आभूषणोंका नित्य पूजन करे। 'स्वाहास्वधायै नमः', 'ईश्वराय नमः' से दोनोंके मुखमण्डलका, 'अशोकमधुवासिन्यै नमः'—इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका, 'स्थाणवे नमः', 'चन्द्रमुखप्रियायै नमः' से मुँहका, 'अर्धनारीश्वराय नमः', 'असिताङ्गीयै नमः' से नासिकाका, 'उग्राय नमः', 'ललितायै नमः' से दोनों भौंहोंका, 'शर्वाय नमः', 'वासव्यै नमः' से केशोंका, 'श्रीकण्ठनाथाय नमः' से केवल शिवके बालोंका पूजन करे तथा 'भीमोग्रसमरूपिण्यै नमः', 'सर्वात्मने नमः' से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे। इस प्रकार शिव और पार्वतीकी विधिवत् पूजा कर उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे। निष्पाव (सेम), कुसुम्भ, क्षीरजीरक, रसराज, इक्षु, लवण, कुङ्कम तथा राजधान्य—इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, इसलिये इनकी 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है। शत्रुदमन! इस प्रकार शिवपार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके रातमें सिंघाड़ा खाकर अथवा शृङ्गोदक पान करके भूमिपर शयन करे। फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र हो माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललितादेवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे ॥ २३—३१ ॥

मनो! इस प्रकार सम्पूर्ण सौभाग्यकी अभिलाषावाले मनुष्योंको एक वर्षतक प्रत्येक तृतीया तिथिको भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजन करना चाहिये। केवल भोजन और दानके मन्त्रोंमें कुछ विशेषता है, उसे मुझसे सुनिये। चैत्रमासमें शृङ्गोदक, वैशाखमें गोबर, ज्येष्ठमें मन्दारका पुष्प, आषाढ़में बिल्वपत्र, श्रावणमें दही, भाद्रपदमें कुशोदक, आश्विनमासमें दूध, कार्तिकमें दही मिला हुआ धी, मार्गशीर्षमासमें गोमूत्र, पौषमें घृत,

माधे कृष्णतिलं तद्रुत् पञ्चगव्यं च फाल्युने ।  
 ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥ ३६  
 वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती ।  
 उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥ ३७  
 मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालतीः ।  
 कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम् ॥ ३८  
 सिंधुवारं च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् ।  
 जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ॥ ३९  
 यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा ।  
 एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः ॥ ४०  
 स्त्री भक्ता वा कुमारी वा शिवमध्यर्च्यं भक्तिः ।  
 व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ४१  
 उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवां सह ।  
 स्थापयित्वाथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ४२  
 अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः ।  
 धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्चेद् धनसंचयैः ।  
 वित्तशाळ्येन रहितः पूजयेद् गतविस्मयः ॥ ४३  
 एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति पदमानन्त्यमश्रुते ।  
 फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत् समाचरेत् ॥ ४४  
 य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासं नराधिप ।  
 सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।  
 न वियुक्तो भवेद् राजन् नवार्बुदशतत्रयम् ॥ ४५  
 यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ।  
 करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः ।  
 पूज्यमानो वसेत् सम्यग् यावत्कल्पायुतत्रयम् ॥ ४६  
 नारी वा कुरुते वापि कुमारी वा नरेश्वर ।  
 सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥ ४७  
 शृणुयादपि यश्वैव प्रदद्यादथवा मतिम् ।  
 सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत् ॥ ४८

माघमें काला तिल और फाल्युनमें पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये तथा दानके समय ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती और उमा प्रसन्न हों—ऐसा कीर्तन करे। मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल (नीलकमल), मालती, कुब्जक, करवीर (कनेर), बाण (कचनार या काश), ताजा कुङ्कुम और सिन्दुवार—इनके पुष्प क्रमशः सभी मासोंमें उपयुक्त माने गये हैं। जपाकुसुम, कुसुम्भ-कुसुम, मालती और शतपत्रिकाके पुष्प यदि मिल सकें तो प्रशस्त माने गये हैं, किंतु करवीर (कनेर) पुष्प तो सदा सभी महीनोंमें ग्राह्य है। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान कर पुरुष, स्त्री या कुमारी भक्तिके साथ शिवजीकी पूजा करे। व्रतकी समाप्तिके समय सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त शय्या दान करे। उस शय्यापर शिव-पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमा और स्वर्णनिर्मित गौके साथ बैलको स्थापित कर ब्राह्मणको दान करे॥ ३२—४२॥

अन्यान्य ब्राह्मण-दम्पतियोंका भी वस्त्र, धान्य, अलंकार, गोदान और प्रचुर धनसे पूजन करना चाहिये। कृपणता छोड़कर दृढ़ निश्चयके साथ भगवान्नका पूजन करे। जो मनुष्य इस प्रकार उत्तम सौभाग्यशयन नामक व्रतका भलीभाँति अनुष्ठान करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। अथवा (यदि वह निष्कामभावसे इस व्रतको करता है तो) उसे नित्यपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको एक फलका परित्याग कर देना चाहिये। राजन्! प्रतिमास इसका आचरण करनेवाला पुरुष यश और कीर्ति प्राप्त करता है। नरेश्वर! (सौभाग्य-शयनका दान करनेवाला पुरुष) सौभाग्य, आरोग्य, सुन्दर रूप, आयु, वस्त्र, अलंकार और आभूषणोंसे नौ अरब तीन सौ वर्षोंतक वश्चित नहीं होता। जो बारह, आठ या सात वर्षोंतक सौभाग्यशयन-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह श्रीकण्ठ (महादेव) के लोकमें देवगणोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर तीस कल्पोंतक निवास करता है। नरेश्वर! जो विवाहिता स्त्री या कुमारी इस व्रतका पालन करती है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे लालित होकर पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाको श्रवण करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह देता है, वह भी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है।

**इदमिह**      मदनेन      पूर्वमिष्टं  
                   शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च।  
**कृतमथ**      वरुणेन नन्दिना वा  
                   किमु जननाथ ततो यदुद्ध्रवः स्यात्॥ ४९

जननाथ! पूर्वकालमें कामदेवने, राजा शतधन्वाने, कार्तवीर्य अर्जुनने, वरुणदेवने तथा नन्दीने भी इस अद्वृत ब्रतका अनुष्ठान किया था। इस प्रकार इस ब्रतके अनुष्ठानसे जैसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है, उसके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय ॥ ४३—४९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सौभाग्यशयनव्रतं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सौभाग्यशयनव्रत नामक साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६० ॥

### इकसठवाँ अध्याय

अगस्त्य और वसिष्ठकी दिव्य उत्पत्ति, उर्वशी अप्सराका प्राकट्य और अगस्त्यके लिये अर्घ्य-प्रदान करनेकी विधि एवं माहात्म्य

नारद उवाच

भूलोकोऽथ भुवलोकः स्वलोकोऽथ महर्जनः ।  
 तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्तिताः ॥ १  
 पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत् ।  
 इह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च ।  
 लक्ष्मीश्च विपुला नाथ कथं स्यात् पुरसूदन ॥ २  
 महेश्वर उवाच

पुरा हुताशनः सार्धं मारुतेन महीतले ।  
 आदिष्टः पुरुहृतेन विनाशाय सुरद्विषाम् ॥ ३  
 निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः ।  
 तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः ।  
 विरोचनश्च संग्रामादपलायंस्तपोधन ॥ ४  
 अम्भः सामुद्रमाविश्य संनिवेशमकुर्वत ।  
 अशक्या इति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः ॥ ५  
 ततः प्रभृति ते देवान् मनुष्यान् सभुजङ्गमान् ।  
 सम्पीड्य च मुनीन् सर्वान् प्रविशन्ति पुनर्जलम् ॥ ६  
 एवं वर्षसहस्राणि वीराः पञ्च च सप्त च ।  
 जलदुर्गबलाद् ब्रह्मन् पीडयन्ति जगत्रयम् ॥ ७  
 ततः परमथो वह्निमारुतावमराधिपः ।  
 आदिदेश चिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम् ॥ ८

नारदजीने पूछा—त्रिपुरविनाशक महेश्वर! भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात देवलोक बतलाये गये हैं। इन सबपर क्रमशः आधिपत्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है? तथा नाथ! इस लोकमें सुन्दर रूप, दीर्घायु, सौभाग्य और विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? (कृपया इसे बतलाइये) ॥ १-२ ॥

भगवान् महेश्वरने कहा—तपोधन! पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्रने भूतलपर देवद्रोही असुरोंका विनाश करनेके लिये वायुके साथ अग्निको आज्ञा दी। तब अग्निद्वारा हजारों दानवोंको जलाकर भस्म कर दिये जानेपर तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु और विरोचन आदि प्रधान दानव रणभूमिसे भाग खड़े हुए और समुद्रके जलमें प्रविष्ट होकर (वहाँ छिपकर) निवासस्थान बनाकर रहने लगे। उस समय अग्नि और वायुने भी 'अब ये सर्वथा अशक्त, निर्जीव हो गये हैं'—ऐसा समझकर उनकी उपेक्षा कर दी। तबसे वे दानव जलसे निकलकर देवताओं, नागों (सामान्य) मनुष्यों और समस्त मुनियोंको बुरी तरह पीड़ित कर पुनः जलमें प्रविष्ट हो जाते थे। ब्रह्मन्! इस प्रकार वे पाँच-सात ही दानववीर हजारों वर्षोंसे अपने जलदुर्गके बलपर त्रिलोकीको पीड़ा पहुँचा रहे थे। तब यह सब देखकर देवेश्वर इन्द्रने अग्नि और वायुको आज्ञा दी कि 'आपलोग इस समुद्रको सुखा डालें।

यस्मादस्मद्द्विषमेष शरणं वरुणालयः ।  
तस्माद् भवद्द्वयामद्यैव क्षयमेष प्रणीयताम् ॥ ९  
तावूचतुस्ततः शक्रमुभौ शम्बरसूदनम् ।  
अर्थम् एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम् ॥ १०  
यस्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत् ।  
तस्मान्न पापमद्यावां करवावः पुरंदर ॥ ११  
अस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानि च ।  
निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति ॥ १२  
एवमुक्तः सुरेन्द्रस्तु कोपात् संरक्तलोचनः ।  
उवाचेदं वचो रोषान्निर्दहन्निव पावकम् ॥ १३  
न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुवन्त्यमरा: क्वचित् ।  
भवतस्तु विशेषेण माहात्म्यं चाधितिष्ठति ॥ १४  
मदाज्ञालङ्घनं यस्मान्मारुतेन समं त्वया ।  
मुनिव्रतमहिंसादि परिगृह्य त्वया कृतम् ।  
धर्मार्थशास्त्ररहितं शत्रुं प्रति विभावसो ॥ १५  
तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे ।  
मारुतेन समं लोके तव जन्म भविष्यति ॥ १६  
यदा च मानुषत्वेऽपि त्वयागस्त्येन शोषितः ।  
भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि ॥ १७  
इतीन्द्रशापात् पतितौ तत्क्षणात् तौ महीतले ।  
अवासावेकदेहेन कुम्भाजन्म तपोधन ॥ १८  
मित्रावरुणयोर्वीर्याद् वसिष्ठस्यानुजोऽभवत् ।  
अगस्त्य इत्युग्रतपाः सम्भूव पुनर्मुनिः ॥ १९

नारद उवाच

सम्भूतः स कथं भ्राता वसिष्ठस्याभवम्मुनिः ।  
कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ ।  
जन्म कुम्भादगस्त्यस्य कथं स्यात् पुरसूदन ॥ २०

ईश्वर उवाच

पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद् गन्धमादने ।  
भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चार विपुलं तपः ॥ २१

चौंकि यह वरुणका निवासस्थान समुद्र हमारे शत्रुओंका आश्रयस्थान बना हुआ है, इसलिये आपलोग आज ही इसे नष्ट कर दें।' तब वे दोनों (अग्नि और वायु) शम्बरासुरका विनाश करनेवाले इन्द्रसे बोले—'देवेन्द्र! समुद्रका विनाश कर देना—यह महान् अर्थम् होगा। पुरंदर! ऐसा करनेसे बहुत बड़े जीव-समुदायका विनाश हो जायगा, इसलिये हमलोग आज यह पाप नहीं करना चाहते। सुरश्रेष्ठ! इस समुद्रके एक योजन (चार मील)-के विस्तारमें ही सैकड़ों करोड़ जीव निवास करते हैं, भला, उनका विनाश कैसे किया जा सकता है!' ॥ ३—१२ ॥

उनके ऐसा कहनेपर क्रोधके कारण सुरेन्द्रके नेत्र लाल हो गये। तब वे अपनी क्रोधाग्निसे अग्निको जलाते हुएकी तरह यह वचन बोले—'विभावसो! देवताओंपर कहीं भी धर्म और अर्थमंका प्रभाव नहीं पड़ता। आपमें तो यह महत्व विशेषरूपसे वर्तमान है। चौंकि आपने वायुके साथ मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है और अहिंसा आदि मुनि-व्रत धारण कर धर्म, अर्थ और शास्त्रसे विहीन शत्रुके प्रति उपेक्षा की है, इसलिये मानवलोकमें वायुके साथ आपका एक शरीरसे मुनिरूपमें जन्म होगा। अग्रे! मानव-योनिमें उत्पन्न होनेपर भी जब आपद्वारा अगस्त्यरूपसे समुद्र सोख लिया जायगा, तब पुनः आपको देवत्वकी प्राप्ति होगी।' तपोधन! इस प्रकार इन्द्रके शापसे वे दोनों (अग्नि और वायु) उसी क्षण पृथ्वीतलपर गिर पड़े और एक ही शरीरसे (दोनोंमें) घड़ेसे जन्म धारण किया। वे मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्न होकर वसिष्ठके अनुज हुए। आगे चलकर वे दोनों संयुक्त उग्रतपस्वी अगस्त्य मुनिके नामसे विख्यात हुए ॥ १३—१९ ॥

नारदजीने पूछा—त्रिपुरसूदन! वे मुनि जन्म धारण करनेके पश्चात् वसिष्ठके भ्राता कैसे हो गये? वे दोनों मित्रावरुण इनके पिता कैसे कहलाये? तथा अगस्त्य मुनिका घड़ेसे जन्म कैसे हुआ? (यह सब हम जानना चाहते हैं।) ॥ २० ॥

ईश्वरने कहा—नारद! पूर्वकालमें पुराणपुरुष भगवान् विष्णु किसी समय धर्मके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर गन्धमादन पर्वतपर महान् तपस्यामें संलग्न थे।

तपसा तस्य भीतेन विघ्नार्थं प्रेषितावुभौ।  
 शक्रेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ॥ २२  
 तदा तद्वीतवाद्येन नाङ्गरागादिना हरिः।  
 न काममाधवाभ्यां च विषयान् प्रति चुक्षुभे॥ २३  
 तदा काममधुस्त्रीणां विषादमगमद् गणः।  
 संक्षोभाय ततस्तेषां स्वोरुदेशान्नराग्रजः।  
 नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यजनमोहिनीम्॥ २४  
 संक्षुब्धास्तु तथा देवास्तौ तु देववरावुभौ।  
 अप्सरोभिः समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः॥ २५  
 अप्सरा इति सामान्या देवानामब्रवीद्धरिः।  
 उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति॥ २६  
 ततः कामयमानेन मित्रेणाहूय सोर्वशी।  
 उक्ता मां रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीत् तु सा॥ २७  
 गच्छन्ती चाम्बरं तद्वत् स्तोकमिन्दीवरेक्षणा।  
 वरुणेन धृता पश्चाद् वरुणं नाभ्यनन्दत॥ २८  
 मित्रेणाहं वृता पूर्वमद्य भार्या न ते विभो।  
 उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम्॥ २९  
 गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदात्तदा।  
 तस्यै मानुषलोके त्वं गच्छ सोमसुतात्मजम्॥ ३०  
 भजस्वेति यतो वेश्यार्थम् एष त्वया कृतः।  
 जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च।  
 प्रक्षिप्तमथ संजातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ॥ ३१  
 निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत।  
 तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः॥ ३२  
 तस्य पूजामकुर्वन्तं शशाप स मुनिनृपम्।  
 विदेहस्त्वं भवस्वेति ततस्तेनाप्यसौ मुनिः॥ ३३  
 अन्योन्यशापाच्य तयोर्विगते इव चेतसी।  
 जग्मतुः शापनाशाय ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ ३४  
 अथ ब्रह्मण आदेशाल्लोचनेष्ववसन्निभिः।  
 निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय नारद॥ ३५  
 वसिष्ठोऽप्यभवत् तस्मिन् जलकुम्भे च पूर्ववत्।  
 ततः श्वेतश्शतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः।  
 अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः॥ ३६

उनकी तपस्यासे भयभीत हुए इन्द्रने उसमें विघ्न डालनेके लिये अप्सराओंके साथ वसन्त-ऋतु और कामदेव—दोनोंको भेजा। उस समय श्रीहरि न तो उनके गाने, बजाने अथवा अङ्गराग आदिसे ही प्रभावित हुए, न वसन्त और कामदेवद्वारा उपस्थित किये गये विषय-भोगोंके प्रति ही उनका मन क्षुब्ध हुआ। यह देखकर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंका समूह विषादमें ढूब गया। तत्पश्चात् नरके अग्रज नारायणने उन्हें विशेषरूपसे क्षुब्ध करनेके हेतु अपने ऊरुप्रदेशसे एक ऐसी नारीको उत्पन्न किया, जो त्रिलोकीके मनुष्योंको मोहित करनेवाली थी। उस स्त्रीने समस्त देवताओं तथा उन दोनों देवत्रेष्ठोंको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया। उस समय श्रीहरिने अप्सराओंके सामने ही देवताओंसे कहा—‘देवगण ! यह एक अप्सरा है। यह लोकमें उर्वशी-नामसे प्रसिद्ध होगी’॥ २१—२९॥

तदनन्तर एक घड़ेसे मित्र और वरुणके अंशसे दो मुनिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए। प्राचीनकालकी बात है, एक बार जब महाराज निमि स्त्रियोंके साथ जुआ खेल रहे थे, उसी समय ब्रह्मपुत्र महर्षि वसिष्ठ उनके पास आये, किंतु राजाने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया। तब वसिष्ठ मुनिने राजाको शाप दे दिया—‘तुम विदेह—देहरहित हो जाओ।’ तब राजाने भी मुनिको वही शाप दे दिया। इस प्रकार एक-दूसरेके शापवश दोनोंकी चेतना लुप्त-सी हो गयी। तब वे दोनों शापसे छुटकारा पानेके लिये जगत्पति ब्रह्माके पास गये। वहाँ ब्रह्माके आदेशसे राजा निमिका प्राणियोंके नेत्रोंमें निवास हुआ। नारद ! उन्हींको विश्राम देनेके लिये लोगोंके निमेष (पलकोंका गिरना और खुलना) होते रहते हैं। वसिष्ठ भी पहलेकी तरह उसी जलकुम्भसे प्रकट हुए। तदुपरान्त उसी जलकुम्भसे ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य उत्पन्न हुए, जो अत्यन्त शान्त स्वभाववाले थे। उनका गौर वर्ण था, उनके चार भुजाएँ थीं तथा वे अक्षसूत्र (यज्ञोपवीत) और कमण्डलु धारण किये हुए थे। विग्रोंसे घिरे हुए अगस्त्यने अपनी पत्नीके साथ

मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः ।  
सभार्यः संवृतो विग्रैस्तपश्चके सुदुश्शरम् ॥ ३७

ततः कालेन महता तारकादतिपीडितम् ।  
जगद् वीक्ष्य स कोपेन पीतवान् वरुणालयम् ॥ ३८

ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शङ्करादयः ।  
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः ।  
वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं च वै मुने ॥ ३९

अगस्त्य उवाच

यावद् ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटयः ।  
वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाचलवर्त्मनि ॥ ४०

मद्विमानोदये कुर्याद् यः कश्चित् पूजनं मम ।  
स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति ॥ ४१

ईश्वर उवाच

एवमस्त्वति तेऽप्युक्त्वा जगमुर्देवा यथागतम् ।  
तस्मादर्थः प्रदातव्यो ह्यगस्त्यस्य सदा बुधैः ॥ ४२

नारद उवाच

कथमर्घप्रदानं तु कर्तव्यं तस्य वै विभो ।  
विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद् वदस्व मे ॥ ४३

ईश्वर उवाच

प्रत्यूषसमये विद्वान् कुर्यादस्योदये निशि ।  
स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही ॥ ४४

स्थापयेदक्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम् ।  
पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रसमन्वितम् ॥ ४५

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव

सौवर्णमेवायतबाहुदण्डम् ।

चतुर्मुखं कुम्भमुखे निधाय  
धान्यानि सप्तम्बरसंयुतानि ॥ ४६

सकांस्यपात्राक्षतशुक्तियुक्तं  
मन्त्रेण दद्याद् द्विजपुङ्गवाय ।

उत्क्षिप्य लम्बोदरदीर्घबाहु-  
मनन्यचेता यमदिङ्मुखः सन् ॥ ४७

रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिके अनुसार अत्यन्त कठोर तप किया था । चिरकालके पश्चात् तारकासुरद्वारा जगत्को अत्यन्त पीड़ित देखकर वे कुपित हो गये और समुद्रको पी गये । यह देखकर शङ्कर आदि सभी देवता उन्हें वर देनेके लिये उत्सुक हो उठे । उसी समय ब्रह्मा और भगवान् विष्णु वर प्रदान करनेके निमित्त उनके निकट गये और बोले—‘मुने ! आपका कल्याण हो ! आपको जो अभीष्ट हो, वह वर माँग लीजिये’ ॥ ३०—३९ ॥

अगस्त्य बोले—देव ! मैं एक सहस्र ब्रह्माओंके पचीस करोड़ वर्षोंतक दक्षिणाचलके मार्गमें विमानपर स्थित होकर निवास करूँ । उस समय मेरे विमानके उदय होनेपर जो कोई मनुष्य मेरा पूजन करे, वह क्रमशः सातों लोकोंका अधिपति हो जाय ॥ ४०-४१ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! तब वे देवगण भी ‘एवमस्तु—ऐसा ही हो’ यों कहकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये । इसलिये विद्वानोंको अगस्त्यके लिये सदा अर्घ्य प्रदान करते रहना चाहिये ॥ ४२ ॥

नारदजीने पूछा—विभो ! अगस्त्यके लिये किस विधिसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये ? तथा उनके पूजनका क्या विधान है ? यह मुझे बतलाइये ? ॥ ४३ ॥

ईश्वरने कहा—नारद ! विद्वान् गृहस्थको चाहिये कि वह अगस्त्यके उदयसे संयुक्त रात्रिमें प्रातःकाल श्वेत तिलमिश्रित जलसे स्नान करे । उसी प्रकार श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे । तत्पश्चात् एक छिद्रहित कलश स्थापित करे और उसे पुष्पमाला तथा वस्त्रसे विभूषित कर दे । उसके भीतर पञ्चरत्न डाल दे और पार्श्वभागमें घोसे भरा हुआ एक पात्र रख दे । साथ ही काँसेका पात्र चावल भरकर उसके ऊपर सीप अथवा शङ्ख रखकर प्रस्तुत करे । फिर अङ्गूठेके बराबर लम्बी सोनेकी एक ऐसी पुरुषाकार प्रतिमा बनवाये, जिसमें चार मुख दीख पड़ते हों और जिसकी भुजाएँ लम्बी हों, उसे कलशके मुखमें स्थापित कर दे । उसके निकट पृथक्-पृथक् सात वस्त्रोंमें बँधी हुई धान्य-राशि भी रखे । तदनन्तर अनन्य चित्तसे दक्षिणाभिमुख हो लम्बे उदर और लम्बी भुजाओंवाली अगस्त्यमुनिकी उस प्रतिमाको (घड़ेसे) निकालकर हाथमें लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारी सामग्रियोंसहित सुपात्र ब्राह्मणको दान कर दे ।

श्वेतां च दद्याद् यदि शक्तिरस्ति  
रौप्यैः खुरैर्हेममुखीं सवत्साम्।  
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणाम्य  
स्वगवस्त्रधण्टाभरणां द्विजाय ॥ ४८

आसस्त्रात्रोदयमेतदस्य  
दातव्यमेतत् सकलं नरेण।  
यावत्समाः सप्त दशाथ वा स्यु-  
रथोर्धर्वमप्यत्र वदन्ति केचित् ॥ ४९

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।  
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते।  
प्रत्यब्दं तु फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति ॥ ५०

होमं कृत्वा ततः पश्चाद् वर्जयेन्मानवः फलम्।  
अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घ्यं निवेदयेत् ॥ ५१

इमं लोकं स चाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः।  
द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वलोकं च ततः परम् ॥ ५२

सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घ्यान् यः प्रयच्छति।  
यावदायुश्च यः कुर्यात् परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५३

इह पठति शृणोति वा य  
एतद्युगलमुनिप्रभवार्घ्यसम्प्रदानम्।  
मतिमपि च ददाति सोऽपि  
विष्णोर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौदैः ॥ ५४

साथ ही यदि धनसम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो गृहस्थ पुरुष एक श्वेत वर्णकी बछड़ेवाली दुधारू गौको सोनेके मुख और चाँदीके खुरोंसे संयुक्त करे तथा उसे माला, बस्त्र और धंटीसे विभूषित करके नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुषको अगस्त्योदयसे सात रात्रियोंतक इन सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये। इस विधानको सात अथवा दस वर्षोंतक करना चाहिये। कुछ लोग इससे आगे भी इसकी अवधि बतलाते हैं ॥ ४८—४९ ॥

तदनन्तर यों प्रार्थना करते हुए अर्घ्य प्रदान करे—‘कुम्भसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्यजी! आपके शरीरका रंग कासके पुष्पके सदृश उज्ज्वल है, आपकी उत्पत्ति अग्नि और वायुसे हुई है और आप मित्रावरुणके पुत्र हैं, आपको नमस्कार है।’ इस प्रकार फलत्यागपूर्वक प्रतिवर्ष अर्घ्य प्रदान करनेवाला पुरुष कष्टभागी नहीं होता। तत्पश्चात् हवन करके कार्य समाप्त करे। उस समय मनुष्यको फलकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। जो पुरुष इस विधिके अनुसार अगस्त्यको अर्घ्य निवेदित करता है, वह सुन्दर रूप और नीरोगतासे युक्त होकर इस मृत्युलोकमें पुनः जन्म धारण करता है। इसी प्रकार वह दूसरे अर्घ्यसे भुवर्लोकको और तीसरेसे उससे भी श्रेष्ठ स्वर्लोकको जाता है। इसी तरह जो मनुष्य उन (सात) दिनोंमें अर्घ्य देता है, वह क्रमशः सातों लोकोंको प्राप्त होता है तथा जो आयुर्पर्यन्त इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ ५०—५३ ॥

जो मनुष्य इस मर्त्यलोकमें इन दोनों (वसिष्ठ और अगस्त्य) मुनियोंकी उत्पत्ति और अगस्त्य मुनिके अर्घ्यप्रदान<sup>१</sup> के वृत्तान्तको पढ़ता अथवा सुनता है या ऐसा करनेकी सलाह देता है, वह विष्णुलोकमें जाकर देवगणोंद्वारा पूजित होता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगस्त्योत्पत्तिपूजाविधानं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अगस्त्योत्पत्तिपूजा-विधान नामक इक्सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६१ ॥

१. यहाँ पूनावाली प्रतिमें तीन श्लोक अधिक हैं।

२. अगस्त्यार्घ्यपर ऋग्वेद १। १७९। ६ से लेकर अग्नि, गरुड, वृहद्भूर्म आदि पुराणोंतकमें अपार सामग्री भरी पड़ी है। हेमाद्रि, गोपाल तथा रत्नाकर आदिने भी इन्हें अपने ब्रत-निवन्धोंमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है। ऋक् प्रथम मण्डलमें दीर्घतमा १६४ सूतों के बाद १९१ सूक्तोंतकके ये ही द्रष्टा हैं।

## बासठवाँ अध्याय

### अनन्ततृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

सौभाग्यारोग्यफलदं विपक्षक्षयकारकम्।  
भुक्तिमुक्तिप्रदं देव तन्मे ब्रूहि जनार्दन॥ १

मत्स्य उवाच

यदुमायाः पुरा देव उवाच पुरसूदनः।  
कैलासशिखरासीनो देव्या पृष्टस्तदा किल॥ २  
कथासु सम्प्रवृत्तासु धर्म्यासु ललितासु च।  
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ३

ईश्वर उवाच

शृणुष्वावहिता देवि तथैवानन्तपुण्यकृत्।  
नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम्॥ ४  
नभस्ये वाथ वैशाखे पौषे मार्गशिरेऽथवा।  
शुक्लपक्षे तृतीयायां सुस्नातो गौरसर्षपैः॥ ५  
गोरोचनं सगोमूत्रं मुस्तां गोशकृतं तथा।  
दधिचन्दनसम्मिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत्।  
सौभाग्यारोग्यदं यत् स्यात् सदा च ललिताप्रियम्॥ ६  
प्रतिपक्षं तृतीयासु पुमानापीतवाससी।  
धारयेदथ रक्तानि नारी चेदथ संयता॥ ७  
विधवा धातुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी।  
देवीं तु पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम्।  
स्नापयेन्मधुना तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च॥ ८  
पूजयेच्छुक्लपुष्टैश्च फलैर्नानाविधैरपि।  
धान्यलाजाजिलवणैर्गुडक्षीरघृतान्वितैः॥ ९  
शुक्लाक्षतिलैरच्चां ललितां यः सदार्चयेत्।  
आपादाद्यर्चनं कुर्याद् गौर्याः सम्यक् समाप्तः॥ १०

मनुने पूछा—जनार्दनदेव ! जो इस लोकमें सौभाग्य और नीरोगतारूप फल देनेवाला तथा भोग और मोक्षका प्रदाता एवं शत्रुनाशक हो, वह व्रत मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् कहा—राजन् ! पूर्वकालमें कैलास पर्वतके शिखरपर बैठे हुए त्रिपुरविनाशक महादेवजीने सुन्दर धार्मिक कथाओंके प्रसङ्गमें उमादेवीद्वारा पूछे जानेपर उनसे जिस व्रतका वर्णन किया था, वही इस समय में बतला रहा हूँ, यह भोग और मोक्षरूप फल देनेवाला है ॥ २-३ ॥

ईश्वरने कहा—देवि ! मैं पुरुषों तथा स्त्रियोंके लिये एक सर्वश्रेष्ठ व्रत बतला रहा हूँ, जो अनन्त पुण्यदायक है । तुम सावधानीपूर्वक उसे सुनो । इस व्रतका व्रती भाद्रपद, वैशाख, पौष अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको पीली सरसोंसे युक्त जलसे भलीभाँति स्नान करे । फिर गोरोचन, गोमूत्र, मुश्ता, गोबर, दही और चन्दनको मिलाकर ललाटमें तिलक लगावे; क्योंकि यह तिलक सौभाग्य और आरोग्यका प्रदायक तथा ललितादेवीको परम प्रिय \* है । प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पुरुषको पीला वस्त्र, विधवाको गेरू आदि धातुओंसे रँगा हुआ वस्त्र और कुमारी कन्याको श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये । उस समय देवीकी मूर्तिको पञ्चगव्यसे स्नान करानेके पश्चात् केवल दूधसे नहलाना चाहिये । उसी प्रकार मधु और पुष्प-चन्दनमिश्रित जलसे भी स्नान करावे । फिर श्वेत पुष्प, अनेक प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड़, दूध और घृतसे देवीकी पूजा करे । श्वेत अक्षत और तिलसे तो ललितादेवीकी सदा पूजा करनी चाहिये । प्रत्येक शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त संक्षेपसे पूजनका विधान है ।

\* सौर, पादम् सृष्टि, भविष्योत्तरपुराण अ० २६ में यह व्रत सविस्तर निरूपित है । सौभाग्य एवं ललितादेवीके विषयमें ६० वें अध्यायकी टिप्पणी द्रष्टव्य है ।

वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः ।  
 अशोकायै नमो जड्हे पार्वत्यै जानुनी तथा ॥ ११  
 ऊरु मङ्गलकारिण्यै वामदेव्यै तथा कटिम् ।  
 पद्मोदरायै जठरमुरः कामश्रियै नमः ॥ १२  
 करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहूदरमुखं श्रियै ।  
 दन्तान् दर्पणवासिन्यै स्मरदायै स्मितं नमः ॥ १३  
 गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने ।  
 तुष्ट्यै ललाटमलकान् कात्यायन्यै शिरस्तथा ॥ १४  
 नमो गौर्यै नमो धिष्ठयै नमः कान्त्यै नमः श्रियै ।  
 रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमो नमः ॥ १५  
 एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्मालिखेत् ।  
 पत्रैद्वादशभिर्युक्तं कुङ्कुमेन सकर्णिकम् ॥ १६  
 पूर्वेण विन्यसेद् गौरीमपर्णा च ततः परम् ।  
 भवानीं दक्षिणे तद्वद् रुद्राणीं च ततः परम् ॥ १७  
 विन्यसेत् पश्चिमे सौम्यां सदा मदनवासिनीम् ।  
 वायव्ये पाटलावासामुत्तरेण ततोऽप्युमाम् ॥ १८  
 लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टि मङ्गलां कुमुदां सतीम् ।  
 रुद्रं च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि ।  
 कुसुमैरक्षतैर्वार्धिर्भिर्नमस्कारेण विन्यसेत् ॥ १९  
 गीतमङ्गलनिर्घोषान् कारयित्वा सुवासिनीः ।  
 पूजयेद् रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः ।  
 सिन्दूरं गच्छचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत् ॥ २०  
 सिन्दूरकुङ्कुमस्तानमिष्टं सत्याः सदा यतः ।  
 तथोपदेष्टारमपि पूजयेद् यत्ततो गुरुम् ।  
 न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ २१  
 न भस्ये पूजयेद् गौरीमुत्पलैरसितैः सदा ।  
 बन्धुजीवैराश्रययुजे कार्तिके शतपत्रकैः ॥ २२

'वरदायै नमः' से दोनों चरणोंका, 'श्रियै नमः' से दोनों गुल्फोंका, 'अशोकायै नमः' से दोनों जाँघोंका, 'पार्वत्यै नमः' से दोनों जानुओंका, 'मङ्गलकारिण्यै नमः' से दोनों ऊरुओंका, 'वामदेव्यै नमः' से कटिप्रदेशका, 'पद्मोदरायै नमः' से उदरका तथा 'कामश्रियै नमः' से वक्षःस्थलका अर्चन करे; फिर 'सौभाग्यदायिन्यै नमः' से दोनों हाथोंका, 'श्रियै नमः' से बाहु, उदर और मुखका, 'दर्पणवासिन्यै नमः' से दाँतोंका, 'स्मरदायै नमः' से मुसकानका, 'गौर्यै नमः' से नासिकाका, 'उत्पलायै नमः' से नेत्रोंका, 'तुष्ट्यै नमः' से ललाटका, 'कात्यायन्यै नमः' से सिर और बालोंका पूजन करना चाहिये। तदुपरान्त 'गौर्यै नमः', 'धिष्ठयै नमः', 'कान्त्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'रम्भायै नमः', 'ललितायै नमः' और 'वासुदेव्यै नमः' कहकर देवीके चरणोंमें प्रणिपात करना चाहिये ॥ ४—१५ ॥

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके मूर्तिके आगे कुङ्कुमसे बारह पत्तोंसे युक्त कर्णिकासहित कमल बनाये। उसके पूर्वभागमें गौरी, उसके बाद अपर्णा, दक्षिणभागमें भवानी और नैऋत्य कोणमें रुद्राणीको स्थापित करे। पुनः पश्चिममें सदा सौम्य स्वभावसे रहनेवाली मदनवासिनी, वायव्यकोणमें पाटला और उत्तरमें पुष्पमें निवास करनेवाली उमाकी स्थापना करे। मध्यभागमें लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मङ्गला, कुमुदा और सतीको स्थित करे। कमलके मध्यमें रुद्रकी स्थापना करके कर्णिकाके ऊपर ललितादेवीको स्थित करे। तत्पश्चात् गीत और माङ्गलिक बाजाका आयोजन कराकर पुष्प, श्वेत अक्षत और जलसे देवीकी अर्चना करके उन्हें नमस्कार करे। फिर लाल वस्त्र, लाल पुष्पोंकी माला और लाल अङ्गरागसे सुहागिनी स्त्रियोंका पूजन करे तथा उनके सिर (माँग)-में सिन्दूर और कुङ्कुम लगावे; क्योंकि सिन्दूर और कुङ्कुम सती देवीको सदा अभीष्ट हैं। तदनन्तर उपदेश करनेवाले गुरु अर्थात् आचार्यकी यलपूर्वक पूजा करनी चाहिये; क्योंकि जहाँ आचार्यकी पूजा नहीं होती, वहाँ सारी क्रियाएँ निष्कल हो जाती हैं। गौरीदेवीकी पूजा सदा भाद्रपदमासमें नीले कमलसे, आश्विनमें बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-के फूलोंसे, कार्तिकमें शतपत्रक (कमल)-के पुष्पोंसे,

जातीपुष्टैर्मार्गशीर्षे पौषे पीतैः कुरण्टकैः ।  
 कुन्दकुङ्कुमपुष्टैस्तु देवीं माघे तु पूजयेत् ।  
 सिन्धुवारेण जात्या वा फाल्नुनेऽप्यर्चयेदुमाम् ॥ २३  
 चैत्रे तु मल्लिकाशोकैर्वेशाखे गन्धपाटलैः ।  
 ज्येष्ठे कमलमन्दैरैषाढे चम्पकाम्बुजैः ।  
 कदम्बैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेदुमाम् ॥ २४  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।  
 बिल्वपत्रार्कपुष्टं च गवां शृङ्गोदकं तथा ॥ २५  
 पञ्चगव्यं च बिल्वं च प्राशयेत् क्रमशस्तदा ।  
 एतद् भाद्रपदाद्यां तु प्राशनं समुदाहृतम् ॥ २६  
 प्रतिपक्षं च मिथुनं तृतीयायां वरानने ।  
 ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव शिवं गौरीं प्रकल्प्य च ॥ २७  
 भोजयित्वार्चयेद् भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।  
 पुंसः पीताम्बरे दद्यात् स्त्रियै कौसुभ्वाससी ॥ २८  
 निष्पावाजाजिलवणमिक्षुदण्डगुडान्वितम् ।  
 स्त्रियै दद्यात् फलं पुंसे सुवर्णोत्पलसंयुतम् ॥ २९  
 यथा न देवि देवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति ।  
 तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु ॥ ३०  
 कुमुदा विमलानन्ता भवानी च सुधा शिवा ।  
 ललिता कमला गौरी सती रम्भाथ पार्वती ॥ ३१  
 नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत् ।  
 व्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम् ॥ ३२  
 मिथुनानि चतुर्विंशद् दश द्वौ च समर्चयेत् ।  
 अष्टौ षड् वाप्यथ पुनश्चानुमासं समर्चयेत् ॥ ३३  
 पूर्वं दत्त्वा तु गुरवे शेषानप्यर्चयेद् बुधः ।  
 उक्तानन्ततृतीयैषा सदानन्तफलप्रदा ॥ ३४  
 सर्वपापहरां देवि सौभाग्यारोग्यवर्धिनीम् ।  
 न चैनां वित्तशाळ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत् ।

मार्गशीर्षमें जाती (मालती)-के पुष्टोंसे, पौषमें पीले कुरण्टक (कटसरेया)-के पुष्टोंसे, माघमें कुन्द और कुङ्कुमके पुष्टोंसे करनी चाहिये । इसी प्रकार फाल्नुनमें सिन्धुवार अथवा मालतीके पुष्टोंसे उमाकी अर्चना करे । चैत्रमें मल्लिका और अशोकके पुष्टोंसे, वैशाखमें गन्धपाटलके फूलोंसे, ज्येष्ठमें कमल और मन्दारके कुसुमोंसे, आषाढ़में चम्पा एवं कमल-पुष्टोंसे और श्रावणमें कदम्ब तथा मालतीके फूलोंसे पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये । इसी तरह भाद्रपदसे आरम्भ कर आश्विन आदि बारह महीनोंमें क्रमशः गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, बिल्व-पत्र, मदारका पुष्ट, गोशृङ्गोदक, पञ्चगव्य और बेलका नैवेद्य अर्पण करनेका विधान है । क्रमशः भाद्रपदसे लेकर श्रावणतक प्रत्येक मासके लिये ये नैवेद्य बतलाये गये हैं ॥ १६—२६ ॥

वरानने ! प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको एक ब्राह्मण-दम्पतिको उनमें शिव-पार्वतीकी कल्पना कर भोजन कराकर उनकी वस्त्र, पुष्टमाला और चन्दनसे भक्तिपूर्वक अर्चना करे तथा पुरुषको दो पीताम्बर और स्त्रीको दो पीली साड़ियाँ प्रदान करे । फिर ब्राह्मणी-स्त्रीको निष्पाव (बड़ी मटर या सेम), जीरा, नमक, ईख, गुड़, फल और फूल आदि सौभाग्याश्टक देकर और पुरुषको सुवर्णनिर्मित कमल देकर यों प्रार्थना करे—‘देवि ! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर अन्यत्र न जायँ ।’ पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वतीदेवीके इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों । व्रतकी समाप्तिमें सुवर्ण-निर्मित कमलसहित शश्या दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे । पुनः प्रतिमास आठ या छः दम्पतियोंका पूजन करते रहनेका विधान है । विद्वान् व्रती सर्वप्रथम गुरुको दान देकर तत्पश्चात् दूसरे ब्राह्मणोंकी अर्चना करे । देवि ! इस प्रकार मैंने इस अनन्त-तृतीयाका वर्णन कर दिया, जो सदा अनन्त फलकी प्रदायिका है ॥ २७—३४ ॥

देवि ! यह अनन्ततृतीय समस्त पापोंकी विनाशिका तथा सौभाग्य और नीरोगताकी वृद्धि करनेवाली है, इसका कृपणता-वश कभी भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये; क्योंकि चाहे पुरुष हो या स्त्री—कोई भी कृपणताके वशीभूत होकर यदि इसका उल्लङ्घन करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है ।

गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी वाथ रोगिणी।  
यद्यशुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्॥ ३६

इमामनन्तफलदां यस्तृतीयां समाचरेत्।  
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते॥ ३७

वित्तहीनोऽपि कुरुते वर्षत्रयमुपोषणैः।  
पुष्टमन्त्रविधानेन सोऽपि तत्फलमाप्नुयात्॥ ३८

नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवाथवा।  
सापि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहलालिता॥ ३९

इति पठति शृणोति वा  
य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्द्रलोकसंस्थः।  
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवै-  
रमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः॥ ४०

गर्भिणी एवं सूतिका (सौरीमें पड़ी हुई) स्त्री नक्तब्रत (रातमें भोजन) करे। कुमारी और रोगिणी अथवा अशुद्ध स्त्री स्वयं नियमपूर्वक रहकर दूसरेके द्वारा ब्रतका अनुष्ठान कराये। जो मानव अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस तृतीयाके ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास करके पुष्ट और मन्त्र आदिके द्वारा इस ब्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी उस फलकी प्राप्ति होती है। सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा—जो कोई भी इस ब्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे लालित होकर उस फलको प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार जो मनुष्य गिरीश-नन्दिनी पार्वतीके इस ब्रतको पढ़ता अथवा सुनता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है तथा जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवताओं, देवाङ्गनाओं और किन्नरोंद्वारा पूजनीय हो जाता है॥ ३५—४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणोऽनन्ततृतीयाव्रतं नाम द्विषष्ठितमोऽध्यायः॥ ६२॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनन्ततृतीया-ब्रत नामक वासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६२॥

## तिरसठवाँ अध्याय

### रसकल्याणिनी-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम्।  
रसकल्याणिनीमेनां पुराकल्पविदो विदुः॥ १  
माघमासे तु सम्प्रासे तृतीयां शुक्लपक्षतः।  
प्रातर्गव्येन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ २  
स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च।  
दक्षिणाङ्गानि सम्पूज्य ततो वामानि पूजयेत्॥ ३  
गन्धोदकेन च पुनः पूजनं कुङ्कुमेन वै।  
ललितायै नमो देव्याः पादौ गुल्फौ ततोऽर्चयेत्।  
जङ्घां जानुं तथा शान्त्यै तथैवोरुं श्रियै नमः॥ ४

ईश्वरने कहा—नारद! अब मैं एक अन्य तृतीयाका भी वर्णन कर रहा हूँ जो पापोंका विनाश करनेवाली है, तथा जिसे पुराकल्पके ज्ञातालोग ‘रस-कल्याणिनी’ के नामसे जानते हैं। माघका महीना आनेपर शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको प्रातःकाल ब्रतीको गो-दुध और तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। (इस प्रकार स्वयं शुद्ध होकर) फिर देवीकी मूर्तिको मधु और गन्धेके रससे स्नान करावे। तत्पश्चात् सुगंधित जलसे शुद्ध स्नान कराकर कुङ्कुमका अनुलेप करे। पूजनमें दक्षिणाङ्गकी पूजा कर लेनेके पश्चात् वामाङ्गकी पूजा करनेका विधान है। ‘ललितायै नमः’ से देवीके दोनों चरणों तथा दोनों गुल्फोंकी अर्चना करे। ‘शान्त्यै नमः’ से जङ्घाओं और जानुओंका, ‘श्रियै नमः’ से ऊरुओंका,

मदालसायै तु कटिममलायै तथोदरम्।  
स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्धराम्॥५

भुजं भुजाग्रं माधव्यै कमलायै मुखस्मिते।  
भूललाटे च रुद्राण्यै शंकरायै तथालकान्॥६

मुकुटं विश्ववासिन्यै शिरः कान्त्यै तथार्चयेत्।  
मदनायै ललाटं तु मोहनायै पुनर्भूवौ॥७

नेत्रे चन्द्रार्धधारिण्यै तुष्ट्यै च वदनं पुनः।  
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठममृतायै नमः स्तनौ॥८

रम्भायै वामकुक्षिं च विशोकायै नमः कटिम्।  
हृदयं मन्मथाधिष्यै पाटलायै तथोदरम्॥९

कटि सुरतवासिन्यै तथोरुं चम्पकप्रिये।  
जानुजङ्घे नमो गौर्यै गायत्र्यै घुटिके नमः॥१०

धराधरायै पादौ तु विश्वकायै नमः शिरः।  
नमो भवान्यै कामिन्यै कामदेव्यै जगत्प्रिये॥११

एवं सम्पूज्य विधिवद् द्विजदम्पत्यमर्चयेत्।  
भोजयित्वान्नपानेन मधुरेण विमत्सरः॥१२

जलपूरितं तथा कुम्भं शुक्लाम्बरयुग्मद्वयम्।  
दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैः समर्चयेत्॥१३

प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम्।  
अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदार्चयेत्॥१४

लवणं वर्जयेन्माघे फाल्युने च गुडं पुनः।  
तैलं राजिं तथा चैत्रे वर्ज्य च मधु माधवे॥१५

पानकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे चाथ जीरकम्।  
श्रावणे वर्जयेत् क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा॥१६

घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जे वर्ज्य च माक्षिकम्।  
धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा॥१७

‘मदालसायै नमः’ से कटिभागका, ‘अमलायै नमः’ से उदरका, ‘मदनवासिन्यै नमः’ से दोनों स्तनोंका, ‘कुमुदायै नमः’ से कंधोंका, ‘माधव्यै नमः’ से भुजाओं और भुजाओंके अग्रभागका, ‘कमलायै नमः’ से मुख और मुसकानका, ‘रुद्राण्यै नमः’ से भौंहों और ललाटका, ‘शङ्करायै नमः’ से बालोंका, ‘विश्ववासिन्यै नमः’ से मुकुटका और ‘कान्त्यै नमः’ से सिरका पूजन करे। पुनः (पूजनका अन्य क्रम बतलाते हैं—) ‘मदनायै नमः’ से ललाटकी, ‘मोहनायै नमः’ से दोनों भौंहोंकी, ‘चन्द्रार्धधारिण्यै नमः’ से दोनों नेत्रोंकी, ‘तुष्ट्यै नमः’ से मुखकी, ‘उत्कण्ठिन्यै नमः’ से कण्ठकी, ‘अमृतायै नमः’ से दोनों स्तनोंकी, ‘रम्भायै नमः’ से बार्यों कुक्षिकी, ‘विशोकायै नमः’ से कटिभागकी, ‘मन्मथाधिष्यै नमः’ से हृदयकी, ‘पाटलायै नमः’ से उदरकी, ‘सुरतवासिन्यै नमः’ से कटिप्रदेशकी, ‘चम्पकप्रियायै नमः’ से ऊरुओंकी, ‘गौर्यै नमः’ से जंघाओं और जानुओंकी, ‘गायत्र्यै नमः’ से घुटनोंकी, ‘धराधरायै नमः’ से दोनों चरणोंकी और ‘विश्वकायै नमः’ से सिरकी पूजा करके ‘भवान्यै नमः’, ‘कामिन्यै नमः’, ‘कामदेव्यै नमः’, ‘जगत्प्रियायै नमः’ कहकर चरणोंमें प्रणिपात (प्रणाम) करना चाहिये ॥ १—११ ॥

इस प्रकार विधि-विधानके साथ देवीकी पूजा करके एक द्विज-दम्पतिका भी पूजन करना चाहिये। उस समय व्रती अहंकाररहित हो अर्थात् विनप्रतापूर्वक उन्हें मधुर अन्न और जलका भोजन कराकर दो श्वेत वस्त्रोंसे परिवेषित एवं स्वर्णनिर्मित कमलसहित जलसे भरा हुआ घड़ा प्रदान करे फिर चन्दन और पुष्पमाला आदिसे उनकी अर्चना करे, तथा इस प्रकार कहे—‘इस व्रतसे कुमुदा देवी प्रसन्न हों।’ ऐसा कहकर उस दिन लवण-ब्रत ग्रहण करे अर्थात् नमक खाना छोड़ दे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सदा देवीकी अर्चना करनी चाहिये। व्रतीको माघमें नमक और फाल्युनमें गुड़ नहीं खाना चाहिये। चैत्रमें तेल और पीली सरसों (या राई) तथा वैशाखमें मधु वर्जित है। ज्येष्ठमासमें पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), आषाढ़में जीरा, श्रावणमें दूध और भाद्रपदमें दही निषिद्ध है। इसी प्रकार आश्विनमें घी और कार्तिकमें मधुका निषेध किया गया है। मार्गशीर्षमें धनिया और पौषमें शक्कर वर्जित है।

व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च।  
 दद्याद् द्विकालवेलायां पूर्णपात्रेण संयुतम्॥ १८  
 लङ्घुकाञ्छेतवर्णांश्च संयावमथ पूरिकाः।  
 घारिकानप्यपूपांश्च पिष्टापूपांश्च मण्डकान्॥ १९  
 क्षीरं शाकं च दध्यन्नमिणदयोऽशोकवर्तिकाः।  
 माधादिक्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि॥ २०  
 कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा।  
 उमा रतिः सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा॥ २१  
 क्रमान्माधादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत्।  
 सर्वत्र पञ्चगव्येन प्राशनं समुदाहृतम्।  
 उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते॥ २२  
 पुनर्मधे तु सम्प्रासे शर्करां करकोपरि।  
 कृत्वा तु काञ्छनीं गौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम्॥ २३  
 हैमीमङ्गुष्ठमात्रां च साक्षसूत्रकमण्डलुम्।  
 चतुर्भुजामिन्दुयुतां सितनेत्रपटावृताम्॥ २४  
 तद्वद् गोमिथुनं शुक्लं सुवर्णास्यं सिताम्बरम्।  
 सवस्त्रभाजनं दद्याद् भवानी प्रीयतामिति॥ २५  
 अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम्।  
 कुर्यात् स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते॥ २६  
 नवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते नरः।  
 सुवर्णकमलं गौरि मासि मासि ददन्नरः।  
 अग्निष्ठोमसहस्रस्य यत्फलं तदवाप्युयात्॥ २७  
 नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने।  
 विधवा या तथा नारी सापि तत्फलमाप्युयात्।  
 सौभाग्यारोग्यसम्पन्ना गौरीलोके महीयते॥ २८

इस प्रकार इन महीनोंके क्रमसे प्रत्येक मासमें व्रतकी समाप्तिके समय सायंकालकी वेलामें उपर्युक्त पदार्थोंसे भरा हुआ एक करवा पूर्णपात्रसहित ब्राह्मणको दान करे। इसी तरह श्वेत रंगके लङ्घु, गोङ्गिया, पूरी, घेवर, पूआ, आटेका बना हुआ पूआ, मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक), दूध, शाक, दही-मिश्रित अन्न, इण्डरी (एक प्रकारकी रोटी) और अशोकवर्तिका (सेंवई)—इन पदार्थोंको माघ आदि मासक्रमसे करवाके ऊपर रखकर दान करनेका विधान है। फिर कुमुदा, माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, रति, सती, मङ्गला, रतिलालसा प्रसन्न हों—ऐसा कहकर माघ आदि सभी मासोंमें क्रमशः कीर्तन करना चाहिये॥ १२—२१ १/२॥

सभी मासोंके व्रतमें पञ्चगव्यका प्राशन (भक्षण) बतलाया गया है। इन सभी व्रतोंमें उपवास करनेका विधान है। यदि उपवास करनेमें असमर्थ हो तो रात्रिमें एक बार तारिकाओंके निकल आनेपर भोजन किया जा सकता है। वर्षान्तमें पुनः माघमास आनेपर गौरीकी एक सोनेकी मूर्ति बनवाये जो अँगूठेके बराबर लम्बी हो। वह चार भुजाओं और ललाटमें चन्द्रमासे युक्त हो। उसे पञ्चरत्नोंसे विभूषित और दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर दे। फिर करवामें शवकर भरकर उसीके ऊपर उस मूर्तिको स्थापित करके रुद्राक्षकी माला और कमण्डलुसहित ब्राह्मणको दान कर दे। उसी प्रकार गौके जोड़ेको, जिनका रंग श्वेत और मुख सुवर्णसे मढ़ा हुआ हो, जो श्वेत वस्त्रसे आच्छादित हों, अन्य वस्त्र और पात्रके सहित दान करके ‘भवानी प्रसन्न हों’ यों कहकर प्रार्थना करनी चाहिये। जो मनुष्य इस विधिके अनुसार रसकल्याणिनीव्रतका अनुष्ठान करता है, वह उसी क्षण समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और नौ अरब एक हजार वर्षोंतक कष्टमें नहीं पड़ता। गौरि! इसी प्रकार जो मनुष्य प्रत्येक मासमें स्वर्णनिर्मित कमलका दान करता है वह हजारों अग्निष्ठोम-यज्ञोंका जो फल होता है, उसे प्राप्त कर लेता है। वरानने! सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा स्त्री—कोई भी यदि इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी उस फलको प्राप्त करती है, साथ ही सौभाग्य और आरोग्यसे सम्पन्न होकर गौरी-लोकमें पूजित होती है।

इति पठति शृणोति श्रावयेद् यः प्रसङ्गात्  
कलिकलुषविमुक्तः पार्वतीलोकमेति ।  
मतिमपि च नराणां यो ददाति प्रियार्थं  
विबुधपतिविमाने नायकः स्यादमोघः ॥ २९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रसकल्याणिनीब्रतं नाम त्रिष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रस-कल्याणिनी-ब्रत नामक तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६३ ॥

इस प्रकार जो मनुष्य प्रसङ्गवश इस ब्रतको पढ़ता, सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, वह कलियुगके पापोंसे मुक्त होकर पार्वती-लोकमें जाता है तथा जो मनुष्योंकी हित-कामनासे इस ब्रतका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह इन्द्रके विमानमें स्थित होकर अक्षयकालतक नायक—नेताका पद प्राप्त करता है ॥ २२—२९ ॥

## चौंसठवाँ अध्याय

आर्द्रानन्दकरी तृतीया-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

तथैवान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम् ।  
नाम्ना च लोके विख्यातामार्द्रानन्दकरीमिमाम् ॥ १ ॥  
यदा शुक्लतृतीयायामाषाढक्ष्यं भवेत् क्वचित् ।  
ब्रह्मक्ष्यं या मृगक्ष्यं वा हस्तो मूलमथापि वा ।  
दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक् समाचरेत् ॥ २ ॥  
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।  
भवानीमर्चयेद् भक्त्या शुक्लपुष्ट्यैः सुगन्धिभिः ।  
महादेवेन सहितामुपविष्टां महासने ॥ ३ ॥  
वासुदेव्यै नमः पादौ शङ्कराय नमो हरम् ।  
जड्डे शोकविनाशिन्यै आनन्दाय नमः प्रभो ॥ ४ ॥  
रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिनः ।  
अदित्यै च कटिं देव्याः शूलिनः शूलपाणये ॥ ५ ॥  
माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय च ।  
स्तनावानन्दकारिण्यै शङ्करस्येन्दुधारिणे ॥ ६ ॥  
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरम् ।  
करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय च जगत्पतेः ।  
बाहू च परिरम्भिण्यै त्रिशूलाय हरस्य च ॥ ७ ॥  
देव्या मुखं विलासिन्यै वृषेशाय पुनर्विभोः ।  
स्मितं सस्मेरलीलायै विश्ववक्त्राय वै विभोः ॥ ८ ॥

ईश्वरने कहा—नारद! उसी प्रकार अब मैं एक-दूसरी पापनाशिनी तृतीयाका वर्णन कर रहा हूँ जो लोकमें आर्द्रानन्दकरी नामसे विख्यात है। इसकी विधि यह है—जब कभी शुक्लपक्षकी तृतीयाको पूर्वाषाढ़ अथवा उत्तराषाढ़, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त अथवा मूल नक्षत्र पढ़े तो उस समय कुश और चन्दनमिश्रित जलसे भलीभाँति स्नान करना चाहिये। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप कर ले। तत्पश्चात् महादेवसहित दिव्य आसनपर विराजमान भवानीकी (स्वर्णमयी मूर्तिकी) श्वेत पुष्ट्यों और सुगन्धित पदार्थोद्घारा भक्तिपूर्वक अर्चना करे। (पूजनकी विधि इस प्रकार है—) ‘वासुदेव्यै नमः, शङ्कराय नमः’ से गौरी-शंकरके दोनों चरणोंका, ‘शोकविनाशिन्यै नमः, आनन्दाय नमः’ से दोनों जंघाओंका, ‘रम्भायै नमः’, ‘शिवाय नमः’ से दोनों ऊर्होंका, ‘अदित्यै नमः, शूलपाणये नमः’ से कटिप्रदेशका, ‘माधव्यै नमः, भवाय नमः’ से नाभिका, ‘आनन्दकारिण्यै नमः, इन्दुधारिणे नमः’ से दोनों स्तनोंका, ‘उत्कण्ठिन्यै नमः, नीलकण्ठाय नमः’ से कण्ठका, ‘उत्पलधारिण्यै नमः, रुद्राय नमः’ से दोनों हाथोंका, ‘परिरम्भिण्यै नमः, त्रिशूलाय नमः’ से दोनों भुजाओंका, ‘विलासिन्यै नमः, वृषेशाय नमः’ से मुखका, ‘सस्मेरलीलायै नमः, विश्ववक्त्राय नमः’ से मुसकानका,

नेत्रे मदनवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिनः ।  
 भूवौ नृत्यप्रियायै तु ताण्डवेशाय शूलिनः ॥ ९  
 देव्या ललाटमिन्नाण्यै हव्यवाहाय वै विभोः ।  
 स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोर्गङ्गाधराय वै ॥ १०  
 विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ ।  
 प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ ११  
 एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः नमः ।  
 पद्मोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत् ॥ १२  
 शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकाङ्क्षशाचामरान् ।  
 यावन्तः पांसवस्तत्र रजसः पतिता भुवि ।  
 तावद् वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ १३  
 चत्वारि घृतपात्राणि सहिरण्यानि शक्तिः ।  
 दत्त्वा द्विजाय करकमुदकान्नसमन्वितम् ।  
 प्रतिपक्षं चतुर्मासं यावदेतन्निवेदयेत् ॥ १४  
 ततस्तु चतुरो मासान् पूर्ववत् करकोपरि ।  
 चत्वारि सक्तुपात्राणि तिलपात्राण्यतः परम् ॥ १५  
 गन्धोदकं पुष्पवारि चन्दनं कुङ्गमोदकम् ।  
 अपवर्वं दथि दुग्धं च गोशृङ्गोदकमेव च ॥ १६  
 पिष्ठोदकं तथा वारि कुष्ठचूर्णान्वितं पुनः ।  
 उशीरसलिलं तद्वद् यवचूर्णोदकं पुनः ॥ १७  
 तिलोदकं च सम्प्राशय स्वपेन्मार्गशिरादिषु ।  
 मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम् ॥ १८  
 सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने ।  
 दानकाले च सर्वत्र मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ १९  
 गौरी मे प्रीयतां नित्यमधनाशाय मङ्गला ।  
 सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी सर्वसिद्धये ॥ २०  
 संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भं च सर्जिकाम् ।  
 चन्दनं नेत्रपट्टं च सहिरण्याम्बुजेन तु ॥ २१  
 उमामहेश्वरं हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम् ।  
 सतूलावरणां शश्यां सविश्रामां निवेदयेत् ।  
 सपलीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति ॥ २२

‘मदनवासिन्यै नमः, विश्वधाम्ने नमः’ से दोनों नेत्रोंका, ‘नृत्यप्रियायै नमः, ताण्डवेशाय नमः’ से दोनों भौंहोंका, ‘इन्द्राण्यै नमः, हव्यवाहाय नमः’ से ललाटका तथा ‘स्वाहायै नमः, गङ्गाधराय नमः’ से मुकुटका पूजन करे । तत्पश्चात् विश्व जिनका शरीर है, जो विश्वके मुख, पाद और हस्तस्वरूप तथा मङ्गलकारक हैं, जिनके मुखपर प्रसन्नता झलकती रहती है, उन पार्वती और परमेश्वरकी मैं बन्दना करता हूँ । (ऐसा कहकर उनके चरणोंमें लुढ़क पड़े ।) ॥ १—११ ॥

इस प्रकार विधिके अनुसार पूजन कर पुनः शिव-पार्वतीकी मूर्तिके अग्रभागमें विभिन्न प्रकारके रङ्गोंवाले रजसे कमलका आकार बनवाये । साथ ही कटकसहित शङ्ख, चक्र, स्वस्तिक, अङ्गुष्ठा और चँचरको भी चित्रित करे । ऐसा करते समय वहाँ भूतलपर जितने रजःकण गिरते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक व्रती शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है । पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसहित धीसे भरे हुए चार पात्र और अन्न एवं जलसे युक्त करवा ब्राह्मणको दान करे । ऐसा चार मासतक प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीयाको करना चाहिये । इसके बाद चार मासतक पहलेकी तरह करवापर सत्रूपे पूर्ण चार पात्र रखकर तथा उसके बाद चार मासतक करवापर तिलपूर्ण चार पात्र रखकर दान करे । व्रतीको मार्गशीर्ष आदि मासोंमें क्रमशः गन्धोदक (सुगन्धिमिश्रित जल), पुष्पवारि (फूलयुक्त जल), चन्दनमिश्रित जल, कुङ्गमयुक्त जल, बिना पका हुआ दही, दूध, गोशृङ्गोदक (गौके सींगसे स्पर्श कराया हुआ जल), पिष्ठोदक (पीठीयुक्त जल), कुष्ठ (गन्धक)-के चूर्णसे युक्त जल, उशीर (खस)-मिश्रित जल, यवके चूर्णसे युक्त जल तथा तिलमिश्रित जलका भक्षण करके रात्रिमें शयन करना चाहिये । यह प्राशन (भक्षण) प्रत्येक मासमें दोनों पक्षोंमें करनेका विधान है । सभी महीनोंके पूजनमें श्वेत पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं । सभी मासोंमें दानके समय इस प्रकारका मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—‘गौरी नित्य मुझपर प्रसन्न रहें, मङ्गला मेरे पापोंका विनाश करें, ललिता मुझे सौभाग्य प्रदान करें और भवानी मेरे लिये सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्रदात्री हों ।’ इस प्रकार वर्षके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसहित नमक, गुड़से भरा हुआ घट, सज्जी, चन्दन, आँखोंको ढँकनेके लिये वस्त्र, गत्रा और नाना प्रकारके फलोंके साथ स्वर्णनिर्मित उमा और महेश्वरकी मूर्ति सपलीक ब्राह्मणको दान कर दे । उस समय रूईसे भरा हुआ गदा, चादर और तकियासे युक्त सुन्दर शश्या भी दान करनेका विधान है । (दान करनेके पश्चात् उनसे यों प्रार्थना करे—) ‘गौरीदेवी मुझपर प्रसन्न हों’ ॥ १२—२२ ॥

आद्रानन्दकरी नामा तृतीयैषा सनातनी ।  
 यामुपोष्य नरो याति शम्भोर्यत् परमं पदम् ॥ २३  
 इह लोके सदानन्दमाप्नोति धनसम्पदः ।  
 आयुरारोग्यसम्पत्या न कश्चिच्छोकमाप्नुयात् ॥ २४  
 नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा च या ।  
 सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ॥ २५  
 प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानवित् ।  
 रुद्राणीलोकमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ २६  
 य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः ।  
 शक्लोके स गन्धर्वैः पूज्यतेऽपि युगत्रयम् ॥ २७  
 आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां  
 या स्त्री करोत्यविधवा विधवाथवापि ।  
 सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो  
 गौरीपदं सदयिता दयिता प्रयाति ॥ २८

यह आद्रानन्दकरी नामकी सनातनी तृतीया है, जिसका व्रतोपवास करके मनुष्य उस स्थानको प्राप्त होता है जो शिवजीका परमपद कहलाता है। वह इस लोकमें धन-सम्पत्ति, दीर्घायु और नीरोगतारूप सम्पत्तिसे युक्त होकर सुखका उपभोग करता है। उसे कोई शोक नहीं प्राप्त होता। यदि सधवा नारी, कुमारी अथवा विधवा इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी देवीकी कृपासे लालित होकर उसी फलको प्राप्त होती है। इसी प्रकार मन्त्र और अर्चा-विधिका ज्ञाता मनुष्य प्रत्येक पक्षमें इस व्रतका अनुष्ठान कर रुद्राणीके उस लोकमें जाता है जहाँसे पुनरागमन नहीं होता। जो मानव नित्य इस व्रतको सुनता अथवा सुनाता है वह तीन युगोंतक इन्द्रलोकमें गन्धर्वोंद्वारा पूजित होता है। जो स्त्री, चाहे वह सधवा हो अथवा विधवा, इस सम्पूर्ण दुःखोंको हरण करनेवाली एवं आनन्ददायिनी तृतीयाका अनुष्ठान करती है वह नारी पतिसहित अपने घरमें सैकड़ों प्रकारके सुखोंका अनुभव करके पुनः गौरी-लोकमें चली जाती है ॥ २३—२८ ॥

इति श्रीमत्स्ये महापुराणे आद्रानन्दकरीतृतीयाव्रतं नाम चतुःषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आद्रानन्दकरी तृतीया-व्रत नामक चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६४ ॥

## पैंसठवाँ अध्याय

### अक्षयतृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम् ।  
 यस्यां दत्तं हुतं जसं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ १  
 वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता ।  
 अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ॥ २  
 सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता ।  
 तत्र दत्तं हुतं जसं सर्वमक्षयमुच्यते ॥ ३  
 अक्षया संततिस्तस्य तस्यां सुकृतमक्षयम् ।  
 अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साक्षया स्मृता ।  
 अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षताम् ॥ ४

भगवान् शंकरने कहा—नारद! अब मैं सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली एक अन्य तृतीयाका वर्णन कर रहा हूँ, जिसमें दान देना, हवन करना और जप करना सभी अक्षय हो जाता है। जो लोग वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन व्रतोपवास करते हैं, वे अपने समस्त सत्कर्मोंका अक्षय फल प्राप्त करते हैं। वह तृतीया यदि कृतिका नक्षत्रसे युक्त हो तो विशेषरूपसे पूज्य मानी गयी है। उस दिन दिया गया दान, किया हुआ हवन और जप सभी अक्षय बतलाये गये हैं। इस व्रतका अनुष्ठान करनेवालेकी संतान अक्षय हो जाती है और उस दिनका किया हुआ पुण्य अक्षय हो जाता है। इस दिन अक्षतके द्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, इसीलिये इसे अक्षय-तृतीया

विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सकून् सुसंस्कृतान्।  
यथान्नभुइँ महाभाग फलमक्षय्यमश्नुते ॥ ५

एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः।  
एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत् ॥ ६

तृतीयायां समध्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम्।  
राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्न्यां च विन्दति ॥ ७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽक्षयतृतीयाव्रतं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अक्षयतृतीया-व्रत नामक पैसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६५ ॥

कहते हैं।\* मनुष्यको चाहिये कि इस दिन स्वयं अक्षतयुक्त जलसे स्नान करके भगवान् विष्णुकी मूर्तिपर अक्षत चढ़ावे और अक्षतके साथ ही शुद्ध सत् ब्राह्मणोंको दान दे; तत्पश्चात् स्वयं भी उसी अन्नका भोजन करे। महाभाग! ऐसा करनेसे वह अक्षय फलका भागी हो जाता है। उपर्युक्त विधिके अनुसार एक भी तृतीयाका व्रत करनेवाला मनुष्य इन सभी तृतीया-ब्रतोंके फलको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस तृतीया तिथिको उपवास करके भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करता है, वह राजसूय-यज्ञका फल पाकर अन्तमें श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है ॥ १-७ ॥

## चाहूठवाँ अध्याय

### सारस्वत-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन।  
तथैव जनसौभाग्यं मतिं विद्यासु कौशलम् ॥ १  
अभेदश्चापि दप्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च।  
आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय माधव ॥ २

मत्स्य उवाच

सम्यक् पृष्ठं त्वया राजञ्चृणु सारस्वतं व्रतम्।  
यस्य संकीर्तनादेव तुष्ट्यतीह सरस्वती ॥ ३  
यो मद्दक्तः पुमान् कुर्यादेतद् व्रतमनुत्तमम्।  
तद्वासरादौ सम्पूज्य विप्रानेतान् समाचरेत् ॥ ४  
अथवाऽऽदित्यवारेण ग्रहताराबलेन च।  
पायसं भोजयेद् विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ५  
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तिः।  
गायत्रीं पूजयेद् भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ ६

मनुने पूछा—मधुसूदन! किस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्योंको मधुर वाणी, जनतामें उत्कृष्ट सौभाग्य, उत्तम बुद्धि, विद्याओंमें निपुणता, पति-पत्नीमें अभेद, बन्धुजनोंके साथ प्रेम और दीर्घायुकी प्राप्ति हो सकती है? माधव! वह व्रत मुझे बतलाइये ॥ १-२ ॥

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! तुमने तो बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। अच्छा सुनो! अब मैं उस सारस्वत-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसकी चर्चामात्र करनेसे इस लोकमें सरस्वतीदेवी प्रसन्न हो जाती हैं। जो पुरुष मेरा भक्त हो, उसे पञ्चमीके दिन इस श्रेष्ठ व्रतका अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिये। आरम्भ-कालमें ब्राह्मणोंके पूजनका विधान है। अथवा रविवारको जब ग्रह और तारा आदि अनुकूल हों, ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर उन ब्राह्मणोंको खीरका भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसहित श्वेत वस्त्र दान करे। फिर श्वेत पुष्पमाला और चन्दन आदि उपकरणोंद्वारा भक्तिपूर्वक

\* ध्यान रहे, सामान्यतया अक्षतके द्वारा विष्णुका पूजन निषिद्ध है—‘नाक्षतैर्चयेद् विष्णुम्’ (पद्म० ६ । १६ । २०)। पर केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजाका विधान है। अन्यत्र अक्षतके स्थानपर सफेद तिलका विधान है। इस व्रतकी विस्तृत विधि भविष्यपुराण एवं ‘व्रत-कल्पद्रुम’में है। इसी तिथिको सत्ययुगका प्रारम्भ तथा परशुरामजीका जन्म भी हुआ था।

यथा न देवि भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः ।  
त्वां परित्यज्य संतिष्ठेत् तथा भव वरप्रदा ॥ ७

वेदाः शास्त्राणि सर्वाणि गीतनृत्यादिकं च यत् ।  
न विहीनं त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥ ८

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा मतिः ।  
एताभिः पाहि अष्टाभिस्तनुभिर्मा सरस्वति ॥ ९

एवं सम्पूज्य गायत्रीं वीणाक्षमालधारिणीम् ।  
शुक्लपूष्याक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम् ।  
मौनव्रतेन भुज्ञीत सायं प्रातस्तु धर्मवित् ॥ १०

पञ्चम्यां प्रतिपक्षं च पूजयेद् ब्रह्मवासिनीम् ।  
तथैव तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् ।  
क्षीरं दद्याद्द्विरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति ॥ ११

संध्यायां च तथा मौनमेतत् कुर्वन् समाचरेत् ।  
नान्तरा भोजनं कुर्याद् यावन्मासास्त्रयोदश ॥ १२

समाप्ते तु व्रते कुर्याद् भोजनं शुक्लतण्डुलैः ।  
पूर्वं सवस्त्रयुग्मं च दद्याद् विप्राय भोजनम् ॥ १३

देव्या वितानं घण्टां च सितनेत्रे पयस्त्विनीम् ।  
चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दद्याच्च शिखरं पुनः ॥ १४

तथोपदेष्टारमपि भक्त्या सम्पूजयेद् गुरुम् ।  
वित्तशाळ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ॥ १५

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् सारस्वतं व्रतम् ।  
विद्यावानर्थसंयुक्तो रक्तकण्ठश्च जायते ॥ १६

सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते ।  
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलगामिनी ।  
ब्रह्मलोके वसेद् राजन् यावत् कल्पायुतत्रयम् ॥ १७

सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत् ।  
विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत् कल्पायुतत्रयम् ॥ १८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सारस्वतव्रतं नाम षट्षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सारस्वत-व्रत नामक छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६६ ॥

गायत्रीदेवीकी पूजा करके यों प्रार्थना करे—‘देवि! जैसे ब्रह्मलोकमें भगवान् पितामह आपको छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं रुकते, उसी प्रकारका वर मुझे भी प्रदान करें। देवि! जैसे वेद, सम्पूर्ण शास्त्र तथा गीत-नृत्य आदि जितनी कलाएँ हैं, वे सभी आपके बिना नहीं रह सकतीं, उसी प्रकारकी सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हों। सरस्वति! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और मति—इन आठ मूर्तियोंद्वारा मेरी रक्षा करें।’ इस प्रकार धर्मज्ञ पुरुष वीणा, रुद्राक्ष-माला, कमण्डलु और पुस्तक धारण करनेवाली गायत्रीकी श्वेत पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा कर प्रातः एवं सायंकाल मौन धारण करके भोजन करे तथा प्रत्येक पक्षकी पञ्चमी तिथिको ब्रह्मवासिनी (वेद-विद्याकी अधिष्ठात्री)-का पूजन कर घृतपूर्ण पात्रसहित एक सेर चावल, दूध और सुवर्णका दान करे और कहे—‘गायत्रीदेवी मुझपर प्रसन्न हों।’ यह कर्म सायंकालमें मौन धारण करके करना चाहिये। तेरह महीनेतक प्रातः और सायंकालके बीच भोजन न करनेका विधान है। व्रत समाप्त हो जानेपर पहले ब्राह्मणको दो वस्त्रोंसहित भोजन-पदार्थका दान करके तत्पश्चात् स्वयं श्वेत चावलोंका भोजन करे। पुनः देवीके निमित्त वितान (चाँदोवा या चाँदनी), घण्टा, दो श्वेत (चाँदीके बने हुए) नेत्र, दुधारू गौ, चन्दन, दो वस्त्र और सिरका कोई आभूषण दान करना चाहिये। तदनन्तर उपदेश करनेवाले अर्थात् कर्म करनेवाले गुरुका भी कृपणतारहित होकर वस्त्र, पुष्पमाला, चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजन करे॥ ३—१५॥

जो मनुष्य इस (उपर्युक्त) विधिके अनुसार सारस्वतव्रतका अनुष्ठान करता है, वह विद्या-सम्पन्न, धनवान् और मधुरभाषी हो जाता है; साथ ही सरस्वतीकी कृपासे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा राजन्! यदि कोई स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी उस फलको प्राप्त करती है और तीस कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें निवास करती है। जो मनुष्य इस सारस्वत-व्रतका पाठ अथवा श्रवण करता है वह भी विद्याधर-लोकमें तीस कल्पोंतक निवास करता है॥ १६—१८॥

## सङ्ग्रहालय अध्याय

सूर्य-चन्द्र-ग्रहणके समय स्नानकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

चन्द्रादित्योपरागे तु यत् स्नानमभिधीयते।  
तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित्॥ १

मत्स्य उवाच

यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्प्लवः।  
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः॥ २  
चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।  
सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ ३  
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम्।  
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानितिः॥ ४  
गजाश्वरस्थावल्मीकसंगमादध्यदगोकुलात् ।  
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत्॥ ५  
पञ्चगव्यं च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च।  
रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम्॥ ६  
स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्वपम्।  
राजदन्तं सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम्।  
एतत् सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहेत सुरान्॥ ७  
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।  
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ ८  
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः।  
सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥ ९  
मुखं यः सर्वदेवानां समार्चिरमितद्युतिः।  
चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु॥ १०  
यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः।  
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां मम पीडां व्यपोहतु॥ ११

मनुने पूछा—इव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्ण वेदविद्) भगवन्! सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जैसी विधि बतलायी गयी है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ १॥

मत्स्यभगवान् कहा—(राजन्!) जिस पुरुषकी राशिपर ग्रहणका प्लावन (लगाना) होता है, उसके लिये मन्त्र और औषधके विधानपूर्वक स्नान बतला रहा हूँ। ऐसे मनुष्यको चाहिये कि चन्द्र-ग्रहणके अवसरपर चार ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर श्वेत पुष्प और चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। ग्रहणके पूर्व ही औषध आदिको एकत्र कर ले। फिर छिद्ररहित चार कलशोंकी, उनमें समुद्रकी भावना करके स्थापना करे। फिर उनमें सप्तमृत्तिका—हाथीसार, घुड़शाल, वल्मीक (बल्मोट-दियाँड़), नदीके संगम, सरोवर, गोशाला और राजद्वारसे मिट्टी लाकर डाल दे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें पञ्चगव्य, शुद्ध मुक्ताफल, गोरोचन, कमल, शङ्ख, पञ्चरत्न, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थ-जल, सरसों, रजदन्त (एक ओषधिविशेष), कुमुद (कोइयाँ), खस, गुग्गुल—यह सब डालकर उन कलशोंपर देवताओंका आवाहन करे। (आवाहनका मन्त्र इस प्रकार है—) ‘यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदियाँ, नद और जलप्रद तीर्थ यहाँ पधारें।’ (इसके बाद प्रार्थना करे—) ‘जो देवताओंके स्वामी माने गये हैं तथा जिनके एक हजार नेत्र हैं, वे वज्रधारी इन्द्रदेव मेरी ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो समस्त देवताओंके मुखस्वरूप, सात ज्वालाओंसे युक्त और अतुल कान्तिवाले हैं, वे अग्निदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न हुई मेरी पीडाका विनाश करें। जो समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं तथा महिष जिनका वाहन है, वे धर्मस्वरूप यम चन्द्र-ग्रहणसे उद्भूत हुई मेरी पीडाको मिटायें।

रक्षोगणाधिपः साक्षात् प्रलयानलसंनिभः ।  
खड्गहस्तोऽतिभीमश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥ १२  
नागपाशधरो देवः साक्षात्मकरवाहनः ।  
स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ १३  
प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्णमृगप्रियः ।  
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां पीडामत्र व्यपोहतु ॥ १४  
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।  
चन्द्रोपरागकलुषं धनदो मे व्यपोहतु ॥ १५  
योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।  
चन्द्रोपरागजां पीडां विनाशयतु शङ्करः ॥ १६  
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
ब्रह्मविष्वर्क्युक्तानि तानि पापं दहन्तु वै ॥ १७  
एवमामन्त्र्य तैः कुम्भैरभिषिक्तो गुणान्वितैः ।  
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।  
पूजयेद् वस्त्रगोदानैब्राह्मणानिष्ठदेवताः ॥ १८  
एतानेव ततो मन्त्रान् विलिखेत् करकान्वितान् ।  
वस्त्रपट्टेऽथवा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥ १९  
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ।  
ततोऽतिवाहयेद् वेलामुपरागानुगमिनीम् ॥ २०  
प्राइमुखः पूजयित्वा तु नमस्यान्निष्ठदेवताम् ।  
चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतगोदानमङ्गलः ।  
कृतस्त्रानाय तं पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २१  
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्त्रानं समाचरेत् ।  
न तस्य ग्रहजा पीडा न च बन्धुजनक्षयः ॥ २२ ।

जो राक्षसगणोंके अधीश्वर, साक्षात् प्रलयाग्निके सदृश भयानक, खड्गधारी और अत्यन्त भयंकर हैं, वे निर्वृति ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो नागपाश धारण करनेवाले हैं तथा मकर जिनका वाहन है वे जलाधीश्वर साक्षात् वरुणदेव मेरी चन्द्र-ग्रहणजनित पीडाको नष्ट करें। जो प्राणरूपसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, (तीव्रगामी) कृष्णमृग जिनका प्रिय वाहन है, वे वायुदेव मेरी चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाका विनाश करें' ॥ २—१४ ॥

'जो (नव) निधियोंके\* स्वामी तथा खड्ग, त्रिशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या त्रिशूलको) धारण करनेवाले हैं वे देवाधिदेव शङ्कर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीडाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं वे सभी मेरे (चन्द्र-ग्रहणजन्य) पापको भस्म कर दें।' इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर ब्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करे। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमल-दलपर अङ्कित करें, फिर पञ्चरत्नसे युक्त करवाको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माङ्गलिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा अङ्कित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे ॥१५—२१ ॥

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे

\* पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च—ये नौ निधिगण हैं।

परमां सिद्धिमाज्ञोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।  
 सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत्॥ २३  
 अधिकाः पद्मरागाः स्युः कपिलां च सुशोभनाम्।  
 प्रयच्छेच्च निशाम्पत्ये चन्द्रसूर्योपरागयोः॥ २४  
 य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्तलोके महीयते॥ २५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे चन्द्रादित्योपरागस्नानविधिर्नाम सप्तष्ठितमोऽध्यायः॥ ६७॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें चन्द्रादित्योपरागस्नान-विधि नामक सङ्गठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६७॥

पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पद्मराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहणस्नानकी विधि)-को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २२—२५॥

## अड़सठवाँ अध्याय

### सप्तमीस्त्रपन-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

किमुद्गेगाद्घुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते।  
 मृतवत्साभिषेकादिकार्येषु च किमिष्यते॥ १

श्रीभगवानुवाच

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन।  
 रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च॥ २

तद्विधाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम्।  
 सप्तमीस्त्रपनं नाम जनपीडाविनाशनम्॥ ३

बालानां मरणं यत्र क्षीरपाणां प्रदृश्यते।  
 तद्वद् वृद्धातुराणां च यौवने चापि वर्तताम्॥ ४

शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम्।  
 एतदेवाद्भुतोद्गेगचित्तभ्रमविनाशनम्॥ ५

नारदजीने पूछा—प्रभो! किसी आकस्मिक एवं वेगशाली कष्टके प्राप्त होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये तथा अद्भुत शान्तिके\* लिये कौन-सा ब्रत करना चाहिये? किस ब्रतके अनुष्ठानसे दरिद्रताका विनाश किया जा सकता है तथा जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं, उस मृतवत्सा स्त्रीके स्नान आदि कार्योंमें उसकी शान्तिके लिये किस ब्रतका विधान है?॥ १॥

श्रीभगवान् ने कहा—तपोधन! पूर्वजन्ममें किये हुए पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनोंकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं सदा कल्याणकारी सप्तमीस्त्रपन नामक ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ। यह लोगोंकी पीड़ाका विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमुँहे शिशुओं, वृद्धों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु देखी जाती है वहाँ उसकी शान्तिके लिये मैं इस ‘मृतवत्साभिषेक’ को बतला रहा हूँ। यही समस्त अद्भुत नामक उत्पातों, उट्टोगों और चित्तभ्रमका भी विनाशक है॥ २—५॥

\* सामवेदीय ‘अद्भुतब्राह्मण’ (ताण्डव २६) तथा अथर्वपरिशिष्ट ७२ में अद्भुत शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

भविष्यति च वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन।  
वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तमः ॥ ६  
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिम् यदा।  
कृतं नाम युगं तत्र हैहयान्वयवर्धनः।  
भविता नृपतिर्वारः कृतवीर्यः प्रतापवान् ॥ ७  
स सप्तद्वीपमखिलं पालयिष्यति भूतलम्।  
यावद्वृष्टसहस्राणि सप्तसप्तति नारद ॥ ८  
जातमात्रं च तस्यापि यावत् पुत्रशतं तथा।  
च्यवनस्य तु शापेन विनाशमुपयास्यति ॥ ९  
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्य वै सुतः।  
कुरुद्गन्नयनः श्रीमान् सम्भूतो नृपलक्षणैः ॥ १०  
कृतवीर्यस्तदाऽऽराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम्।  
उपवासैर्वैर्तैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद।  
पुत्रस्य जीवनायालमेतत् स्नानमवाप्यति ॥ ११  
कृतवीर्येण वै पृष्ठे इदं वक्ष्यति भास्करः।  
अशेषदुष्टशमनं सदा कल्पषनाशनम् ॥ १२

सूर्य उवाच

अलं क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप।  
भविष्यति चिरंजीवी किंतु कल्पषनाशनम् ॥ १३  
सप्तमीस्त्रपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै।  
जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि नारद।  
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते ॥ १४  
ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।  
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत् तां तिथिं बुधः।  
तद्वद् वृद्धातुराणां च कृत्यं स्यादितरेषु च ॥ १५  
गोमयेनानुलिपायां भूमावेकाग्निवत् तदा।  
तण्डुलै रक्तशालीयैश्चरुं गोक्षीरसंयुतम्।  
निर्वपेत् सूर्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः ॥ १६  
कीर्तयेत् सूर्यदैवत्यं सप्तार्चि च घृताहुतीः।  
जुहुयाद् रुद्रसूक्तेन तद्वद् रुद्राय नारद ॥ १७

तपोधन! जब वाराह-कल्प आयेगा, उसमें भी जब श्रेष्ठ वैवस्वत मनुका कार्यकाल होगा, उसमें जब पचोसवाँ कृतयुग आयेगा तब कृतवीर्य नामका एक प्रतापी एवं शूरवीर नरेश उत्पन्न होगा जो हैहयवंशकी वृद्धि करनेवाला होगा। नारद! वह सतहतर हजार वर्षोंतक सातों द्वीपोंकी समस्त पृथ्वीका पालन करेगा। उसके सौ पुत्र होंगे, परंतु महर्षि च्यवनके शापसे वे सभी जन्मते ही नष्ट हो जायेंगे। नारद! जब उसके सहस्र भुजाधारी, मृग-नेत्र-सरीखे नेत्रोंवाला, शोभाशाली एवं सम्पूर्ण राज-लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा तब राजा कृतवीर्य अपने उस पुत्रके दीर्घ जीवनकी प्रासिके निमित्त उपवास, व्रत तथा दिव्य वेद-सूक्तोंद्वारा सहस्रकिरणधारी सूर्यकी आराधना करके इस विशेष स्नान (स्नानव्रत)-को प्राप्त करेगा। उस समय कृतवीर्यद्वारा पूछे जानेपर भगवान् सूर्य अखिल दोषोंके शामक एवं पापनाशक इस व्रतको बतलायेंगे ॥ ६—१२ ॥

भगवान् सूर्य कहेंगे—नरेश्वर! अब तुम अधिक कष्ट मत सहन करो, तुम्हारा पुत्र चिरंजीवी होगा, किंतु सम्पूर्ण लोकोंके हितके हेतु मैं जिस पापनाशक सप्तमीस्त्रपन-व्रतका वर्णन करूँगा, उसका अनुष्ठान तुम्हें भी करना चाहिये। नारद! मृतवत्सा स्त्रीके नवजात शिशुके लिये सातवें महीनेमें अथवा शुक्लपक्षकी किसी भी सप्तमी तिथिको यह सारा कार्य प्रशस्त माना गया है। यदि उस तिथिको बालकका जन्म-नक्षत्र पड़ता हो तो बुद्धिमान् कर्ताको उस तिथिका त्याग कर देना चाहिये। उसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये भी किये जानेवाले कार्यमें इसका विचार करना आवश्यक है। व्रतारम्भमें व्रती ग्रहबल एवं ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर एकाग्रिक उपासककी भाँति गो-दुर्घटके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाये, फिर सूर्य और रुद्रको पृथक-पृथक् उनके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक वह हव्यान्न प्रदान करे। उस समय सूर्यसूक्तकी सात ऋचाओंका पाठ करे और अग्निमें घीकी सात आहुतियोंसे हवन करे। नारद! स्त्रके लिये भी उसी प्रकार

होतव्याः समिधश्शात्र तथैवार्कपलाशयोः ।  
 यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्योऽष्टशतं पुनः ॥ १८  
  
 व्याहृतिभिस्तथाॽऽज्येन तथैवाष्टशतं पुनः ।  
 हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मङ्गलं येन धीमता ॥ १९  
  
 विप्रेण वेदविदुषा विधिवद् दर्भपाणिना ।  
 स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान् कोणेषु शोभनाम् ॥ २०  
  
 पञ्चमं च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम् ।  
 स्थापयेदव्रणं कुम्भं समर्चेनाभिमन्त्रितम् ॥ २१  
  
 सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम् ।  
 सर्वान् सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्वितान् ।  
 पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥ २२  
  
 गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमाद्वद्गोकुलात् ।  
 संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत् ॥ २३  
 चतुर्विष्पि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ।  
 गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान् मन्त्रानुदीरयेत् ॥ २४  
  
 नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च ।  
 पूजिताभिर्यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः ।  
 सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥ २५  
  
 दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्रा च भामिनी ।  
 आदित्यश्वन्द्रमाः सार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः ॥ २६  
  
 सशक्ता लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।  
 ते ते चान्ये च देवौघाः सदा पान्तु कुमारकम् ॥ २७  
  
 मित्रः शनिवा हुतभुग् ये च बालग्रहाः क्वचित् ।  
 पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातुर्जनकस्य वै ॥ २८  
  
 ततः शुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता ।  
 सप्तकं पूजयेद् भक्त्या स्त्रीणामथ गुरुं पुनः ॥ २९  
  
 काञ्छनीं च ततः कुर्यात् ताम्रपात्रोपरिस्थिताम् ।  
 प्रतिमां धर्मराजस्य गुरुवे विनिवेदयेत् ॥ ३०

रुद्रसूक्तकी ऋचाओंका पाठ एवं उनके द्वारा हवन करना चाहिये । इस व्रतमें हवनके लिये मन्दार और पलाशकी समिधा होनी चाहिये । पुनः जौ और काले तिलद्वारा एक सौ आठ बार हवन करनेका विधान है । उसी प्रकार व्याहृतियों( भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्)-के उच्चारणपूर्वक एक सौ आठ बार धीकी आहुति देनी चाहिये । इस प्रकार हवन करके बुद्धिमान् ब्रती पुनः स्नान करे; क्योंकि इससे मङ्गलकी प्राप्ति होती है । तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा वेदीके चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये । पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे । उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धिनी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे । फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुर्वण डाल दे । इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वोषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे । फिर हाथीसार, घुड़शाल, विमवट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वारसे शुद्ध मिट्टी लाकर उन सभी कलशोंमें छोड़ दे ॥ १३—२३ ॥

तदनन्तर कार्यकर्ता ब्राह्मण रत्नगर्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोंका पाठ करे तथा सात ऐसी स्त्रियोंद्वारा, जो किसी अङ्गसे हीन न हों तथा जिनकी यथाशक्ति पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा पूजा की गयी हो, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृतवत्सा स्त्रीका अभिषेक कराये । (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) ‘यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवत्पुत्रा (जीवित पुत्रवाली) हो । सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो देव-समूह हैं, वे सभी इस कुमारकी सदा रक्षा करें । सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हों वे सभी इस बालकको तथा इसके मातापिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें ।’ अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे । पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमाको ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे ।

वस्त्रकाञ्चनरत्नौदैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः ।  
 पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद् वित्तशाळ्यविवर्जितः ॥ ३१  
 भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः ।  
 दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वृष्टशतं सुखी ॥ ३२  
 यत्किंच्छिदस्य दुरितं तत् क्षिप्तं वडवानले ।  
 ब्रह्मा रुद्रो वसुः स्कन्दो विष्णुः शक्रो हुताशनः ॥ ३३  
 रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा ।  
 एवमादीनि वाक्यानि वदन्तं पूजयेद् गुरुम् ॥ ३४  
 शक्तिः कपिलां दद्यात् प्रणम्य च विसर्जयेत् ।  
 चरुं च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशङ्करौ ॥ ३५  
 हुतशेषं तदाशनीयादादित्याय नमोऽस्त्विति ।  
 इदमेवाद्भुतोद्देगदुःस्वप्रेषु प्रशस्यते ॥ ३६  
 कर्तुर्जन्मदिनक्षर्त्त च त्यक्त्वा सम्पूजयेत् सदा ।  
 शान्त्यर्थं शुक्लसमम्यामेतत् कुर्वन् न सीदति ॥ ३७  
 सदानेन विधानेन दीर्घायुरभवन्नरः ।  
 संवत्सराणामयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ॥ ३८  
 पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्त्रपनं रविः ।  
 कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९  
 एतत् सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्त्रानमुत्तमम् ।  
 सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम् ॥ ४०  
 आरोग्यं भास्करादिच्छेद धनमिच्छेद्भुताशनात् ।  
 ईश्वराज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेजनार्दनात् ॥ ४१  
 एतम्भापातकनाशनं स्यात्  
 परं हितं बालविवर्धनं च ।  
 शृणोति यश्वैनमनन्यचेता-  
 स्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥ ४२

उसी प्रकार कृपणता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रक्षसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें धी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—‘यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था उसे बड़वानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों।’ इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके विदा कर दे। तत्पश्चात् मृतवत्सा स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हव्यानको ‘सूर्यदेवको नमस्कार है’—यह कहकर खा जाय। यही व्रत आश्वर्यजनक उद्विग्रता और दुःस्वप्र आदिमें भी प्रशस्त माना गया है॥ २४—३६॥

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये; क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सदा इस विधानके अनुसार इस व्रतका अनुष्ठान करता है वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कृतबीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्त्रपन-व्रतका विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार मैंने इस सप्तमीस्त्रपन-व्रतका, जो सर्वश्रेष्ठ, समस्त दोषोंको शान्त करनेवाला और बालकोंके लिये परम हितकारक है, समग्ररूपसे वर्णन कर दिया। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी)-से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बड़े-से-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको श्रवण करता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा मुनियोंका कथन है॥ ३७—४२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सप्तमीस्त्रपनव्रतं नामाष्टष्टितमोद्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सप्तमीस्त्रपन-व्रत नामक अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

## उनहत्तरवाँ अध्याय

### भीमद्वादशी-व्रतका विधान

मत्स्य उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्ठो महात्मना ।  
मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम् ॥ १

ब्रह्मोवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तमरेश्वर  
स्वल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम् ॥ २  
किमज्ञातं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज ।  
स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम् ॥ ३

मत्स्य उवाच

एवं पृष्ठः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः ।  
उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम् ॥ ४

ईश्वर उवाच

अस्माद् रथन्तरात् कल्पात् त्रयोविंशात् पुनर्यदा ।  
वाराहो भविता कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे ॥ ५  
वैवस्वताख्ये संजाते सप्तमे सप्तलोककृत् ।  
द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमं जगुः ॥ ६  
तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः ।  
भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥ ७  
द्वैपायनऋषिस्तद्वद् रौहिणेयोऽथ केशवः ।  
कंसादिर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ८  
पुरीं द्वारवतीं नाम साम्प्रतं या कुशस्थली ।  
दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः ।  
त्वष्टा ममाज्ञया तद्वत् करिष्यति जगत्पते ॥ ९  
तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः ।  
भार्याभिर्वृष्णिभिश्चैव भूभृद्भूरिदक्षिणैः ॥ १०  
कुरुभिर्देवगन्धर्वैरभितः कैटभार्दनः ।  
प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्मसंवर्धिनीषु च ॥ ११

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! प्राचीन रथन्तरकल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शंकर मन्दराचलपर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर प्रश्न किया ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको नीरोगता, अनन्त ऐश्वर्य और मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? महादेव! आपके लिये कुछ अज्ञात तो है नहीं, अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये अधोक्षज! आपकी कृपासे थोड़ी-सी तपस्याद्वारा इस लोकमें महान् फलकी प्राप्तिका क्या उपाय है? यह बतलाइये ॥ २-३ ॥

मत्स्यभगवान् कहा—ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत् की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले ॥ ४ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! इस तेर्ईसवें रथन्तरकल्पके पश्चात् जब पुनः वाराहकल्प आयेगा, तब उसके सातवें वैवस्वत नामक मङ्गलमय मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर अद्वाईसवें द्वापर नामक युगके अन्तमें सातों लोकोंके रचयिता देवाधिदेव जनार्दन भगवान् विष्णु वासुदेवरूपसे पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये अपनेको महर्षि द्वैपायन, रोहिणीनन्दन बलराम और केशवरूपसे तीन भागोंमें विभक्त करके अवतीर्ण होंगे। वे कष्टहारी केशव कंस आदि राक्षसोंके मदको चूर्ण करेंगे। शार्ङ्गधनुषधारी उन जगत्पतिके निवासके लिये मेरी आज्ञासे विश्वकर्मा द्वारवती (द्वारका) नामकी पुरीका निर्माण करेंगे, जो समस्त दिव्य भावोंसे युक्त होगी। वह इस समय कुशस्थली नामसे विख्यात है। वहीं कभी जब द्वारकाकी सभामें दानवराज कैटभके संहारक अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों, वृष्णिवंशी पुरुषों, प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजाओं, कौरवों और देव-गन्धर्वोंसे घिरे हुए बैठे रहेंगे और धर्मकी वृद्धि करनेवाली पौराणिक कथाएँ होती रहेंगी,

कथाने भीमसेनेन परिपृष्ठः प्रतापवान्।  
त्वया पृष्टस्य धर्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत्॥ १२

भविता स तदा ब्रह्मन् कर्ता चैव वृकोदरः।  
प्रवर्तकोऽस्य धर्मस्य पाण्डुपुत्रो महाबलः॥ १३

यस्य तीक्ष्णो वृको नाम जठरे हव्यवाहनः।  
मया दत्तः स धर्मात्मा तेन चासौ वृकोदरः॥ १४

मतिमान् दानशीलश्च नागायुतबलो महान्।  
भविष्यत्यजरः श्रीमान् कंदर्प इव रूपवान्॥ १५

धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीक्ष्णाग्नित्वादुपोषणे।  
इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः॥ १६

कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगदुरुः।  
अशेषयज्ञफलदमशेषाधविनाशनम्॥ १७

अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम्।  
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्।  
भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम्॥ १८

वासुदेव उवाच

यद्यष्टमीचतुर्दश्योद्दीप्तिशीष्वथ भारत।  
अन्येष्वपि दिनक्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम्॥ १९

ततः पुण्यां तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम्।  
उपोष्य विधिनानेन गच्छ विष्णोः परं पदम्॥ २०

माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत् तदा।  
घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ २१

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणाय च।  
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः॥ २२

वैकुण्ठायेति वै कण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे।  
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय वै।  
सर्वं नारायणस्यैवं सम्पूज्या बाहवः क्रमात्॥ २३

तब कथाकी समाप्तिपर भीमसेन प्रतापी श्रीकृष्णसे वैसा ही प्रश्न करेंगे, जो तुम्हरे द्वारा पूछा गया है और इस धर्मके रहस्यके भेदको प्रकट करनेवाला है। ब्रह्मन्! उस समय पाण्डुपुत्र महाबली भीमसेन इस धर्मके कर्ता एवं प्रवर्तक होंगे। उनके उदरमें मेरे द्वारा दिये गये वृक नामक तीक्ष्ण अग्निका निवास होगा, इसी कारण वे धर्मात्मा 'वृकोदर' नामसे विख्यात होंगे। वे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न, दानशील, दस हजार हाथियोंके सदृश बलशाली, महत्त्वयुक्त, जरारहित, लक्ष्मीवान् और कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली होंगे। भीमसेनके धर्मात्मा होनेपर भी उदरमें तीव्र अग्निके स्थित रहनेके कारण उपवासमें असमर्थ जानकर विश्वात्मा जगदुरु भगवान् वासुदेव उन्हें यह व्रत बतलायेंगे; क्योंकि यह सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ है। यह समस्त यज्ञोंका फलदाता, सम्पूर्ण पापोंका विनाशक, अखिल दोषोंका शामक, समस्त देवताओंद्वारा सम्मानित, सम्पूर्ण पवित्र पदार्थोंमें परम पवित्र, निखिल मङ्गलोंमें श्रेष्ठ मङ्गलरूप, भविष्यमें सर्वाधिक भव्य और पुरातनोंमें विशेष पुरातन है॥ ५—१८॥

**भगवान् वासुदेव कहेंगे—भारत!** यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी तिथियोंमें तथा अन्यान्य दिनों और नक्षत्रोंमें उपवास करनेमें असमर्थ हो तो मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ। उस दिन निम्राङ्कित विधिसे उपवास कर तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो। जिस दिन माघमासके शुक्लपक्षकी दशमी\* तिथि आये, उस दिन (ब्रतीको चाहिये कि) समस्त शरीरमें घी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। 'श्रीकृष्णाय नमः' कहकर दोनों चरणोंकी ओर 'सर्वात्मने नमः' कहकर मस्तककी पूजा करे। 'वैकुण्ठाय नमः' इस मन्त्रसे कण्ठकी ओर 'शङ्खिने नमः', 'चक्रिणे नमः', 'गदिने नमः', वरदाय नमः तथा 'सर्वं नारायणस्य' (सब कुछ नारायणका ही है) —ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्की बाहुओंकी पूजा करे॥ १९—२३॥

\* अन्य पुराणोंमें तथा एकादशीमाहात्म्य आदिमें ज्येष्ठ शुक्ल ११को निर्जला या भीमसेनी एकादशी अथवा द्वादशी कहा गया है।

दामोदरायेत्युदरं मेद्रं पञ्चशराय वै।  
 ऊरु सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ॥ २४  
 नमो नीलाय वै जड्हे पादौ विश्वसृजे नमः।  
 नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ॥ २५  
 नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः।  
 नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे।  
 विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत् ॥ २६  
 एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ।  
 गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैनानाविधैरपि ॥ २७  
 गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः।  
 सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः ॥ २८  
 न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः।  
 गृहीत्वा धावयेद् दन्तानाचान्तः प्रादुदङ्मुखः ॥ २९  
 ब्रूयात् सायंतनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ।  
 नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ॥ ३०  
 एकादश्यां निराहारः समध्यर्च्य च केशवम्।  
 रात्रिं च सकलां स्थित्वा स्नानं च पयसा तथा ॥ ३१  
 सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः।  
 सहैव पुण्डरीकाक्ष द्वादश्यां क्षीरभोजनम् ॥ ३२  
 करिष्यामि यतात्माहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे।  
 एवमुक्त्वा स्वपेद् भूमावितिहासकथां पुनः ॥ ३३  
 श्रुत्वा प्रभाते संजाते नदीं गत्वा विशाम्पते।  
 स्नानं कृत्वा मुदा तद्वत् पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥ ३४  
 उपास्य संध्यां विधिवत् कृत्वा च पितृतर्पणम्।  
 प्रणम्य च हृषीकेशं सप्तलोकैकमीश्वरम् ॥ ३५  
 गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद् बुधः।  
 दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद् विशांपते ॥ ३६

‘इसके बाद ‘दामोदराय नमः’ कहकर उदरका, ‘पञ्चशराय नमः’ इस मन्त्रसे जननेन्द्रियका, ‘सौभाग्यनाथाय नमः’ इससे दोनों जंघोंका, ‘भूतधारिणे नमः’ से दोनों घुटनोंका, ‘नीलाय नमः’ इस मन्त्रसे पिंडलियों (घुटनेसे नीचेके भाग)-का और ‘विश्वसृजे नमः’ इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् ‘देव्यै नमः’, ‘शान्त्यै नमः’, ‘लक्ष्म्यै नमः’, ‘श्रियै नमः’, पुष्ट्यै नमः, ‘तुष्ट्यै नमः’, ‘धृष्ट्यै नमः’, ‘हृष्ट्यै नमः’—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे। इसके बाद ‘विहङ्गनाथाय नमः’, ‘वायुवेगाय नमः’ ‘पक्षिणे नमः’, ‘विषप्रमाथिने नमः’—इन मन्त्रोंके द्वारा सदा गरुडकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे। फिर गौंके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे। भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरकी दाँतुन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे, फिर मुँह धोकर आचमन करे। सूर्यास्त होनेके बाद पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर सायंकालीन संध्या करे। उसके अन्तमें यह कहे—‘भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है। भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।’ (इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे) ॥ २४—३० ॥

दूसरे दिन एकादशीको निराहार रहकर भगवान् केशवकी पूजा करे और रातभर बैठा रहकर प्रातःकाल दूध या जलसे स्नान करे। फिर अग्निमें घीकी आहुति देकर प्रार्थना करे—‘पुण्डरीकाक्ष! मैं जितेन्द्रिय होकर द्वादशीको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ ही खीरका भोजन करूँगा। मेरा यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो।’ यह कहकर इतिहास-पुराणकी कथा सुननेके पश्चात् भूमिपर शयन करे। राजन्! सबेरा होनेपर जाकर नदीमें प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। पाखण्डियोंके संसर्गसे दूर रहे। विधिपूर्वक संध्योपासन करके पितरोंका तर्पण करे। फिर सातों लोकोंके एकमात्र अधीश्वर भगवान् हृषीकेशको प्रणाम करके बुद्धिमान् व्रती घरके सामने भक्तिपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये। राजन्! वह मण्डप दस अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिये।

चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद् वेदीमरिनिषूदन ।  
चतुर्हस्तप्रमाणं च विन्यसेत् तत्र तोरणम् ॥ ३७

आरोप्य कलशं तत्र दिक्पालान् पूजयेत् ततः ।  
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः ।  
तस्य धारां च शिरसा धारयेत् सकलां निशाम् ॥ ३८

तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत् ।  
अरनिपात्रं कुण्डं च कुर्यात् तत्र त्रिमेखलम् ॥ ३९

योनिवक्त्रं च तत् कृत्वा ब्राह्मणैः यवसर्पिषी ।  
तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत् तदा ॥ ४०

हुत्वा च वैष्णवं सम्यक् चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।  
निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामान्यस्य पातयेत् ॥ ४१

जलकुम्भान् महावीर्यं स्थापयित्वा त्रयोदश ।  
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलंकृतान् ॥ ४२

युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान् ।  
चतुर्भिर्बहूचैर्होमस्तत्र कार्यं उद्दृमुखैः ॥ ४३

रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः ।  
वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ।  
अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत् ॥ ४४

एवं द्वादश तान् विप्रान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।  
पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः ॥ ४५

वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाळ्यविर्जितः ।  
एवं क्षपातिवाह्या च गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥ ४६

उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु ।  
ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश ॥ ४७

गां वै दद्यात् कुरुश्रेष्ठ सौवर्णमुखसंयुताः ।  
पयस्विनीः शीलवतीः कांस्यदोहसमन्विताः ॥ ४८

रौप्यखुराः सवस्त्राश्च चन्दनेनाभिषेचिताः ।  
तास्तु तेषां ततो भक्त्या भक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान् ॥ ४९

शत्रुसूदन ! उसके भीतर चार हाथकी सुन्दर वेदी बनवाये । वेदीके ऊपर चार हाथका तोरण लगाये । फिर (सुदृढ़ खम्भोंके आधारपर) एक कलश रखे और दिक्पालोंकी पूजा करे, उसमें नीचेकी ओर (उड़दके दानेके बराबर) छेद कर दे । तदनन्तर उसे जलसे भेरे और स्वयं उसके नीचे काला मृगचर्म बिछाकर बैठ जाय । कलशसे गिरती हुई धाराको सारी रात अपने मस्तकपर धारण करे । उसी प्रकार भगवान् विष्णुके सिरपर दूधकी धारा गिराये । फिर उनके निमित्त एक कुण्ड बनवाये, जो हाथभर लंबा, उतना ही चौड़ा और उतना ही गहरा हो । उसके ऊपरी किनारेपर तीन मेखलाएँ बनवाये । उसमें यथास्थान योनि और मुखके चिह्न बनवाये । तदनन्तर ब्राह्मण (कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित कर) एकाग्निक उपासककी तरह जौ, घी और तिलोंका श्रीविष्णु-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा हवन करे । फिर गो-दुधसे बने हुए चरुका हवन करके विधिपूर्वक वैष्णवयागका सम्पादन करे । फिर कुण्डके मध्यमें मटरकी दालके बराबर मोटी घीकी धारा गिराये ॥ ३१—४१ ॥

महावीर्य ! फिर जलसे भेरे हुए तेरह कलशोंकी स्थापना करे । वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत होने चाहिये । उनके साथ उदुम्बर-पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है । वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण चारों ओरसे अरिष्टवर्गसहित वैष्णवसामका गान करते रहें । इस प्रकार उपर्युक्त बाहरों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अङ्गूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शश्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे । इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे । इस प्रकार गीत और माङ्गलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे । उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित) - को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे । कुरुश्रेष्ठ ! रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर (नित्यकर्मके पश्चात) मुखपर सोनेके पत्रसे विभूषित की हुई तेरह गौँएँ दान करनी चाहिये । वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सीधी हों । उनके खुर चाँदीसे मँडे हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो । गौँओंके साथ काँसेका दोहनपात्र भी होना चाहिये । गोदानके पश्चात् उन सभी ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे

कृत्वा वै ब्राह्मणान् सर्वानन्नैर्नाविधैस्तथा ।  
 भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत् ॥ ५०  
 अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः ।  
 प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ५१  
 शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः ।  
 यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः ॥ ५२  
 एवमुच्चार्य तान् कुम्भान् गाश्चैव शयनानि च ।  
 वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद् बुधः ॥ ५३  
 अभावे बहुशश्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् ।  
 शश्यां दद्याद् द्विजातेश्च सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ५४  
 इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत् ।  
 तद्दिनं नरशार्दूल य इच्छेद् विपुलां श्रियम् ॥ ५५  
 तस्मात् त्वं सत्त्वमालम्ब्य भीमसेन विमत्सरः ।  
 कुरु व्रतमिदं सम्यक् स्नेहात् तव मयेरितम् ॥ ५६  
 त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नामाख्यं भविष्यति ।  
 सा भीमद्वादशी होषा सर्वपापहरा शुभा ।  
 या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पञ्चते ॥ ५७  
 त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन्  
     कल्पे                  महावीरवरप्रधान ।  
 यस्याः                  स्मरन्                  कीर्तनमप्यशेषं  
     विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः          स्यात् ॥ ५८  
 कृत्वा                  च                  यामप्सरसामधीशा  
     वेश्या                  कृता                  ह्यन्यभवान्तरेषु ।  
 आभीरकन्यातिकुतूहलेन  
     सैवोर्वशी                  सम्प्रति                  नाकपृष्ठे ॥ ५९  
 जाताथवा                  वैश्यकुलोद्धवापि  
     पुलोमकन्या                  पुरुहूतपली ।  
 तत्रापि                  तस्याः                  परिचारिकेयं  
     मम प्रिया                  सम्प्रति                  सत्यभामा ॥ ६०

तृप्त करके स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे ॥४२—५०॥

पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों। श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं। मैं यदि इन दोनोंमें अन्तर न देखता होऊँ तो इस धारणासे मेरी आयु बढ़े तथा कल्याण हो।’ यह कहकर बुद्धिमान् ब्रती उन कलशों, गौओं, शश्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणके घर पहुँचवा दे। अधिक शश्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही सुसज्जित एवं सभी उपकरणोंसे सम्पन्न शश्या ब्राह्मणको दान करे। नरसिंह! जिसे विपुल लक्ष्मीकी अभिलाषा हो, उसे वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये। अतः भीमसेन! तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्यागकर इस ब्रतका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करो। (यह बहुत गुप्त ब्रत है, किंतु) स्लेहवश मैंने तुम्हें बता दिया है। वीर! तुम्हारे द्वारा इसका अनुष्ठान होनेपर यह ब्रत तुम्हरे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। इसे लोग ‘भीमद्वादशी’ कहेंगे। यह भीमद्वादशी सब पापोंको नाश करनेवाली और शुभकारिणी होगी। प्राचीन कल्पोंमें इस ब्रतको ‘कल्याणिनी ब्रत’ कहा जाता था। महान् वीरोंमें श्रेष्ठ वीर भीमसेन! इस वाराहकल्पमें तुम इस ब्रतके सर्वप्रथम अनुष्ठानकर्ता बनो। इसका स्मरण और कीर्तनमात्र करनेसे मनुष्यका सारा पाप नष्ट हो जाता है और वह देवताओंका राजा इन्द्र बन जाता है ॥५१—५८॥

स्नातः पुरा मण्डलमेष तद्वत्  
तेजोमयं वेदशरीरमाप ।  
अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्वान्  
सहस्रधारेण सहस्ररश्मिः ॥ ६१  
इदमेव कृतं महेन्द्रमुख्यै-  
र्वसुभिर्देवसुरारिभिस्तथा तु ।  
फलमस्य न शक्यतेऽभिवकुं  
यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः ॥ ६२  
कलिकलुषविदारिणीमनन्ता-  
मिति कथयिष्यति यादवेन्द्रसूनुः ।  
अपि नरकगतान् पितृनशेषा-  
नलमुद्घर्तुभिर्हैव यः करोति ॥ ६३  
य इदमधविदारणं शृणोति  
भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः ।  
तिथिमिह सकलार्थभाङ्गनेन्द्र-  
स्तव चतुरानन साम्यतामुपैति ॥ ६४  
कल्याणिनी नाम पुरा बभूव  
या द्वादशी माघदिनेषु पूज्या ।  
सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्य-  
त्यनन्तपुण्यानघ भीमपूर्वा ॥ ६५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भीमद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भीमद्वादशी-व्रत नामक उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६९ ॥

वही इस समय मेरी प्रिया सत्यभामा है। पूर्वकालमें इस कल्याणमयी तिथिको सहस्र किरणधारी सूर्यने हजारों धाराओंसे स्नान किया था, इसी कारण उन्हें उस प्रकारका तेजोमय मण्डल और वेदमय शरीर प्राप्त हुआ है। महेन्द्र आदि देवताओं, वसुओं तथा असुरोंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया है। यदि एक मुखमें दस हजार करोड़ जिह्वाएँ हों तो भी इसके फलका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५९—६२ ॥

ब्रह्मन्! कलियुगके पापोंको नष्ट करनेवाली एवं अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस कल्याणमयी तिथिकी महिमाका वर्णन यादवराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे करेंगे। जो इसके व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंका भी यह उद्धार करनेमें समर्थ है। चतुरानन! जो अत्यन्त भक्तिके साथ इस पापनाशक व्रतकी कथाको सुनता तथा दूसरोंके उपकारके लिये पढ़ता है, वह इस लोकमें जनताका स्वामी और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका भागी हो जाता है तथा परलोकमें आपकी समताको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकल्पमें जो माघमासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी ‘भीमद्वादशी’ के नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ६३—६५ ॥

## सत्तरवाँ अध्याय

पण्यस्त्री-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ।  
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः ।  
पण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु घोडश ।  
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २  
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले ।  
पुष्पितोपवने फुल्लकहारसरसस्तटे ॥ ३  
निर्भरं सह पत्नीभिः प्रसक्ताभिरलङ्घतः ।  
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्भवः ।  
कुरञ्जनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४  
गच्छन् समीपमार्गेण साम्बः परपुरञ्जयः ।  
साक्षात् कन्दर्पस्त्रपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५  
अनञ्जशरतसाभिः साभिलाषमवेक्षितः ।  
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६  
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ।  
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः ।  
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥ ७  
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् ।  
ताभिः शापाभितसाभिर्भर्गवान् भूतभावनः ॥ ८  
उत्तारभूतं दाशत्वं समुद्राद ब्राह्मणप्रियः ।  
उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन्! मैं पुराणोंमें सभी वर्णों और आश्रमोंके सदाचारकी उत्पत्ति तथा धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंको तो सुन चुका, अब मैं पण्यस्त्रियों (मूल्यद्वारा खरीदी जानेवाली स्त्रियों)-के समुचित आचारको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ\* ॥ १ ॥

भगवान् शंकरने कहा—कमलोद्भव ब्रह्मन्! उसी द्वापरयुगमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र पत्रियाँ होंगी। एक बार वसन्त-ऋतुमें वे सभी नारियाँ खिले हुए पुष्पोंसे सुशोभित वनमें उत्फुल्ल कमल-पुष्पोंसे परिपूर्ण एक सरोवरके तटपर जायेंगी। उस समय कोकिल कूज रहे होंगे, भ्रमर-समूह अपनी गुंजार चतुर्दिक् बिखेर रहे होंगे तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन बह रहा होगा। इसी समय वे निश्चिन्त रूपसे एकत्र होकर जलपान आदि कार्योंमें लीन होंगी। उस समय यदुकुलके उद्वाहक विश्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके साथ वहाँ भ्रमण करेंगे। उसी समय शत्रु-नगरीको जीतनेवाले, अलंकारोंसे सुशोभित श्रीमान् साम्ब, जिनके नेत्र मृगनेत्रसरीखे होंगे, जिनका मस्तक मालतीकी मालासे सुशोभित होगा, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा रूपसे साक्षात् कामदेवके समान होंगे, उस सरोवरके समीपवर्ती मार्गसे जा निकलेंगे। उन्हें देखकर वे सभी (स्त्रियाँ) रागभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगेंगी। तब जगदीश्वर श्रीकृष्ण ध्यान-दृष्टिसे सारा वृत्तान्त जानकर उन्हें शाप दे देंगे—‘चूँकि तुमलोगोंने मुझसे विश्वासघात किया; कामलोलुपतावश ऐसा जघन्य कार्य किया है, इसलिये चोर तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे।’ तत्पश्चात् शापसे संतप्त हुई उन स्त्रियोंद्वारा प्रसन्न किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण जो अनन्तात्मा, ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा प्राणियोंको भवसागरसे पार करनेवाले कर्णधार हैं, उन्हें भविष्यमें

\* इस अध्यायमें कृपालु भगवान्द्वारा—‘मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यन्ति परां गतिम्॥ (गीता ९। ३२)—के भाव, पापयोनिकी व्याख्या तथा उनके कल्याणकी पद्धति निर्दिष्ट हुई हैं। यह अध्याय पद्म० खं० २३। ७४—१४६ तथा भविष्य० ४। १२०। १—७३ तकमें तो ज्यों-का-त्यों आता ही है।

भवतीनामृषिदाल्भ्यो यद् ब्रतं कथयिष्यति ।  
तदेवोत्तराणायालं दासीत्वेऽपि भविष्यति ।  
इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १०  
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते ।  
निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११  
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चैररपि जितेऽर्जुने ।  
हतासु कृष्णपत्रीषु दाशभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२  
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतसासु चतुर्मुख ।  
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥ १३  
तास्तमध्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ।  
लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४  
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् ।  
भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५  
दिव्यभावां तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ।  
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् ।  
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥ १६

स्त्रिय ऊचुः

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात् ।  
स्वधर्मच्यवनेऽस्माकमस्मिन् त्वं शरणं भव ॥ १७  
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता ।  
कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥ १८  
वेश्यानामपि यो धर्मस्तं नो ब्रूहि तपोधन ।  
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्वैकितायनः ॥ १९

दाल्भ्य उवाच

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे ।  
भवतीनां च सर्वासां नारदोऽभ्याशमागतः ॥ २०

इस प्रकार कल्याणकारी मार्गका उपदेश करेंगे—‘महर्षि दाल्भ्य तुमलोगोंको जो ब्रत बतलायेंगे, वही दासीत्वावस्थामें भी तुमलोगोंका उद्धार करनेमें समर्थ होगा।’ यों कहकर द्वारकाधीश वहाँसे चले जायेंगे। चतुर्मुख! इसके बहुत दिन बाद जब श्रीभगवान्द्वारा पृथ्वीका भार दूर करने, मौसलयुद्ध समाप्त होने—मूसलद्वारा यदुवंशियोंके विनाश होने, भगवान् श्रीकेशवके वैकुण्ठ पधार जाने तथा यदुकुलके वीरोंसे शून्य हो जानेपर दस्युगण अर्जुनको पराजितकर श्रीकृष्णकी पत्रियोंका अपहरण कर लेंगे और उन्हें अपनी पत्नी बना लेंगे, तब अपनी दुर्गतिसे दुःखी हुई वे सभी समुद्रमें निवास करेंगी। उसी समय महान् तपस्वी योगात्मा महर्षि दाल्भ्य वहाँ आयेंगे। तब वे ऋषिकी अर्धद्वारा पूजा करके बारंबार उनके चरणोंमें प्रणिपात करेंगी और आँखोंमें आँसू भरकर अनेकों प्रकारसे विलाप करेंगी। उस समय उनको प्रचुर भोगोंका, दिव्य पुष्पमाला और अनुलेपका, अनन्त एवं अपराजित जगदीश्वर पतिका, दिव्य भावोंसे संयुक्त द्वारकापुरीका, नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित गृहोंका, द्वारकावासियोंका और देवरूपी सभी कुमारोंका स्मरण हो रहा होगा। तब वे मुनिके समक्ष खड़ी होकर इस प्रकार प्रश्न करेंगी ॥ २—१६ ॥

स्त्रियाँ कहेंगी—भगवन्! डाकुओंने बलपूर्वक (हमलोगोंका अपहरण करके) अपने वशीभूत कर लिया है। इस प्रकार हम सभी अपने धर्मसे च्युत हो गयी हैं। अब इस विषयमें आप हमलोगोंके आश्रयदाता बनें। ब्रह्मन्! इसके लिये बुद्धिमान् श्रीकेशवने पहले ही आपको आदेश दे दिया है। पता नहीं, किस घोर पाप-कर्मके कारण जगदीश्वर श्रीकृष्णका संयोग पाकर भी हमलोग कुधर्ममें आ पड़ी हैं। इसलिये तपोधन! पण्यस्त्रियोंके लिये भी जो धर्म कहे गये हैं, उन्हें हमें बतलाइये। उनके द्वारा यों पूछे जानेपर चेकितायन महर्षिके पुत्र दाल्भ्य उन्हें सारा वृत्तान्त बतलायेंगे ॥ १७—१९ ॥

दाल्भ्य कहते हैं—नारियो! पूर्वकालमें तुमलोग अप्सराएँ थीं और सब-की-सब अग्निकी कन्याएँ थीं। एक बार जब तुमलोग मानस-सरेवरमें जलक्रीडाद्वारा मनोरञ्जन कर रही थीं, उसी समय तुमलोगोंके निकट नारदजी आ पहुँचे।

हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा ।  
 अप्रणाम्यावलेपेन परिपृष्ठः स योगवित् ।  
 कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१  
 तस्माद् वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत् पुरा ।  
 शश्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२  
 सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद् द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ।  
 भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ २३  
 यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ।  
 परिपृष्ठोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति ।  
 चौरैरपहताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्यथ ॥ २४  
 एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः ।  
 वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः ।  
 इदानीमपि यद् वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः ॥ २५  
 पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः ।  
 दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः ॥ २६  
 तेषां ब्रातसहस्राणि शतान्यपि च योषिताम् ।  
 परिणीतानि यानि स्युर्बलाद् भुक्तानि यानि वै ।  
 तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः ॥ २७  
 इन्द्र उवाच  
 वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे ।  
 भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च ॥ २८  
 राजानः स्वामिनस्तुल्याः सुता वापि च तत्समाः ।  
 भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तिः ॥ २९  
 यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा ।  
 निधनेनोपचार्यो वः स तदान्यत्र दाम्भिकात् ॥ ३०  
 देवतानां पितृणां च पुण्याहे समुपस्थिते ।  
 गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि स्वशक्तिः ।  
 ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च ॥ ३१  
 यच्चाप्यन्यद् व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः ।  
 अविचारेण सर्वाभिरनुष्टेयं च तत् पुनः ॥ ३२  
 संसारोत्तारणायालमेतद् वेदविदो विदुः ।

उस समय तुमलोग गर्ववश उन्हें प्रणाम न कर उन योगवेत्तासे इस प्रकार प्रश्न कर बैठों—‘देवर्षे! भगवान् नारायण किस प्रकार हमलोगोंके पति हो सकते हैं, इसका उपाय बतलाइये।’ उस समय तुमलोगोंको नारदजीसे वरदान और शाप दोनों प्राप्त हुए थे। (उन्होंने कहा था—) ‘यदि तुमलोग चैत्र और वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन स्वर्णनिर्मित उपकरणोंसहित दो शश्याएँ प्रदान करोगी तो निश्चय ही दूसरे जन्ममें भगवान् नारायण तुमलोगोंके पति होंगे। साथ ही सुन्दरता और सौभाग्यके अभिमानवश जो तुमलोगोंने मुझे बिना प्रणाम किये ही मुझसे प्रश्न किया है, इस कारण तुमलोगोंका उनसे शीघ्र ही वियोग भी हो जायगा तथा डाकू तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे और तुम सभी कुर्धमको प्राप्त हो जाओगी।’ इस प्रकार नारदजी एवं बुद्धिमान् भगवान् केशवके शापसे तुम सभी कामसे मोहित होकर कुर्धमको प्राप्त हो गयी हो। सुन्दरियो! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे भी तुमलोग ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें घटित हुए सैकड़ों देवासुर-संग्रामोंमें देवताओंने समय-समयपर बहुत-से दानवों, असुरों, दैत्यों और राक्षसोंको मार डाला था, उनकी जो सैकड़ों-हजारों यूथ-की-यूथ पतियाँ थीं, जिन्हें अन्य राक्षसोंने बलपूर्वक (इसी प्रकार) व्याह लिया था, उन सबसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवराज इन्द्रने कहा ॥ २०—२७ ॥

इन्द्र बोले—भक्तिमती सुन्दरियो! तुमलोगोंको दाम्भिकोंसे सदा दूर रहना चाहिये। तुमलोगोंको देवताओं एवं पितरोंके पुण्य-पर्व आनेपर अपनी शक्तिके अनुसार गौ, पृथ्वी, स्वर्ण और अन्न आदिका दान करना तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त मैं तुमलोगोंको जिस दूसरे व्रतका उपदेश दे रहा हूँ उसका भी बिना आगा-पीछा सोचे तुम सभीको अनुष्ठान करना चाहिये। यह व्रत तुमलोगोंका संसारसे उद्धार करनेमें समर्थ है। इसे वेदवेत्तालोग ही जानते हैं ॥ २८—३२ ॥

यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्टो वाथ पुनर्वसुः ॥ ३३  
भवेत् सर्वोषधीस्नानं सम्यङ्ग्नारी समाचरेत्।  
तदा पञ्चशरस्यापि संनिधातृत्वमेष्यति ।  
अर्चयेत् पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥ ३४  
कामाय पादौ सम्पूज्य जड्हे वै मोहकारिणे ।  
मेद्रं कंदर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः ॥ ३५  
नाभिं सौख्यसमुद्राय रामाय च तथोदरम्।  
हृदयं हृदयेशाय स्तनावाहादकारिणे ॥ ३६  
उत्कण्ठायेति वै कण्ठमास्यमानन्दकारिणे ।  
वामाङ्गं पुष्टचापाय पुष्टबाणाय दक्षिणम् ॥ ३७  
मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्धजम्।  
सर्वात्मने च सर्वाङ्गं देवदेवस्य पूजयेत् ॥ ३८  
नमः शिवाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च ।  
गदिने पीतवस्त्राय शङ्खक्रधराय च ॥ ३९  
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः ।  
सर्वशान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै ॥ ४०  
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे ।  
एवं सम्पूज्य देवेशमनङ्गात्मकमीश्वरम्।  
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च कामिनी ॥ ४१  
तत आहूय धर्मज्ञ ब्राह्मणं वेदपारगम्।  
अव्यङ्गावयवं पूज्य गन्धपुष्टार्चनादिभिः ॥ ४२  
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम्।  
तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥ ४३  
यथेष्टाहारयुक्तं वै तमेव द्विजसत्तमम्।  
रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य तम् ॥ ४४  
यद् यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद् विलासिनी ।  
सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत् स्मितभाषिणी ॥ ४५  
एवमादित्यवारेण सर्वमेतत् समाचरेत्।  
तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रयोदश ॥ ४६  
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भामिनी ।  
विप्रायोपस्करैर्युक्तां शश्यां दद्यात् विलक्षणाम् ॥ ४७  
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम्।  
प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥ ४८

जब रविवारको हस्त, पुष्ट अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आवे तो स्त्रीको सर्वोषधिमिश्रित जलसे भलीभाँति स्नान करना उचित है। ऐसा करनेसे उसे देवताकी संनिकटता प्राप्त होगी। फिर नामोंका कीर्तन करते हुए भगवान् पुण्डरीकाक्षकी यों अर्चना करनी चाहिये—‘कामाय नमः’से दोनों चरणोंका, ‘मोहकारिणे नमः’से जड्हाओंका, ‘कंदर्पनिधये नमः’से जननेन्द्रियका, ‘प्रीतिमते नमः’से कटिका, ‘सौख्यसमुद्राय नमः’से नाभिका, ‘रामाय नमः’से उदरका, ‘हृदयेशाय नमः’से हृदयका, ‘आहादकारिणे नमः’से दोनों स्तनोंका, ‘उत्कण्ठाय नमः’से कण्ठका, ‘आनन्दकारिणे नमः’-से मुखका, ‘पुष्टचापाय नमः’से वामाङ्गका, ‘पुष्टबाणाय नमः’से दक्षिणाङ्गका, ‘मानसाय नमः’-से ललाटका, ‘विलोलाय नमः’से केशोंका और ‘सर्वात्मने नमः’से देवाधिदेव पुण्डरीकाक्षके सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये। पुनः ‘शिवाय नमः’, ‘शान्ताय नमः’, ‘पाशाङ्कुशधराय नमः’, ‘गदिने नमः’, ‘पीतवस्त्राय नमः’, ‘शङ्खक्रधराय नमः’, ‘नारायणाय नमः’, ‘कामदेवात्मने नमः’से भगवान् विष्णुकी पूजा करके ‘सर्वशान्त्यै नमः’, ‘प्रीत्यै नमः’, ‘रत्यै नमः’, ‘श्रियै नमः’, ‘पुष्ट्यै नमः’, ‘तुष्ट्यै नमः’, ‘सर्वार्थसम्पदे नमः’से लक्ष्मीका भी पूजन करनेका विधान है। इस प्रकार ब्रतिनी नारी चन्दन, पुष्टमाला, धूप और नैवेद्य आदिसे कामदेवस्वरूप देवेश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तत्पश्चात् वह सुडौल अङ्गोंवाले, धर्मज्ञ एवं वेदज्ञ ब्राह्मणको बुलाकर चन्दन, पुष्ट आदि पूजन-सामग्रीद्वारा उनकी पूजा करे और धीसे भरे हुए पात्रके साथ एक सेर अगहनी चावल उस ब्राह्मणको दान करे और कहे—‘माधव मुझपर प्रसन्न हों।’ फिर वह विलासिनी नारी उस द्विजवरको यथेष्ट भोजन करावे ॥ ३३—४५ ॥

इस प्रकार रविवारसे प्रारम्भ करके यह सब कार्य करते रहना चाहिये। एक सेर चावलका दान तो तेरह मासतक करनेका विधान है। तेरहवाँ महीना आनेपर उस स्त्रीको चाहिये कि उपर्युक्त ब्राह्मणको समस्त उपकरणोंसे युक्त एक ऐसी विलक्षण शश्या प्रदान करे, जो गद्दा, चादर और विश्रामहेतु बने हुए तकियेसे युक्त एवं सुन्दर हो तथा उसके साथ दीपक, जूता, छाता, खड़ाऊँ और

सपलीकमलङ्कृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ।  
 सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्भूरिमाल्यानुलेपनैः ॥ ४९  
 कामदेवं सपलीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् ।  
 ताप्रपात्रासनगतं हेमनेत्रपटावृतम् ॥ ५०  
 सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् ।  
 दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् ॥ ५१  
 यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा ।  
 तथैव सर्वकामासिरस्तु विष्णो सदा मम ॥ ५२  
 यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव ।  
 तथा ममापि देवेश शरीरं स्वीकुरु प्रभो ॥ ५३  
 तथा च काञ्छनं देवं प्रतिगृह्णन् द्विजोत्तमः ।  
 क इदं कस्मादादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत् ॥ ५४  
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुंगवम् ।  
 शश्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥ ५५  
 ततः प्रभृति यो विप्रो रत्यर्थं गृहमागतः ।  
 स मान्यः सूर्यवारे च स मन्त्रव्यो भवेत् तदा ॥ ५६  
 एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान् ।  
 तर्पयेत यथाकामं प्रोष्ठितेऽन्यं समाचरेत् ॥ ५७  
 तदनुज्ञया रूपवान् यावदभ्यागतो भवेत् ।  
 आत्मनोऽपि यथाविघ्नं गर्भभूतिकरं प्रियम् ॥ ५८  
 दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः ।  
 साचारानष्टपञ्चाशद् यथाशक्त्या समाचरेत् ॥ ५९  
 एतद्विद्व कथितं सम्यग् भवतीनां विशेषतः ।  
 अधर्मोऽयं ततो न स्याद् वेश्यानामिह सर्वदा ॥ ६०  
 पुरुहूतेन यत् प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया ।  
 तदिदं साम्प्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते ॥ ६१  
 सर्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकम् ।  
 कल्याणीनां च कथितं तत् कुरुध्वं वराननाः ॥ ६२  
 करोति याशेषमखण्डमेतत्  
 कल्याणिनी माधवलोकसंस्था ।  
 सा पूजिता देवगणैरशेषै-  
 रानन्दकृत् स्थानमुपैति विष्णोः ॥ ६३

आसनी भी हो । उस समय उस सपलीक ब्राह्मणको महीन वस्त्र, सोनेकी जंजीर, अँगूठी, कड़ा, अधिकाधिक पुष्पमाला और चन्दनसे अलंकृत करके गुड़से भेरे हुए कलशके ऊपर स्थापित ताप्रपात्रके आसनपर सपलीक कामदेवकी मूर्तिको रख दे, उसे स्वर्णनिर्मित नेत्राच्छादनसे ढक दे । उसके निकट कांसेका पात्र और गत्रा भी रख दे । फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करके समग्र उपकरणोंसहित उस मूर्तिका तथा एक दुधारू गौका उस ब्राह्मणको दान करे । (दानका मन्त्र इस प्रकार है—) ‘केशव! जिस प्रकार लक्ष्मी आपके शरीरसे विलग होकर कहीं अन्यत्र नहीं जातीं, देवेश्वर प्रभो! उसी प्रकार आप मेरे शरीरको भी स्वीकार कर लें।’ स्वर्णमय कामदेवकी मूर्तिको ग्रहण करते समय वे द्विजवर—‘कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्’ इत्यादि—(वाजस० सं० ७। ४८) इस वैदिक मन्त्रका उच्चारण करें । तदनन्तर वह स्त्री उन द्विजवरकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे और शश्या, आसन आदि दानकी सभी वस्तुएँ उनके घर भिजवा दे । इस प्रकार इस दैवकर्मको अनुरागपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक अद्वावन बार करना चाहिये । विशेषतः तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन किया है । ऐसा करनेसे पण्यस्त्रियोंको इस लोकमें कभी अधर्मका भागी नहीं होना पड़ेगा ॥ ४६—६० ॥

पूर्वकालमें इन्द्रने दानव-पत्नियोंके प्रति जिस व्रतका वर्णन किया था, वही सब इस समय तुमलोगोंको भी करना उचित है । सुन्दरियो! कल्याणी स्त्रियोंके समस्त पापोंको शान्त करनेवाले एवं अनन्त फलदायक जिस व्रतका मैंने वर्णन किया है, उसका तुमलोग अवश्य पालन करो । जो कल्याणमयी नारी इस व्रतका पूरा-पूरा अखण्डरूपसे पालन करती है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थित होती है और अखिल देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णुके आनन्ददायक स्थानको प्राप्त होती है ॥ ६१—६३ ॥

श्रीभगवानुवाच

तपोधनः सोऽप्यभिधाय चैवं  
तदा च तासां ब्रतमङ्गनानाम्।  
स्वस्थानमेष्टत्यनु वै समस्ताः  
ब्रतं चरिष्यन्ति च वेदयोने ॥ ६४

इति श्रीमात्‌स्ये महापुराणेऽनङ्गदानब्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें अनङ्गदानब्रत नामक सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७० ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! इस प्रकार तपस्वी दाल्प्य उन स्त्रियोंसे वाराङ्गनाओंके ब्रतका वर्णन करके अपने स्थानको छले जायेंगे। उसके पश्चात् वे सभी उस ब्रतका अनुष्ठान करेंगी ॥ ६४ ॥

### इकहत्तरवाँ अध्याय

अशून्यशयन (द्वितीया)-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

भगवन् पुरुषस्येह स्त्रियाश्च विरहादिकम्।  
शोकव्याधिभयं दुःखं न भवेद् येन तद् वद ॥ १

श्रीभगवानुवाच

श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः।  
क्षीरार्णवे सप्तलीकः सदा वसति केशवः ॥ २  
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान् कामान् समश्रुते।  
गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम् ॥ ३  
अशून्यशयना नाम द्वितीया सम्प्रकीर्तिता।  
तस्यां सम्पूजयेद् विष्णुमेभिर्मन्त्रैर्विधानतः ॥ ४  
श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीधामन् श्रीपतेऽव्यय।  
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ॥ ५  
अग्रयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम।  
पितरो मा प्रणश्यन्तु मास्तु दाम्पत्यभेदनम् ॥ ६

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन्! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे पुरुषको पत्नीवियोग अथवा स्त्रीको पतिवियोग न हो तथा शोक एवं रोगका भय और दुःख न हो, वह ब्रत बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! श्रावणमासके कृष्ण-पक्षकी द्वितीया तिथिको मधुसूदनभगवान् केशव लक्ष्मीसहित सदा क्षीरसागरमें निवास करते हैं, अतः उस तिथिको जो मनुष्य भगवान् गोविन्दकी पूजा कर सात सौ कल्पोंतक फल देनेवाली गौ, पृथ्वी और सुवर्णका दान करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह द्वितीया अशून्यशयना\* नामसे प्रसिद्ध है; इस दिन विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन कर इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये—‘लक्ष्मीकान्त! आप श्रीवत्सको धारण करनेवाले, धन-सम्पत्तिके निधि और सौन्दर्यके अधीश्वर हैं। अविनाशी भगवन्! मेरा धर्म, अर्थ और कामको सिद्ध करनेवाला गृहस्थ-आश्रम कभी विनाशको न प्राप्त हो। पुरुषोत्तम! मेरे गृहमें अग्नियों और इष्ट देवताओंका कभी अभाव न हो, मेरे पितरोंका विनाश न हो और दाम्पत्य—पति-पत्नी (रूप-व्यवहार)—में कभी भेद-भाव न उत्पन्न हो।

\* इस ब्रतकी विस्तृत विधि वामनपुराणके १६ वें अध्यायमें है। पर यह वहाँ तथा पद्म, भविष्यादिमें कुछ अन्तरसे प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है।

लक्ष्म्या वियुज्यते देव न कदाचिद् यथा भवान्।  
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम्॥ ७

लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा।  
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन॥ ८

गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कीर्तयेत्।  
घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः॥ ९

एवं सम्पूज्य गोविन्दमशनीयात् तैलवर्जितम्।  
नक्तमक्षारलवणं यावत् तत् स्याच्चतुष्टयम्॥ १०

ततः प्रभाते संजाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम्।  
दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम्॥ ११

पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम् ।  
अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम्॥ १२

सोपथानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम्।  
तथाऽऽभरणधार्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम्॥ १३

अव्यङ्गाङ्गाय विग्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने।  
दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च॥ १४

तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः।  
पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद् भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्॥ १५

ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम्।  
प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत्॥ १६

एवं यस्तु पुमान् कुर्यादशून्यशयनं हरेः।  
वित्तशाळ्येन रहितो नारायणपरायणः॥ १७

न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते।  
नारी वा विधवा ब्रह्मन् यावच्चन्द्राकृतारकम्।  
न विरूपौ न शोकातौ दम्पती भवतः क्वचित्॥ १८

देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी स्त्री-सम्बन्ध कभी खण्डित न हो। वरदाता मधुसूदन! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, उसी तरह मेरी भी शय्या स्त्रीसे शून्य न हो।' इस प्रकार प्रार्थना कर गाने-बजानेके माझलिक शब्दोंके साथ-साथ देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो गीत-वाद्यके आयोजनमें असमर्थ हो, उसे घण्टाका शब्द कराना चाहिये; क्योंकि घण्टा समस्त बाजोंके समान माना गया है॥ २—९॥

इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी पूजा करके रातमें एक बार तेल और क्षार नमकसे रहित अन्नका भोजन करे। ऐसा भोजन तबतक करे, जबतक इस व्रतकी चार आवृत्ति न हो जाय (चार मासतक ऐसा ही भोजन करना चाहिये)। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर एक विलक्षण शय्याका भी दान करनेका विधान है। वह शय्या गद्दा, श्वेत चादर और विश्रामोपयोगी तकियेसे सुशोभित हो; उसपर भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित हो; उसके निकट दीपक, अन्नके पात्र, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर और आसन रखे गये हों; वह अभीष्ट सामग्रियोंसे युक्त हो, उसपर श्वेत पुष्प बिखेरे गये हों, वह नाना प्रकारके ऋतुफलोंसे सम्पन्न हो तथा अपनी शक्तिके अनुसार आभूषण और अन्न आदिसे समन्वित हो। इस प्रकार वह शय्या ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जिसका कोई अङ्ग विकृत न हो तथा जो विष्णु-भक्त, परिवारवाला, वेदज्ञ और आचरणसे पतित न हो। फिर उस शय्यापर द्विजदम्पतिको बैठाकर विधानके अनुसार उन्हें अलंकृत करे। उस समय पत्नीको भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंसे युक्त बर्तन दान करे और ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त देवाधिदेव विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमा जलपूर्ण घटके साथ निवेदित करे। (तत्पश्चात् ब्राह्मणको विदा कर ब्रत समाप्त करे)॥ १०—१६॥

ब्रह्मन्! इस प्रकार जो पुरुष श्रीहरिके अशून्यशयनव्रतका अनुष्ठान करता है, उसे कभी पत्नी-वियोग नहीं होता तथा सधवा अथवा विधवा नारी नारायणपरायण होकर कृपणता छोड़कर इसका अनुष्ठान करती है, वह दम्पति सूर्य-चन्द्रमाके स्थितिपर्यन्त न तो कभी शोकसे दुःखी होते हैं और न उनका रूप ही विकृत होता है। साथ ही

न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह।  
सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च।  
कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते ॥ १९ ॥

उनके पुत्र, पशु और धन आदिका विनाश नहीं होता। पितामह! अशून्यशयनब्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सात हजार सात सौ कल्पोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १७—१९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽशून्यशयनब्रतं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अशून्यशयनब्रत नामक इकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७१ ॥

## बहत्तरवाँ अध्याय

अङ्गारक-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

शृणु चान्यद् भविष्यं यद् रूपसम्पत्प्रदायकम्।  
भविष्यति युगे तस्मिन् द्वापरान्ते पितामह।  
पिप्पलादस्य संवादो युधिष्ठिरपुरःसरैः ॥ १ ॥  
वसन्तं नैमित्तारण्ये पिप्पलादं महामुनिम्।  
अभिगम्य तदा चैनं प्रश्नमेकं करिष्यति।  
युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो धर्मयुक्तस्तपोधनम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यं मतिर्थमें गतिस्तथा।  
अव्यङ्गता शिवे भक्तिवैष्णवो वा भवेत् कथम् ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच

तस्योत्तरमिदं ब्रह्मन् पिप्पलादस्य धीमतः।  
शृणुष्व यद् वक्ष्यति वै धर्मपुत्राय धार्मिकः ॥ ४ ॥

पिप्पलाद उवाच

साधु पृष्ठं त्वया भद्र इदानीं कथयामि ते।  
अङ्गारब्रतमित्येतत् स वक्ष्यति महीपतेः ॥ ५ ॥  
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।  
विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः ॥ ६ ॥  
प्रहादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्।  
रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद् भृगुनन्दनः ॥ ७ ॥  
साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव।  
तत् तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः ॥ ८ ॥

ईश्वरने कहा—पितामह! अब भविष्यमें घटित होनेवाले एक अन्य ब्रतके वृत्तान्तको सुनो, जो सुन्दरता और सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। उसी द्वापरयुगके अन्तमें युधिष्ठिर आदिके साथ महर्षि पिप्पलादका संवाद होगा। उस समय तपस्वी महामुनि पिप्पलादके नैमित्तारण्यमें निवास करते समय धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर उनके निकट जाकर एक प्रश्न करेंगे ॥ १-२ ॥

युधिष्ठिर पूछेंगे—नीरोगता, ऐश्वर्य, धर्ममें बुद्धि तथा गति, अव्यङ्गता (शरीरके सभी अङ्गोंकी पूर्णता) तथा शिव एवं विष्णुमें अनुपम भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? ॥ ३ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! (इस विषयमें) उन बुद्धिमान् पिप्पलादका वह उत्तर सुनो, जो वे धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिरसे कहेंगे ॥ ४ ॥

पिप्पलाद कहेंगे—भद्र! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है, अब मैं आपको इस अङ्गारब्रत-ब्रतको बतला रहा हूँ। यों कहकर वे मुनि राजा युधिष्ठिरसे इस ब्रतका (इस प्रकार) वर्णन करेंगे। महाराज युधिष्ठिर! इस विषयमें एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, जो विरोचन और बुद्धिमान् शुक्राचार्यके संवाद (रूप)-में है। एक बार प्रहादके षोडशवर्षीय पुत्र विरोचनको देखकर, जो अनुपम सौन्दर्यशाली और कान्तिमान् था, भृगुनन्दन शुक्राचार्य हँस पड़े और उससे बोले—‘महाबाहु विरोचन! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।’ उन्हें उस प्रकार हँसते देखकर देवशत्रु विरोचनने

ब्रह्मन् किमर्थमेतत् ते हास्यमाकस्मिकं कृतम् ।  
साधु साधिवति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे ॥ ९

तमेवंवादिनं शुक्र उवाच वदतां वरः ।  
विस्मयाद् व्रतमाहात्म्याद्वास्यमेतत् कृतं मया ॥ १०

पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः ।  
अथ तद्वीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः ॥ ११

भित्त्वा स सप्त पातालानदहत् सप्त सागरान् ।  
अनेकवक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलनभीषणः ॥ १२

वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः ।  
कृत्वासौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः ।  
त्रिजग्निर्दहन् भूयः शिवेन विनिवारितः ॥ १३

कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम् ।  
इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा ॥ १४

शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव ।  
प्रेक्षिष्ठन्ते जनाः पूजां करिष्यन्ति वरान्मम ॥ १५

अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज ।  
देवलोकेऽद्वितीयं च तव रूपं भविष्यति ॥ १६

ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्विने नराः ।  
रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति ॥ १७

एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत् कामरूपधृक् ।  
संजातस्तत्क्षणाद् राजन् ग्रहत्वमगमत् पुनः ॥ १८

स कदाचिद् भवांस्तस्य पूजार्घ्यादिकमुक्तमम् ।  
दृष्टवान् क्रियमाणं च शूद्रेण च व्यवस्थितः ॥ १९

तेन त्वं रूपवाङ्मातः सुरशत्रुकुलोद्ध्रह ।  
विविधा च रुचिर्जाता यस्मात् तव विदूरगा ॥ २०

विरोचन इति प्राहुस्तस्मात् त्वां देवदानवाः ।  
शूद्रेण क्रियमाणस्य व्रतस्य तव दर्शनात् ।  
ईदृशीं रूपसम्पत्तिं दृष्ट्वा विस्मितवानहम् ॥ २१

उनसे पूछा—‘ब्रह्मन्! आपने किस प्रयोजनसे यह आकस्मिक हास्य किया है और मुझे ‘साधु-साधु’ (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है? इसका कारण मुझे बतलाइये।’ इस प्रकार पूछनेपर विरोचनसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने कहा—‘व्रतके माहात्म्यसे आश्वर्यचकित होकर मैंने यह हास्य किया है। (उस प्रसङ्गको सुनो—) पूर्वकालमें दक्ष-यज्ञका विनाश करनेके लिये जब भयंकर मुखवाले त्रिशूलधारी भगवान् शंकर कुपित हो उठे, तब उनके ललाटसे पसीनेकी एक बूँद टपक पड़ी। वह स्वेदबिन्दु अनेकों मुखों, नेत्रों और दस सहस्र हाथ-पैरोंसे युक्त एक पुरुषाकारमें परिणत हो गया। वह प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर पुरुष वीरभद्रके नामसे विख्यात हुआ। उसने सातों पातालोंका भेदन कर सातों सागरोंको भस्म कर दिया। पुनः दक्ष-यज्ञका विध्वंस कर वह भूतलपर आ धमका और त्रिलोकीको जला डालनेके लिये उद्यत हुआ। यह देखकर शिवजीने उसे रोक दिया ॥ ५—१३॥

फिर उन्होंने उसे मना करते हुए कहा—‘वीरभद्र! तुमने दक्ष-यज्ञका विनाश तो कर ही दिया, अब तुम अपने इस लोक-दहनरूप क्रूर कर्मको बंद कर दो। मेरे वरदानसे तुम सभी ग्रहोंके लिये शान्ति-प्रदायक बनो और सर्वप्रथम स्थान ग्रहण करो। लोग तुम्हारा दर्शन और पूजन करेंगे। पृथ्वीनन्दन! तुम अङ्गारक नामसे ख्याति प्राप्त करोगे और देवलोकमें तुम्हारा अनुपम रूप होगा। जो मनुष्य तुम्हारा जन्मदिन चतुर्थी तिथि आनेपर तुम्हारी पूजा करेंगे उन्हें अनन्त सौन्दर्य, नीरोगता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी।’ शिवजीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला वीरभद्र तुरंत शान्त हो गया। राजन्! पुनः उसी क्षण (पृथ्वीसे) उत्पन्न होकर उसने ग्रहका स्थान प्राप्त कर लिया। असुरकुलोद्ध्रह! किसी समय शूद्रद्वारा व्यवस्थितरूपसे की जाती हुई उसकी अर्घ्य आदिसे सम्पत्र श्रेष्ठ पूजाको तुमने देख लिया था, इसी कारण तुम सुन्दररूपसे युक्त होकर पैदा हुए हो और तुम्हारी रुचि-प्रतिभा विभिन्न प्रकारके ज्ञानोंवाली और दूरगमिनी है। इसी कारण देवता और दानव तुम्हें विरोचन नामसे पुकारते हैं। शूद्रद्वारा किये जाते हुए व्रतके दर्शनसे प्राप्त हुई तुम्हारी इस प्रकारकी रूप-

साधु साधिवति तेनोक्तमहो माहात्म्यमुत्तमम्।  
पश्यतोऽपि भवेद् रूपमैश्वर्यं किमु कुर्वतः॥ २२  
यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य  
विनिन्द्यमानेन गवादिदानम्।  
आलोकितं तेन सुरारिगर्भं  
सम्भूतिरेषा तव दैत्य जाता॥ २३  
इश्वर उवाच

अथ तद् वचनं श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः।  
प्रहादनन्दनो वीरः पुनः पप्रच्छ विस्मितः॥ २४  
विरोचन उवाच  
भगवंस्तद् व्रतं सम्यक् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।  
दीयमानं तु यद् दानं मया दृष्टं भवान्तरे॥ २५  
माहात्म्यं च विधिं तस्य यथावद् वक्तुमर्हसि।  
इति तद्वचनं श्रुत्वा कविः प्रोवाच विस्तरात्॥ २६  
शुक्र उवाच

चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव।  
मृदा स्नानं तदा कुर्यात् पद्मरागविभूषितः॥ २७  
अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्रं जपस्तिष्ठेदुद्दिमुखः।  
शूद्रस्तूष्णीं स्मरन् भौममास्ते भोगविवर्जितः॥ २८  
अथास्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत्।  
प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताभिः समंततः॥ २९  
अभ्यच्छाभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम्।  
कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते॥ ३०  
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः।  
तण्डुलै रक्तशालीयैः पद्मरागैश्च संयुताः॥ ३१  
चतुष्कोणेषु तान् कृत्वा फलानि विविधानि च।  
गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत्॥ ३२  
सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथाच्च  
रौप्यैः खुरैः कांस्यदुहां सवत्साम्।  
धुरंधरं रक्तखुरं च सौम्यं  
धान्यानि सप्तसाम्बरसंयुतानि॥ ३३

सम्पत्तिको देखकर मैं आश्वर्यचकित हो गया। इसी कारण मैंने 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है। अहो! यह कैसा उत्तम माहात्म्य है कि जब देखनेवालेको भी ऐसी सुन्दरता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो जाती है, तब करनेवालेकी तो बात ही क्या है। दितिवंशज! चूँकि तुमने पृथ्वीपुत्र वीरभद्रके व्रतमें भक्तिपूर्वक दिये जाते हुए गो-दान आदि दानोंको अवहेलनापूर्वक देखा था, इसीलिये तुम्हारी उत्पत्ति राक्षस-योनिमें हुई है॥ १४—२३॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! महात्मा शुक्राचार्यके उस वचनको सुनकर प्रह्लाद-नन्दन विरोचनने विस्मय-विमुग्ध हो पुनः प्रश्न किया॥ २४॥

विरोचनने पूछा—भगवन्! जन्मान्तरमें मैंने जिसके दिये जाते हुए दानको देखा था, उस व्रतको भलीभौति अनुपूर्वी सुनना चाहता हूँ। आप मुझे उसके विधान और माहात्म्यको यथार्थ रूपसे बतलाइये। इस प्रकार विरोचनकी बात सुनकर शुक्राचार्यने विस्तारपूर्वक कहना प्रारम्भ किया॥ २५—२६॥

शुक्र बोले—दानव! जब मंगलवारको चतुर्थी तिथि पड़ जाय तो उस दिन शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करे और पद्मरागमणिकी अँगूठी आदि धारण करके उत्तराभिमुख बैठकर 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्०—' इस मन्त्रका जप करता रहे। यदि व्रती शूद्र हो तो उसे भोगसे दूर रहकर चुपचाप मंगलका स्मरण करते हुए दिन बिताना चाहिये। फिर सूर्यास्त हो जानेपर आँगनको गोबरसे लीपकर सर्वाङ्गसुन्दर पुष्पमाला आदिसे चारों ओर पूजा कर दे। आँगनके मध्यमें कुङ्कुमसे अष्टदल कमलकी रचना करे। कुङ्कुमका अभाव हो तो लाल चन्दनसे काम चलाना चाहिये। फिर आँगनके चारों कोनोंमें चार करवा स्थापित करे, जिन्हें लाल अगहनीके चावलसे भरकर उनके ऊपर पद्मरागमणि रख दे। वे भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे भी संयुक्त रहें। उनके निकट नाना प्रकारके ऋतुफल, चन्दन, पुष्पमाला आदि सभी पूजन-सामग्री भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् बछड़ेसहित एक कपिला गौका पूजन करे, जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो। इसी प्रकार लाल खुरोंसे युक्त सौम्य स्वभाववाले हृष्ट-पुष्ट एक वृषभकी भी पूजा करे और उसके निकट

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव  
 सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् ।  
 चतुर्भुजं हेममये निविष्टं  
 पात्रे गुडस्योपरि सर्पिषा युतम्॥ ३४  
 सामस्वरज्ञाय जितेन्द्रियाय  
 पात्राय शीलान्वयसंयुताय ।  
 दातव्यमेतत् सकलं द्विजाय  
 कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय ।  
 समर्पयेद् विप्रवराय भक्त्या  
 कृताञ्जलिः पूर्वमुदीर्य मन्त्रम्॥ ३५  
 भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्धव पिनाकिनः ।  
 रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्थं नमोऽस्तु ते ॥ ३६  
 मन्त्रेणानेन दत्त्वार्थं रक्तचन्दनवारिणा ।  
 ततोऽर्चयेद् विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः ॥ ३७  
 दद्यात् तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम् ।  
 शश्यां च शक्तितो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुताम्॥ ३८  
 यद् यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।  
 तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥ ३९  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुङ्गवम् ।  
 नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद् घृतसंयुतम्॥ ४०  
 भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम् ।  
 चतुरो वाथवा तस्य यत् पुण्यं तद् वदामि ते ॥ ४१  
 रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनि जन्मनि ।  
 विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ ४२  
 सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।  
 तस्मात् त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत् समाचर ॥ ४३

पिप्पलाद उवाच

इत्येवमुक्त्वा भृगुनन्दनोऽपि  
 जगाम दैत्यश्च चकार सर्वम् ।

सात वस्त्रोंसे युक्त धान्यराशि भी प्रस्तुत कर दे । फिर अँगूठेके बराबर लम्बाई-चौड़ाईवाली एक पुरुषाकार मूर्ति बनवाये, जो चार बड़ी भुजाओंसे संयुक्त हो । उसे गुड़के ऊपर रखे हुए स्वर्णमय पात्रमें स्थापित कर दे और उसके निकट घी भी प्रस्तुत कर दे । तत्पश्चात् मूर्तिसहित ये सारी वस्तुएँ ऐसे सुपात्र ब्राह्मणको दान करनी चाहिये, जो सामवेदके स्वर एवं अर्थका ज्ञाता, जितेन्द्रिय, सुशील, कुलीन और विशाल कुटुम्बवाला हो । दाम्भिकको कभी दान नहीं देना चाहिये । उस समय भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण करते हुए ऐसे द्विजवरको सारा सामान समर्पित कर दे । (उस मन्त्रका भाव इस प्रकार है—) ‘महातेजस्वी भूमिपुत्र! आप पिनाकधारी भगवान् शिवके स्वेदबिन्दुसे उद्भूत हुए हैं । मैं सौन्दर्यका अभिलाषी होकर आपकी शरणमें आया हूँ । आपको मेरा नमस्कार है । आप मेरे द्वारा दिया हुआ अर्थं ग्रहण कीजिये’ इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक लाल चन्दनमिश्रित जलसे अर्थं देनेके पश्चात् लाल पुष्पोंकी माला और लाल रंगके वस्त्र आदि उपकरणोंसे उन द्विजवरकी अर्चना करे और इसी मन्त्रको पढ़कर गौ एवं वृषभसहित मंगलकी स्वर्णमयी मूर्तिको उन्हें दान कर दे । उस समय अपनी शक्तिके अनुसार समस्त उपकरणोंसे युक्त शश्याका भी दान करना चाहिये । साथ ही दाताको लोकमें जो-जो वस्तुएँ अधिक इष्ट हों तथा अपने घरमें भी जो अधिक प्रिय हों, उन सबको अक्षयरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे गुणवान् (ब्राह्मण)-को देना चाहिये । तदनन्तर उन द्विजश्रेष्ठकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा कर दे तथा स्वयं रातमें एक बार क्षारनमकरहित एवं घृतयुक्त अन्नका भोजन करे । इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पुनः इस अङ्गारक-ब्रतका आठ अथवा चार बार अनुष्ठान करता है, उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । वह मनुष्य प्रत्येक जन्ममें सुन्दरता और सौभाग्यसे सम्पन्न होकर विष्णु अथवा शिवकी भक्तिमें लीन होता है और सातों द्वीपोंका अधीश्वर हो जाता है तथा सात हजार कल्पोंतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है । इसलिये दैत्येन्द्र! तुम भी इस ब्रतका अनुष्ठान करो ॥ ४७—४३ ॥

पिप्पलादने कहा—राजन्! इस प्रकार ब्रतका विधान बतलाकर शुक्राचार्य चले गये । तत्पश्चात् दैत्य विरोचनने पूरी विधिके साथ उस ब्रतका अनुष्ठान किया ।

तं चापि राजन् कुरु सर्वमेतद्  
यतोऽक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥ ४४

ईश्वर उवाच

तथेति सम्पूर्णं स पिप्पलादं  
वाक्यं चकाराद्गुतवीर्यकर्मा ।  
शृणोति यश्वैनमनन्यचेता-  
स्तस्यापि सिद्धिं भगवान् विधत्ते ॥ ४५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणोऽङ्गारकब्रतं नाम द्विसप्तितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अङ्गारकब्रत नामक बहतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७२ ॥

इसलिये आप भी इन सारे विधानोंके साथ इस ब्रतका अनुष्ठान कीजिये; क्योंकि वेदवेत्तालोग इसका फल अक्षय बतलाते हैं ॥ ४४ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! तब अद्भुत पराक्रमपूर्ण कर्मोंको करनेवाले युधिष्ठिरने 'तथेति—ऐसा ही करूँगा'—कहकर महर्षि पिप्पलादकी विधिवत् पूजा की और उनके वचनोंका पालन किया। जो मनुष्य अनन्यचित्तसे इस ब्रत-विधानका श्रवण करता है, भगवान् उसकी सिद्धिका भी विधान करते हैं ॥ ४५ ॥

## तिहत्तरवाँ अध्याय

### शुक्र और गुरुकी पूजा-विधि

पिप्पलाद उवाच

अथातः शृणु भूपालं प्रतिशुक्रं प्रशान्तये ।  
यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये त्विह ॥ १ ॥  
राजते वाथ सौवर्णं कांस्यपात्रेऽथवा पुनः ।  
शुक्लपुष्पाम्बरयुते सिततण्डुलपूरिते ॥ २ ॥  
विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् ।  
मन्त्रेणानेन तत् सर्वं सामग्राय निवेदयेत् ॥ ३ ॥  
नमस्ते सर्वलोकेशं नमस्ते भृगुनन्दनं ।  
कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥  
एवमस्योदये कुर्वन् यात्रादिषु च भारत ।  
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥

पिप्पलादने कहा—भूपाल! अब मैं विपरीत शुक्रकी\* शान्तिके लिये विधान बतला रहा हूँ, सुनिये। इस लोकमें शुक्रके उदयकालमें यात्राके आरम्भ अथवा समाप्तिके अवसरपर शुक्रकी एक चाँदीकी मूर्ति बनवाये, उसे श्वेत मुक्ताफल (मोती)-के साथ श्वेत चावलसे परिपूर्ण सुवर्ण, चाँदी अथवा काँसेके पात्रके ऊपर स्थापित करके श्वेत पुष्प और श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर इस वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण कर वह सारा सामान सामवेदके ज्ञाता (स्स्वर गान करनेवाले) ब्राह्मणको निवेदित कर दे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर! आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन! आपको प्रणाम है। कवे! मैं आपको अभिवादन करता हूँ। आप मेरी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करें।' भारत! जो मनुष्य शुक्रके विपरीत रहनेपर यात्रा आदि कार्योंमें इस प्रकार विधान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें

\* ज्योतिष्मिकाश, रक्माला, गर्गसंहिता आदिमें शुक्रके सामने यात्रा अत्यन्त हानिकर कही गयी है। ज्योतिर्निबन्ध आदिमें प्रतिकूल शुक्र-शान्तिके लिये कई श्रेष्ठ स्तोत्र तथा 'रेवतीसे कृत्तिका'-तकमें उन्हें अन्या बतलाकर यात्रा-विधान निर्दिष्ट है। वहाँ 'मत्स्यपुराण'के ही नामसे—'चतुःशालं चतुर्द्वारम्' आदि श्लोकको उद्भृत कर चार दरवाजेके मकानोंमें शुक्रदोष नहीं माना गया है। सम्भवतः वे श्लोक पहले मत्स्यपुराणमें यहाँ प्राप्त थे। ज्योतिर्निबन्धकी विषयवस्तु इससे बहुधा मिलती है। वहाँ १०वें श्लोकमें इसी प्रकार अर्घ्यदानकी बात आयी है।

यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा समाल्यकैः शुभैः ।  
 वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्वणकैरपि ।  
 तावदन्नं न चाश्रीयात् त्रिभिः कामार्थसिद्धये ॥ ६  
 तद्वद् वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर ।  
 सुवर्णपात्रे सौवर्णमरेशपुरोहितम् ॥ ७  
 पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः ।  
 पलाशाश्वत्थयोगेन पञ्चगव्यजलेन च ॥ ८  
 पीताङ्गरागवसनो धृतहोमं तु कारयेत् ।  
 प्रणाम्य च गवा सार्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ९  
 नमस्तेऽङ्गिरसां नाथं वाक्पते च बृहस्पते ।  
 क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमः नमः ॥ १०  
 संक्रान्तावस्य कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च ।  
 कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते ॥ ११

विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। शुक्रकी वह पूजा जबतक माझलिक पुष्पमाला, बड़ा, पूरी, गेहूँ और चनाद्वारा सम्पन्न न कर ली जाय, तबतक धर्म, अर्थ और कामकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १—६ ॥  
 युधिष्ठिर! इसी प्रकार मैं बृहस्पतिकी भी पूजा-विधि बतला रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि: वह सरसों, पलाश, पीपल और पञ्चगव्यसे युक्त जलसे स्नान करे, पीला वस्त्र पहनकर शरीरमें पीला अङ्गराग, चन्दन आदिका अनुलेप करे और ब्राह्मणद्वारा घीका हवन करावे। तत्पश्चात् मूर्तिको प्रणाम करके गौसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे। (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'वाणीके अधीश्वर! आप अङ्गिरा-वंशियोंके स्वामी हैं। बृहस्पते! क्रूर ग्रहोंसे पीड़ित प्राणियोंके लिये आप अमृततुल्य फलदाता हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है।' कुन्तीनन्दन! सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, यात्राओंमें तथा अन्यान्य आभ्युदयिक कार्योंके अवसरपर बृहस्पतिकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ७—११ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुरुशुक्रपूजाविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुक्र-गुरु-पूजाविधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७३ ॥

## चौहत्तरवाँ अध्याय

कल्याणसप्तमीव्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

भगवन् भवसंसारसागरोत्तारकारक ।  
 किञ्चिद् व्रतं समाचक्षव स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ॥ १  
 ईश्वर उवाच

सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नामा कल्याणसप्तमीम् ।  
 विशोकसप्तमीं तद्वत् फलाद्यां पापनाशिनीम् ॥ २  
 शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कमलसप्तमीम् ।  
 मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम् ॥ ३

ब्रह्माने पूछा—भगवन्! आप तो भवसागररूपी संसारसे उद्धार करनेवाले हैं, अतः कोई ऐसा व्रत बतलाइये जो स्वर्ग, नीरोगता और सुखका प्रदाता हो ॥ १ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं सूर्यसे सम्बन्धित धर्म (व्रत)-का वर्णन कर रहा हूँ जो लोकमें कल्याणसप्तमी, विशोकसप्तमी, पापनाशिनी फलसप्तमी, पुण्यदायिनी शर्करासप्तमी, कमलसप्तमी, मन्दारसप्तमी तथा मङ्गलप्रदायिनी शुभसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है।

सर्वानन्तफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः ।  
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ४  
यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।  
सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते ॥ ५  
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् ।  
ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत् ॥ ६  
प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद् वृत्तां च कर्णिकाम् ।  
पुष्पाक्षतैश्च देवेशं विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ॥ ७  
पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति चानले ।  
याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते ॥ ८  
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले ।  
सौम्ये विकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले ॥ ९  
आदावन्ते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने ।  
मन्त्रैरभिः समध्यचर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ॥ १०  
शुक्लवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ।  
स्थणिडले पूजयेद् भक्त्या गुडेन लवणेन च ॥ ११  
ततो व्याहतिमन्त्रेण विसृजे द्विजपुङ्गवान् ।  
शक्तिः पूजयेद् भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ।  
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १२  
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।  
कृतस्त्रानजपो विग्रैः सहैव घृतपायसम् ॥ १३  
भुक्त्वा च वेदविदुषे विडालब्रतवर्जिते ।  
घृतपात्रं सकनकं सोदकुभ्यं निवेदयेत् ॥ १४  
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः ।  
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत् ॥ १५  
ततस्त्रयोदशे मासि गा वै दद्यात् त्रयोदश ।  
वस्त्रालङ्कारसंयुक्ताः सुवर्णास्याः परस्विनीः ॥ १६  
एकामपि प्रदद्याद् वा वित्तहीनो विमत्सरः ।  
न वित्तशाक्यं कुर्वीत यतो मोहात् पतत्यधः ॥ १७

ये सभी सप्तमियाँ\* देवर्षियोंद्वारा पूजित हैं तथा अनन्त फल देनेवाली कही गयी हैं। मैं इनके विधानको आनुपूर्वा यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ ॥ २—४ ॥

जब शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको रविवार पड़ जाय तो उस सप्तमीको कल्याणिनी (नामसे) कहा जाता है। उसीका दूसरा नाम विजया भी है। ब्रतीको चाहिये कि वह उस दिन प्रातःकाल उठकर गोदुग्धयुक्त जलसे स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर पूर्वाभिमुख हो चावलोंद्वारा अष्टदल कमल बनावे। उसके मध्यभागमें उसी आकारवाली कर्णिकाकी भी रचना करे। तत्पश्चात् पुष्प और अक्षतद्वारा क्रमशः सब ओर देवेश्वर सूर्यकी स्थापना करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—‘तपनाय नमः’ से पूर्वदलपर, ‘मार्तण्डाय नमः’ से अग्निकोणस्थित दलपर, ‘दिवाकराय नमः’ से दक्षिणदलपर, ‘विधात्रे नमः’ से नैऋत्यकोणके दलपर, ‘वरुणाय नमः’ से पश्चिमदलपर, ‘भास्कराय नमः’ से वायव्यकोणवाले दलपर, ‘विकर्तनाय नमः’ से उत्तरदलपर, ‘रवये नमः’ से ईशानकोणस्थित आठवें दलपर और ‘परमात्मने नमः’ से आदि, मध्य और अन्तमें सूर्यका आवाहन करके स्थापित कर दे। फिर नमस्कारान्तसे सुशोभित इन मन्त्रोंका उच्चारण कर श्वेत वस्त्र, फल, नैवेद्य, धूप, पुष्पमाला और चन्दनसे भलीभाँति पूजन करे। वेदीपर भी व्याहति-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक गुड़ और नमकसे भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। फिर अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक गुड़, दूध और घी आदिके द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और तिलसे भरा हुआ पात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार विधानको पूरा करके ब्रती मानव रात्रिमें शयन करे और प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्म पूरा करे। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंके साथ ही घी और दूधसे बने हुए पदार्थोंका भोजन करे। अन्तमें विडालब्रत (छल-कपट)-से रहित वेदज्ञ ब्राह्मणको सुवर्णसहित घृतपूर्ण पात्र और जलसे भरा हुआ घट दान कर दे और उस समय इस प्रकार कहे—‘मेरे इस ब्रतसे परमात्मा भगवान् सूर्य प्रसन्न हों।’ इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सभी ब्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर तेरहवाँ महीना आनेपर तेरह गौ दान करनेका विधान है, जो सभी दुधारू हों, वस्त्र और अलंकार आदिसे सुसज्जित हों और जिनके मुखपर सोनेका पत्र लगा हुआ हो। यदि ब्रती निर्धन हो तो वह अलंकारहित होकर एक ही गौका दान करे, किंतु कृपणता न करे; क्योंकि मोहवश कंजूसी करनेसे अधःपतन हो जाता है ॥ ५—१७ ॥

\* प्रायः ये सभी सप्तमियाँ भविष्यपुराणमें अन्य कई अधिक सप्तमीब्रतोंके साथ उपादिष्ट हैं।

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कल्याणससमीम्।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते।  
 आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते ॥ १८  
 सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता।  
 सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणससमी ॥ १९  
 इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणससमीम्।  
 शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार इस कल्याणससमीब्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस लोकमें भी उसे अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि यह कल्याणससमी सदा समस्त पापोंको हरनेवाली और सम्पूर्ण दुष्ट ग्रहोंका शमन करनेवाली है। सभी देवता नित्य इसकी पूजा करते हैं। जो मानव इस लोकमें इस अनन्त फलप्रदायिनी कल्याणससमीकी चर्चा—कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १८—२० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्याणससमीब्रतं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्याणससमीब्रत नामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७४ ॥

## पचहत्तरवाँ अध्याय

### विशोकससमीब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

विशोकससमीं तद्वद् वक्ष्यामि मुनिपुङ्गवं।  
 यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाशनुते ॥ १  
 माधे कृष्णतिलैः स्नात्वा षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः।  
 कृताहारः कृसरया दन्तधावनपूर्वकम्।  
 उपवासब्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ॥ २  
 ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः।  
 कृत्वा तु काञ्छनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत्।  
 करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ॥ ३  
 यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य सर्वदा।  
 तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च ॥ ४  
 एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्।  
 सुप्त्वा सम्प्राशय गोमूत्रमुत्थाय कृतनैत्यकः ॥ ५  
 सम्पूज्य विग्रानन्नेन गुडपात्रसमन्वितम्।  
 तद्वस्त्रयुगमं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६

ईश्वरने कहा—मुनिपुङ्गव! अब मैं उसी प्रकार विशोकससमीब्रतका वर्णन कर रहा हूँ। जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोकमें कभी शोकको नहीं प्राप्त होता। ब्रतीको चाहिये कि वह माघमासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको दातूनसे दाँतोंको साफ करनेके बाद काले तिलमिश्रित जलसे स्नान करे और (तिल-चावलकी) खिचड़ीका भोजन करे। फिर उपवासका ब्रत लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक रातमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो ले, फिर स्वर्णनिर्मित कमलको स्थापित कर 'अर्काय नमः'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए लाल कनेरके पुष्प और दो लाल रंगके वस्त्रोंद्वारा सूर्यकी पूजा करे और ऐसा कहे—'आदित्य! जैसे आपके द्वारा यह सारा जगत् सदा शोकरहित बना रहता है, उसी प्रकार मुझे भी प्रत्येक जन्ममें विशोकता और आपकी भक्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार षष्ठी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा कर ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर रात्रिमें गोमूत्रका प्राशन कर शयन करे और प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो जाय। तत्पश्चात् अन्नद्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करके दो वस्त्र और गुडपूर्ण पात्रसहित वह स्वर्णमय कमल ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः।  
ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ७  
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः।  
कृत्वा यावत् पुनर्मधुशुक्लपक्षस्य सप्तमी ॥ ८  
ब्रतान्ते कलशं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्।  
शत्यां सोपस्करां दद्यात् कपिलां च पर्यस्विनीम् ॥ ९  
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाढ्यविर्जितः।  
विशोकसप्तमीं कुर्यात् स याति परमां गतिम् ॥ १०  
यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत्।  
तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ॥ ११  
यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम्।  
निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥ १२  
यः पठेच्छृणुयाद् वापि विशोकाख्यां च सप्तमीम्।  
सोऽपीन्द्रलोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ॥ १३

स्वयं सप्तमीको तेल और नमकरहित अन्नका भोजन करके मौन धारण कर ले। वैभवकी इच्छा रखनेवाले ब्रतीको उस दिन पुराणोंकी कथाएँ सुननी चाहिये। इस विधिसे दोनों पक्षोंमें सारा कार्य तबतक करते रहना चाहिये जबतक पुनः माघमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी न आ जाय ॥ १—८ ॥

ब्रतके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसमेत कलश, समस्त उपकरणोंसहित शत्या और दुधारू कपिला गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य कृपणता छोड़कर उपर्युक्त विधिके अनुसार विशोकसप्तमी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है तथा करोड़ों जन्मतक उसे शोककी प्राप्ति नहीं होती। वह रोग और दुर्गतिसे रहित हो जाता है तथा जिस-जिस मनोरथकी प्रार्थना करता है, उसे-उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त करता है। जो ब्रती निष्कामभावसे अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस विशोकसप्तमीब्रतकी कथा या विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी इस लोकमें कभी दुःखी नहीं होता और अन्तमें इन्द्रलोकको प्राप्त होता है ॥ ९—१३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकसप्तमीब्रतं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकसप्तमीब्रत नामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७५ ॥

## छिह्नतरवाँ अध्याय

### फलसप्तमीब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नामा तु फलसप्तमीम्।  
यामुपोष्य नरः पापाद् विमुक्तः स्वर्गभाग् भवेत् ॥ १  
मार्गशीर्षे शुभे मासि सप्तम्यां नियतब्रतः।  
तामुपोष्याथ कमलं कारयित्वा तु काञ्छनम् ॥ २  
शर्करासंयुतं दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।  
रविं काञ्छनकं कृत्वा पलस्यैकस्य धर्मवित्।  
दद्याद् द्विकालवेलायां भानुमें प्रीयतामिति ॥ ३  
भक्त्या तु विप्रान् सम्पूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम्।  
दत्त्वा कुर्यात् फलयुतं यावत् स्यात् कृष्णसप्तमी ॥ ४

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं फलसप्तमी नामक एक अन्य ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गभागी हो जाता है। ब्रतनिष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह मार्गशीर्ष नामक शुभ मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सोनेका एक कमल बनवाये और उस दिन उपवास कर उसे शक्करसमेत कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर दे। इसी प्रकार धर्मवेत्ता ब्रती एक पल सोनेकी सूर्यकी मूर्ति बनवाकर उसे सायंकालके समय 'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—यों कहकर ब्राह्मणको दान करे। फिर अष्टमीके दिन ब्राह्मणोंको फलसहित दूधसे बने हुए अन्नका भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। ऐसा तबतक करते रहना चाहिये जबतक पुनः

तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु।  
 तद्वद्देमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥ ५  
 शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमाल्यसमन्वितम्।  
 संवत्सरं च तेनैव विधिनोभयससमीम्॥ ६  
 उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्।  
 भानुरको रविर्बह्या सूर्यः शक्रो हरिः शिवः।  
 श्रीमान् विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति॥ ७  
 प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्।  
 प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत् कुर्वन् समाचरेत्॥ ८  
 व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद् वस्त्रभूषणैः।  
 शर्कराकलशं दद्याद्देमपद्मदलान्वितम्॥ ९  
 यथा न विफलाः कामास्त्वद्वक्तानां सदा रवे।  
 तथानन्तफलावासिरस्तु मे सप्तजन्मसु॥ १०  
 इमामनन्तफलदां यः कुर्यात् फलससमीम्।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते॥ ११  
 सुरापानादिकं किञ्चिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्।  
 तत् सर्वं नाशमायाति यः कुर्यात् फलससमीम्॥ १२  
 कुर्वाणः सप्तमीं चेमां सततं रोगवर्जितः।  
 भूतान् भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम्।  
 यः शृणोति पठेद् वापि सोऽपि कल्याणभाग् भवेत्॥ १३

कृष्णपक्षकी सप्तमी न आ जाय। उस दिन भी उसी क्रमसे विधिपूर्वक उपवास करके स्वर्णमय कमलके साथ स्वर्णनिर्मित फलका दान करना चाहिये। उसके साथ शक्करसे भरा हुआ पात्र, वस्त्र और पुष्पमाला भी होना आवश्यक है। इस प्रकार एक वर्षतक दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन उपवास और दान कर क्रमशः सूर्य-मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शक्र, हरि, शिव, श्रीमान् विभावसु, त्वष्टा और वरुण—ये मुझपर प्रसन्न हों। मार्गशीर्षसे प्रारम्भ कर प्रत्येक मासकी सप्तमी तिथिको उपर्युक्त नामोंमें क्रमशः एक-एकका कीर्तन करना चाहिये। प्रत्येक पक्षमें फलदान करनेका भी विधान है। इस प्रकार सारा कार्य करते हुए व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये॥ १—८॥

व्रतकी समाप्तिपर वस्त्र और आभूषण आदिद्वारा सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करे और स्वर्णमय कमलसहित शक्करसे भरा हुआ कलश दान करे। उस समय ऐसा कहे—‘सूर्यदेव ! जिस प्रकार आपके भक्तोंकी कामनाएँ कभी विफल नहीं होतीं, उसी प्रकार मुझे भी सात जन्मोंतक अनन्त फलकी प्राप्ति होती रहे।’ जो मनुष्य इस अनन्त फलदायिनी फलससमीका व्रत करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। फलससमीव्रतका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यद्वारा इस लोकमें अथवा परलोकमें मद्यपान आदि जो कुछ भी दुष्कर्म किया गया है, वह सारा-का-सारा विनष्ट हो जाता है। इस फलससमीव्रतका\* निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यके पास रोग नहीं फटकते और वह अपनी भूत एवं भविष्यकी इककीस पीढ़ियोंको तार देता है। जो इस व्रत-विधानको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी कल्याणभागी हो जाता है॥ ९—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे फलससमीव्रतं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें फलससमीव्रत नामक छिह्नतरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७६॥

\* ‘व्रतकल्पद्रुम’में इसके अतिरिक्त दो और भिन्न फलससमियाँ निर्दिष्ट हुई हैं।

## सतहत्तरवाँ अध्याय

शर्करासप्तमीव्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उचाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये तद्वत् कल्पषनाशिनीम्।  
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यथानन्तं प्रजायते ॥ १  
माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः।  
प्रातः स्नात्वा तिलैः शुक्लैः शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ २  
स्थणिडले पद्ममालिख्य कुङ्कुमेन सकर्णिकम्।  
तस्मिन् नमः सवित्रे तु गन्धधूपौ निवेदयेत् ॥ ३  
स्थापयेदुदकुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम्।  
शुक्लवस्त्रैरलङ्घत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः।  
सुवर्णेन समायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ ४  
विश्ववेदमयो यस्माद् वेदवादीति पठ्यसे।  
त्वमेवामृतसर्वस्वमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ५  
पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत् तत्पार्श्वतः क्षितौ।  
सौरसूक्तं जपस्तिष्ठेत् पुराणश्रवणेन वा ॥ ६  
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः।  
तत् सर्वं वेद विदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ७  
भोजयेच्छक्तितो विप्राज्ञशर्कराधृतपायसैः।  
भुज्ञीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः ॥ ८  
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्।  
संवत्सरान्ते शयनं शर्कराकलशान्वितम् ॥ ९  
सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम्।  
गृहं च शक्तिमान् दद्यात् समस्तोपस्करान्वितम् ॥ १०  
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा।  
दशभिर्वाथ निष्केण तदर्थेनापि शक्तिः ॥ ११

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं उसी प्रकार पापनाशिनी शर्करासप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। व्रतनिष्ठ पुरुष वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नान करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण कर ले। फिर वेदीपर कुङ्कुमसे कर्णिकासहित कमलका चित्र बनावे। उसपर 'सवित्रे नमः' कहकर गन्ध और धूप निवेदित करे। फिर उसपर शक्कररसे परिपूर्ण पात्रसहित जलपूर्ण कलश स्थापित करे, उसपर स्वर्णमयी मूर्ति रख दे और उसे श्वेत वस्त्रसे सुशोभित करके श्वेत पुष्पमाला और चन्दनद्वारा वक्ष्यमाण-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक पूजन करे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सूर्यदेव! विश्व और वेद आपके स्वरूप हैं, आप वेदवादी कहे जाते हैं और सभी प्राणियोंके लिये अमृततुल्य फलदायक हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।' तत्पश्चात् पञ्चगव्य पान कर उसी कलशके पार्श्वभागमें भूमिपर शयन करे। उस समय सूर्यसूक्तका जप\* अथवा पुराणका श्रवण करते रहना चाहिये। इस प्रकार दिन-रात बीत जानेपर अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पहलेकी तरह वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको शक्कर, धी और दूधसे बने हुए पदार्थ भोजन करावे और स्वयं भी मौन रहकर तेल और नमकसे रहित पदार्थोंका भोजन करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सारा कार्य करना चाहिये। एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर शक्करसे पूर्ण कलशसमेत समग्र उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा एक दुधारू गौ दान करनेका विधान है। व्रती यदि धन-सम्पत्तिसे युक्त हो तो उसे समस्त उपकरणोंसे युक्त गृहका भी दान करना चाहिये। तदनन्तर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्क (सोलह माशेका एक निष्क होता है जिसे दीनार भी कहते हैं।)

\* ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५० वाँ सूक्त सूर्यसूक्त है।

सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम्।  
 न वित्तशान्धं कुर्वीत कुर्वन् दोषं समश्नुते ॥ १२  
 अमृतं पिबतो वक्त्रात् सूर्यस्यामृतबिन्दवः।  
 निष्पेतुर्ये धरण्यां ते शालिमुद्रेक्षवः स्मृताः ॥ १३  
 शक्तरा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान्।  
 इष्टा रवेरतः पुण्या शक्तरा हव्यकव्ययोः ॥ १४  
 शक्तरासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा।  
 सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥ १५  
 यः कुर्यात् परया भक्त्या स वै सद्गतिमान्युयात्।  
 कल्पमेकं वसेत् स्वर्गं ततो याति परं पदम् ॥ १६  
 इदमनधं शृणोति यः स्मरेद् वा  
 परिपठतीह दिवाकरस्य लोके।  
 मतिमपि च ददाति सोऽपि देवै-  
 रमरवधूजनमालयाभिपूज्यः ॥ १७

सोनेका एक धोड़ा बनवाकर पहलेकी ही भाँति मन्त्रोच्चारणपूर्वक दान करना चाहिये। इसमें कृपणता न करे, यदि करता है तो दोषभागी होना पड़ता है ॥ १—१२ ॥  
 अमृत-पान करते समय सूर्यके मुखसे जो अमृतबिन्दु भूतलपर गिर पड़े थे, वे ही शालि (अगहनी धान), मूँग और ईख नामसे कहे जाते हैं। इनमें ईखका सारभूत शक्तर अमृततुल्य सुस्वादु है, इसलिये यह तीनोंमें श्रेष्ठ है। इसी कारण यह पुण्यवती शक्तरा सूर्यके हव्य एवं कव्य—दोनों हवनीय पदार्थोंमें उन्हें अत्यन्त प्रिय है। यह शक्तरासप्तमी अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायिनी, समस्त दुष्ट ग्रहोंको शान्त करनेवाली और पुत्र-पौत्रोंकी प्रवर्धिनी है। जो मानव उत्कृष्ट श्रद्धाके साथ इसका अनुष्ठान करता है, उसे सद्गतिकी प्राप्ति होती है। वह एक कल्पतक स्वर्गमें निवास कर अन्तमें परमपदको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस निष्पाप ब्रतका श्रवण, स्मरण अथवा पाठ करता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। साथ ही जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवगणों एवं देवाङ्गनाओंके समूहसे पूजित होता है ॥ १३—१७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शक्तरात्रं नाम सप्तसप्ततिमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शक्तरासप्तमीब्रत नामक सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७७ ॥

## अठहत्तरवाँ अध्याय

### कमलसप्तमीब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वत् कमलसप्तमीम्।  
 यस्याः संकीर्तनादेव तुष्टीह दिवाकरः ॥ १  
 वसन्तामलसप्तम्यां स्नातः सन् गौरसर्षपैः।  
 तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ॥ २  
 वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्टैः समर्चयेत्।  
 नमस्ते पदाहस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥ ३  
 दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते।  
 ततो विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम् ॥ ४  
 विप्राय दद्यात् सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः।  
 शक्त्या च कपिलां दद्यादलङ्घत्य विधानतः ॥ ५

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! इसके बाद अब मैं कमलसप्तमीब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका नाम लेनेमात्रसे भी भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न हो जाते हैं। ब्रती मनुष्य वसन्त-ऋतुमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करके शुद्ध हो जाय और किसी तिलसे पूर्ण पात्रमें एक सुन्दर स्वर्णमय कमल स्थापित कर दे। फिर उसे दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर गन्ध, पुष्ट आदिद्वारा उसकी अर्चना करे। पूजनके समय 'पद्महस्ताय ते नमः', 'विश्वधारिणे ते नमः', 'दिवाकर तुभ्यं नमः', 'प्रभाकर ते नमोऽस्तु'—इन मन्त्रोंका उच्चारण (कर सूर्यको प्रणाम) करे। तदनन्तर सायंकाल वस्त्र, पुष्टमाला और आभूषण आदिसे ब्राह्मणका पूजन कर उन्हें जलपूर्ण कलशसहित कमल दान कर दे। साथ ही एक कपिला गौको

अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद् द्विजान्।  
यथाशक्त्यथ भुञ्जीत मांसतैलविवर्जितम्॥ ६  
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च।  
सर्वं समाचरेद् भक्त्या वित्तशार्थविवर्जितः॥ ७  
ब्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्।  
गां च दद्यात् स्वशक्त्या तु सुवर्णाङ्गां पयस्विनीम्॥ ८  
भोजनासनदीपादीन् दद्यादिष्टानुपस्करान्।  
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कमलसप्तमीम्।  
लक्ष्मीमनन्तामध्येति सूर्यलोके महीयते॥ ९  
कल्पे कल्पे ततो लोकान् सप्त गत्वा पृथक् पृथक्।  
अप्सरोभिः परिवृत्स्ततो याति परां गतिम्॥ १०  
यः पश्यतीदं शृणुयाच्च मर्त्यः  
पठेच्च भक्त्याथ मर्ति ददाति।  
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य  
गन्धर्वविद्याधरलोकभाक् स्यात्॥ ११

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कमलसप्तमीव्रतं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कमलसप्तमीव्रत नामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७८॥

भी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक सुसज्जित करके दान करे। पुनः दिन-रात बीत जानेके बाद अष्टमी तिथिको अपनी सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उसके बाद स्वयं भी मांस और तेलसे रहित अन्नका भोजन करे। प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको इसी विधिके अनुसार कंजसूखोड़कर भक्तिपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये। (एक वर्ष पूर्ण होनेपर) व्रतकी समाप्तिके समय स्वर्णमय कमलके साथ एक शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुसज्जित एक दुधारू गौ तथा भोजन, आसन, दीप आदि अभीष्ट सामग्रियोंके भी दान करनेका विधान है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार कमलसप्तमीव्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह प्रत्येक कल्पमें अप्सराओंसे घिरा हुआ पृथक्-पृथक् सातों लोकोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रतको देखता, सुनता, पढ़ता और इसे करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी इस लोकमें अचल लक्ष्मीका उपभोग कर अन्तमें गन्धर्व-विद्याधरलोकका भागी होता है॥ १—११॥

## उन्यासीवाँ अध्याय

### मन्दारसप्तमीव्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्।  
सर्वकामप्रदां पुण्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्॥ १  
माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुद्धनः।  
दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद् बुधः॥ २  
विप्रान् सम्पूजयित्वा तु मन्दारं प्राशयेन्निशि।  
ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान्॥ ३

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं परम पुण्यप्रदायिनी मन्दारसप्तमीका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंकी विनाशिनी एवं सम्पूर्ण कामनाओंकी प्रदात्री है। बुद्धिमान् व्रतीको चाहिये कि वह माघमासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको थोड़ा आहार करके (रात्रिमें शयन करे)। पुनः षष्ठी तिथिको प्रातःकाल दातून कर दिनभर उपवास करे। रातमें ब्राह्मणोंकी पूजा कर मन्दार-पुष्पका भक्षण करे और सो जाय। तत्पश्चात् सप्तमी\* तिथिको प्रातःकाल उठकर स्नान आदि नित्यकर्म सम्पादन कर

\* पाद, वायव्यादि विविध माघमाहात्म्यों एवं 'व्रतरत्न' आदि व्रतनिवन्धोंमें इसी तिथिको अचलासप्तमी, रथसप्तमी, रथाङ्गसप्तमी, महासप्तमी आदि कहकर अन्य व्रत भी निर्दिष्ट हैं।

भोजयेच्छक्तिः कुर्यात् मन्दारकुसुमाष्टकम्।  
सौवर्णं पुरुषं तद्वत् पद्महस्तं सुशोभनम्॥ ४

पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम्।  
हेममन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः॥ ५

नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यानले दले।  
दक्षिणे तद्वदकार्यं तथार्यम्णोति नैऋते॥ ६

पश्चिमे वेदधाम्ने च वायव्ये चण्डभानवे।  
पूष्णोत्युत्तरतः पूज्यमानन्दायेत्यतः परम्॥ ७

कर्णिकायां च पुरुषं स्थाप्य सर्वात्मनेति च।  
शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः॥ ८

एवमध्यर्च्यं तत् सर्वं दद्याद् वेदविदे पुनः।  
भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राइमुखो गृही॥ ९

अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासि मासि च।  
कुर्यात् संवत्सरं यावद् विज्ञशात्यविवर्जितः॥ १०

एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि।  
गोभिर्विभवतः सार्धं दातव्यं भूतिमिच्छता॥ ११

नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च।  
त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात्॥ १२

अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारसप्तमीम्।  
विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते॥ १३

इमामधौघपटलभीषणध्वान्तदीपिकाम् ।  
गच्छन् संगृह्य संसारशर्वर्या न स्खलेन्नरः॥ १४

मन्दारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम् ।  
यः पठेच्छृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १५

अपनी शक्तिके अनुसार पुनः ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तदनन्तर सोनेके आठ मन्दार-पुष्प और एक पुरुषाकार सुन्दर मूर्ति बनवाये, जिसके हाथमें कमल सुशोभित हो। पुनः ताँबेके पात्रमें काले तिलोंसे अष्टदल कमलकी रचना करे। तदनन्तर स्वर्णमय मन्दार-पुष्पोंद्वारा (कमलके आठों दलोंपर वक्ष्यमाण-मन्त्रोंका उच्चारण करके सूर्यका आवाहन करे। यथा—) 'भास्कराय नमः' से पूर्वदलपर, 'सूर्याय नमः' से अग्निकोणस्थित दलपर, 'अर्काय नमः' से दक्षिणदलपर, 'अर्धम्णो नमः' से नैऋत्यकोणवाले दलपर, 'वेदधाम्ने नमः' से पश्चिमदलपर, 'चण्डभानवे नमः' से वायव्यकोणस्थित दलपर, 'पूष्णे नमः' से उत्तरदलपर, उसके बाद 'आनन्दाय नमः' से ईशानकोणवाले दलपर स्थापना करके कर्णिकाके मध्यमें 'सर्वात्मने नमः' कहकर पुरुषाकार मूर्तिको स्थापित कर दे तथा उसे श्वेत वस्त्रोंसे ढँककर खाद्य पदार्थ (नैवेद्य), पुष्पमाला, फल आदिसे उसकी अर्चना करे॥ १—८॥

इस प्रकार गृहस्थ व्रती उस मूर्तिका पूजन कर पुनः वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे और स्वयं पूर्वाभिमुख बैठकर मौन हो तेल और नमकरहित अन्नका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इसी विधिके अनुसार सारा कार्य सम्पन्न करनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। व्रतकी समाप्तिके समय वैभवकी अभिलाषा रखनेवाला व्रती उस मूर्तिको कलशके ऊपर रखकर अपनी धन-सम्पत्तिके अनुसार प्रस्तुत की गयी गौओंके साथ दान कर दे। (उस समय सूर्यभगवान्‌से यों प्रार्थना करे—) 'सूर्यदेव! आप मन्दारके स्वामी हैं और मन्दार आपका भवन है, आपको नमस्कार है। आप हमलोगोंका इस संसाररूपी सागरसे उद्धार कीजिये।' जो मानव उपर्युक्त विधिके अनुसार इस मन्दारसप्तमीव्रतका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित हो सुखपूर्वक एक कल्पतक स्वर्गमें आनन्दका उपभोग करता है। यह सप्तमीव्रत पापसमूहरूप परदेसे आच्छादित होनेके कारण प्रकट हुए भयंकर अन्धकारके लिये दीपकके समान है, जो मनुष्य इसे हाथमें लेकर संसाररूपी रात्रिमें यात्रा करता है, वह कहीं पथभ्रष्ट नहीं होता। जो मनुष्य अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली इस मन्दारसप्तमीके व्रतको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९—१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्दारसप्तमीव्रतं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्दारसप्तमीव्रत नामक उन्नासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७९॥

## अस्सीवाँ अध्याय

शुभसप्तमीव्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम्।  
यामुपोष्य नरो रोगशोकदुःखैः प्रमुच्यते॥ १  
पुण्ये चाश्वयुजे मासि कृतस्नानजपः शुचिः।  
वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम्॥ २  
कपिलां पूजयेद् भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः।  
नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम्।  
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये॥ ३  
अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताप्रपात्रेण संयुतम्।  
काञ्छनं वृषभं तद्वद् गन्धमाल्यगुडान्वितम्॥ ४  
फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्घृतपायससंयुतैः।  
दद्याद् विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति॥ ५  
पञ्चगव्यं च सम्प्राशय स्वपेद् भूमावसंस्तरे।  
ततः प्रभाते संजाते भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्॥ ६  
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः।  
वाससी वृषभं हैमं तद्वद् गां काञ्छनोद्धवाम्॥ ७  
संवत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम्।  
सोपधानकविश्रामं भाजनासनसंयुतम्॥ ८  
ताप्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा।  
दद्याद् वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥ ९  
अनेन विधिना विद्वान् कुर्याद् यः शुभसप्तमीम्।  
तस्य श्रीर्विपुला कीर्तिर्भवेजन्मनि जन्मनि॥ १०  
अप्सरोगणगन्धवैः पूज्यमानः सुरालये।  
वसेद् गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसम्प्लवम्।  
कल्पादाववतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ ११

श्रीभगवान् कहा—ब्रह्मन्! अब मैं एक अन्य सुन्दर शुभसप्तमीव्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य रोग, शोक और दुःखसे मुक्त हो जाता है। पुण्यप्रद आश्विनमासमें (शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको) व्रती स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो जाय, तब ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर शुभसप्तमी-व्रत आरम्भ करे। उस समय सुगन्धित पदार्थ, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौकी पूजा करके यों प्रार्थना करे—‘देवि! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयभूता हैं तथा आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे युक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।’ तदनन्तर एक ताँबेके पात्रमें एक सेर तिल भर दे और एक बड़े आसनपर स्वर्णमय वृषभको स्थापित कर उसकी चन्दन, माला, गुड़, फल, धी एवं दूधसे बने हुए नाना प्रकारके नैवेद्य आदिसे पूजा करे। फिर सायंकाल ‘अर्यमा प्रसन्न हों’ यों कहकर उसे दान कर दे। रातमें पञ्चगव्य खाकर बिना बिछावनके ही भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल होनेपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करे। व्रती मनुष्यको प्रत्येक मासमें सदा इसी विधिसे दो वस्त्र, स्वर्णमय बैल और स्वर्णनिर्मित गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार वर्षकी समाप्तिमें विश्रामहेतु गदा, तकिया आदिसे युक्त एवं ईख, गुड़, बर्तन, आसन आदिसे सम्पन्न शय्या तथा एक सेर तिलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रके ऊपर स्थापित स्वर्णमय वृषभ आदि सारा उपकरण वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे और यों कहे—‘विश्वात्मा मुझपर प्रसन्न हों’॥१—९॥

जो विद्वान् पुरुष उपर्युक्त विधिके अनुसार इस शुभसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे प्रत्येक जन्ममें विपुल लक्ष्मी और कीर्ति प्राप्त होती है। वह देवलोकमें गणाधीश्वर होकर अप्सराओं और गन्धवैंद्वारा पूजित होता हुआ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। पुनः कल्पके

ब्रह्महत्यासहस्रस्य श्रूणहत्याशतस्य च।  
नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी॥ १२  
इमां पठेद् यः शृणुयान्मुहूर्तं  
पश्येत् प्रसङ्गादपि दीयमानम्।  
सोऽप्यत्र सर्वाधिविमुक्तदेहः  
प्राज्ञोति विद्याधरनायकत्वम्॥ १३  
यावत् समाः सप्त नरः करोति  
यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम्।  
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण  
भूत्वा पदं याति परं मुरारेः॥ १४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शुभसप्तमीव्रतं नामाशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुभसप्तमीव्रत नामक अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८०॥

आदिमें उत्पन्न होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। यह पुण्यप्रद शुभसप्तमी एक हजार ब्रह्महत्या और एक सौ श्रूणहत्याके पापोंका नाश करनेके लिये समर्थ कही जाती है। जो मनुष्य इस व्रत-विधिको पढ़ता अथवा दो घड़ीतक सुनता है तथा प्रसङ्गवश दिये जाते हुए दानको देखता है, वह भी इस लोकमें समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परलोकमें विद्याधरोंके अधिनायक-पदको प्राप्त करता है। जो मनुष्य उपर्युक्त सात विधानोंसे युक्त इस सप्तमीव्रतका सात वर्षोंतक अनुष्ठान करता है, वह क्रमशः सातों लोकोंका अधिपति होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है॥ १०—१४॥

## इक्यासीवाँ अध्याय

### विशोकद्वादशीव्रतकी विधि

मत्स्य उवाच  
किमभीष्टवियोगशोकसंघा-  
दलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा।  
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन्  
भवभीतेरपि सूदनं च पुंसः॥ १  
मत्स्य उवाच  
परिपृष्ठमिदं जगत्प्रियं ते  
विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात्।  
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये  
व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम्॥ २  
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्।  
दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु॥ ३  
उद्दमुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।  
एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्यं केशवम्।  
श्रियं वाभ्यर्च्यं विधिवद् भोक्ष्येऽहं चापरेऽहनि॥ ४

मनुने पूछा—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है॥ १॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजर्ष! तुमने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, यह समस्त जगत्को प्रिय तथा इतना महत्त्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते, तथापि तुम—जैसे भक्तिमान् के प्रति मैं अवश्य इसका वर्णन करूँगा। उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशीव्रत है। विद्वान् व्रतीको आश्विनमासमें दशमी तिथिको अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन व्रती मानव उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातून करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और ‘दूसरे दिन

एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।  
 स्नानं सर्वोषधैः कुर्यात् पञ्चगव्यजलेन तु ।  
 शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छीशमुत्पलैः ॥ ५  
 विशोकाय नमः पादौ जड्हे च वरदाय वै ।  
 श्रीशाय जानुनी तद्वदूरु च जलशायिने ॥ ६  
 कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम् ।  
 दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै ॥ ७  
 नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै ।  
 श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः ॥ ८  
 चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः ।  
 वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै ॥ ९  
 नासामशोकनिधये वासुदेवाय चक्षुषी ।  
 ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भूवौ ॥ १०  
 अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे ।  
 नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत् ॥ ११  
 एवं सम्पूर्ण्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः ।  
 ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मुदा ॥ १२  
 चतुरस्त्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्ष्मलवम् ।  
 श्लक्षणं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम् ॥ १३  
 त्र्यङ्गुलेनोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः ।  
 स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत् ॥ १४  
 नदीवालुकया शूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत् ।  
 स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः ॥ १५  
 नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ।  
 नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ॥ १६  
 विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे ।  
 विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये ॥ १७  
 ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पे वेष्ट्य सम्पूजयेत् फलैः ।  
 वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् सुवर्णकमलेन च ॥ १८  
 रजनीषु च सर्वासु पिबेद् दर्भोदकं बुधः ।  
 ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत् सकलां निशाम् ॥ १९

भोजन करुँगा'—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातः काल उठकर सर्वोषधि और पञ्चगव्य मिले हुए जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पोंद्वारा पूजा करे। (पूजनकी विधि इस प्रकार है—) 'विशोकाय नमः' से दोनों चरणोंका, 'वरदाय नमः' से दोनों जड्हाओंका, 'श्रीशाय नमः' से दोनों जानुओंका, 'जलशायिने नमः' से दोनों ऊर्होंका, 'कन्दर्पाय नमः' से गुह्यप्रदेशका, 'माधवाय नमः' से कटिप्रदेशका, 'दामोदराय नमः' से उदरका, 'विपुलाय नमः' से दोनों पार्श्वभागोंका, 'पद्मनाभाय नमः' से नाभिका, 'मन्मथाय नमः' से हृदयका, 'श्रीधराय नमः' से विष्णुके वक्षःस्थलका, 'मधुजिते नमः' से दोनों हाथोंका, 'चक्रिणे नमः' से बाँयीं भुजाका, 'गदिने नमः' से दाहिनी भुजाका, 'वैकुण्ठाय नमः' से कण्ठका, 'यज्ञमुखाय नमः' से मुखका, 'अशोकनिधये नमः' से नासिकाका, 'वासुदेवाय नमः' से दोनों नेत्रोंका, 'वामनाय नमः' से ललाटका, 'हरये नमः' से दोनों भौंहोंका, 'माधवाय नमः' से बालोंका, 'विश्वरूपिणे नमः' से किरीटका और 'सर्वात्मने नमः' से सिरका पूजन करना चाहिये ॥ २—११ ॥

इस प्रकार हर्षपूर्वक फल, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भगवान् गोविन्दका पूजन करनेके पश्चात् मण्डल बनाकर वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौंकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी, सुन्दर और तीन ओर वप्र (परिधि)-से युक्त हो। वे वप्र तीन अङ्गुल ऊँचे और दो अङ्गुल चौड़े होने चाहिये। वेदीके ऊपर आठ अङ्गुलकी दोबाल बनायी जाय। तत्पश्चात् बुद्धिमान् ब्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अङ्कित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर 'देव्यै नमः', 'शान्त्यै नमः', 'लक्ष्म्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'पुष्ट्यै नमः', 'तुष्ट्यै नमः', 'वृष्ट्यै नमः', 'हृष्ट्यै नमः' के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका मुझे धन-सम्पत्ति दें और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर ब्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक पान करे और सारी रात नाच-गान आदिका आयोजन

यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वाप्युत्थाय मानवः ।  
 अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि तदार्चयेत् ॥ २०  
 शक्तिस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।  
 शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥ २१  
 ततस्तु गीतवाद्येन रात्रौ जागरणे कृते ।  
 प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥ २२  
 भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाढ्यविवर्जितः ।  
 भुक्त्वा श्रुत्वा पुराणानि तद्दिनं चातिवाहयेत् ॥ २३  
 अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ।  
 ब्रतान्ते शयनं दद्याद् गुडधेनुसमन्वितम् ।  
 सोपधानकविश्रामं सास्तरावरणं शुभम् ॥ २४  
 यथा न लक्ष्मीर्देवेश त्वां परित्यज्य गच्छति ।  
 तथा सुरूपतारोग्यमशोकश्चास्तु मे सदा ॥ २५  
 यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायिते क्वचित् ।  
 तथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे ॥ २६  
 मन्त्रेणानेन शयनं गुडधेनुसमन्वितम् ।  
 शूर्पं च लक्ष्म्या सहितं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ २७  
 उत्पलं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम् ।  
 केतकी सिन्धुवारं च मल्लिका गन्धपाटला ।  
 कदम्बं कुञ्जकं जातिः शस्तान्येतानि सर्वदा ॥ २८

करावे । तीन पहर रात व्यतीत होनेपर ब्रती मनुष्य स्वयं नींद त्यागकर उठ पड़े और अपनी शक्तिके अनुसार शश्यापर सोते हुए तीन या एक द्विज-दम्पतिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे 'जलशायिने नमोऽस्तु'—जलशायी भगवान्‌को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे । इस प्रकार रातमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल स्नान कर पुनः द्विज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन करावे । फिर स्वयं भोजन करके पुराणोंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे । प्रत्येक मासमें इसी विधिसे सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये ॥ १२—२३ १/२ ॥

इस प्रकार ब्रतकी समाप्तिके अवसरपर गद्य, चादर, तकिया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शश्या गुड-धेनुके साथ दान करके यों प्रार्थना करे—'देवेश! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जातीं, उसी प्रकार मुझे सदा सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता प्राप्त हो । जैसे लक्ष्मी कहीं भी आपसे वियुक्त होकर नहीं प्रकट होतीं, वैसे ही मुझे भी विशोकता और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो ।' वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रतीको इस मन्त्रके उच्चारणके साथ गुड-धेनुसहित शश्या और लक्ष्मीसहित सूप दान कर देना चाहिये । इस ब्रतमें कमल, करवीर (कनेर), बाण (नीलकुसुम या अगस्त्य वृक्षका पुष्प), ताजा (बिना कुम्हलाया हुआ) कुङ्कुम, केतकी (केवड़ा), सिन्धुवार, मल्लिका, गन्धपाटला, कदम्ब, कुञ्जक और जाती—ये पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं ॥ २४—२८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीब्रतं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशीब्रत नामक इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८१ ॥

## ब्राह्मीवाँ अध्याय

### गुड-धेनुके<sup>१</sup> दानकी विधि और उसकी महिमा

मनुरुवाच

गुडधेनुविधानं मे समाचक्ष्व जगत्पते।  
किं रूपं केन मन्त्रेण दातव्यं तदिहोच्यताम्॥ १

मत्य उवाच

गुडधेनुविधानस्य यद् रूपमिह यत् फलम्।  
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम्॥ २

कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्नीवं विन्यसेद् भुवि।  
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भनास्तीर्य सर्वतः॥ ३

लघ्वेणकाजिनं तद्वद् वत्सं च परिकल्पयेत्।  
प्राइमुखीं कल्पयेद् धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्॥ ४

उत्तमा गुडधेनुः स्यात् सदा भारचतुष्टयम्।  
वत्सं भारेण कुर्वीत द्वाभ्यां वै मध्यमा स्मृता॥ ५

अर्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु।  
चतुर्थशेन वत्सः स्याद् गृहविज्ञानुसारतः॥ ६

धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतो।  
शुक्तिकण्ठाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ॥ ७

सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ।  
ताप्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ॥ ८

विद्वुमधूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ।  
क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ॥ ९

सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतैः खुरसंयुतौ।

मनुने पूछा—जगत्पते! अब आप मुझे (अभी विशेषकद्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही उस गुड-धेनुका कैसा रूप होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये—यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

मत्यभगवान् ने कहा—राजर्ष! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका मैं अब वर्णन कर रहा हूँ। वह समस्त पापोंका विनाशक है। गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अग्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। उसी प्रकार एक छोटे मृगचर्ममें बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्व मुख और उत्तर पैरवाली सवत्सा गौकी कल्पना करनी चाहिये। चार भार<sup>२</sup> गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बछड़ा एक भार गुडका बनाना चाहिये। दो भार गुडकी बनी हुई धेनु मध्यम कही गयी है। उसका बछड़ा आधा भार गुडका होना चाहिये। एक भार गुडकी बनी धेनु कनिष्ठा होती है, उसका बछड़ा चौथाई भार गुडका बनता है। तात्पर्य यह है कि अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)-का निर्माण कराना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर धीसे उनके मुखकी, सीपसे कानोंकी, गत्रेसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नाड़ियोंकी, श्वेत कम्बलसे गलकम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनोंके स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, काँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सींगके

१. यह अध्याय पद्मपु० १। २१, वराहपुराण १०२, कृत्यकल्पतरु ५, दानकाण्ड तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत है। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

२. दो हजार पल अर्थात् तीन मनके वजनको 'भार' कहते हैं।

नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ ।  
 इत्येवं रचयित्वा तौ धूपदीपैरथार्चयेत् ॥ १०  
 या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।  
 धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ॥ ११  
 देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया ।  
 धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ १२  
 विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।  
 चन्द्रार्कशक्तशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥ १३  
 चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च ।  
 लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥ १४  
 स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या ।  
 सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १५  
 एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 विधानमेतद् धेनूनां सर्वासामभिपञ्चते ॥ १६  
 यास्ताः पापविनाशिन्यः पञ्चन्ते दश धेनवः ।  
 तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥ १७  
 प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथापरा ।  
 तिलधेनुसृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता ॥ १८  
 क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा ।  
 सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी ।  
 रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात् स्वरूपतः ॥ १९  
 कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासां तु राशयः ।  
 सुवर्णधेनुमष्ट्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ २०  
 नवनीतेन रक्षेश तथान्ये तु महर्षयः ।  
 एतदेवं विधानं स्यात् एवोपस्कराः स्मृताः ॥ २१  
 मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि ।  
 यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ २२  
 गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तावन्मयोदिताः ।  
 अशेषयज्ञफलदाः सर्वाः पापहराः शुभाः ॥ २३  
  
 व्रतानामुत्तमं यस्माद् विशोकद्वादशीव्रतम् ।  
 तदङ्गत्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते ॥ २४

आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे ॥२—१०॥

‘जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, धेनुरूपसे वही देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो सदा शङ्करजीके बामाङ्गमें विराजमान रहती हैं तथा उनकी प्रिय पत्नी हैं, वे रुद्राणीदेवी धेनुरूपसे मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी लक्ष्मी हैं, जो कुबेरकी लक्ष्मी हैं तथा जो लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा हैं, जो यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा हैं, समस्त पापोंको हरनेवाली वे ही धेनुरूपा हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान करें।’ इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा जाता है। नरेश्वर! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलायी जाती हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी जल-धेनु, पाँचवीं सुप्रसिद्ध क्षीर-धेनु, छठी मधु-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। द्रव (बहनेवाले) पदार्थोंसे बननेवाली गौओंका स्वरूप घट है और अद्रव पदार्थोंसे बननेवाली गौओंका उन-उन पदार्थोंकी राशि है। इस लोकमें कुछ मानव सुवर्ण-धेनुकी तथा अन्य महर्षिगण नवनीत (मक्खन) और रनोंसे भी गौकी रचनाकी इच्छा करते हैं। परंतु सभीके लिये यही विधान है और ये ही सामग्रियाँ भी हैं। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये; क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली हैं ॥११—२२॥

इस प्रकार गुड-धेनुके वर्णन-प्रसङ्गसे मैंने सभी धेनुओंके वर्णन कर दिया। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं। चूँकि इस लोकमें विशेषद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है।

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः।  
गुडधेन्वादयो देयास्तूपरागादिपर्वसु॥ २५  
विशोकद्वादशी चैषा पुण्या पापहरा शुभा।  
यामुपोष्य नरो याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥ २६  
इह लोके च सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च।  
वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे च स्मरन् हरिम्॥ २७  
नवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्।  
न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य संजायते नृप॥ २८  
नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीव्रतम्।  
नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमान्जुयात्॥ २९  
तस्मादग्रे हरेर्नित्यमनन्तं गीतवादनम्।  
कर्तव्यं भूतिकामेन भक्त्या तु परया नृप॥ ३०  
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यद्द—  
मधुमुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत्।  
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके  
वसति स बिबुधौधैः पूज्यते कल्पमेकम्॥ ३१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीव्रतं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशीव्रत नामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८२॥

उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पवौंपर इन गुड-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायुका उपभोग करके मरनेपर श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोकको चला जाता है। धर्मज्ञ नरेश! उसे नौ अरब अठारह हजार वर्षोंतक शोक, दुःख और दुर्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अथवा जो स्त्री नित्य नाच-गानमें तत्पर रहकर इस विशोकद्वादशीव्रतका अनुष्ठान करती है, उसे भी वही पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। राजन्! इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उत्कृष्ट भक्तिके साथ श्रीहरिके समक्ष नित्य-निरन्तर गायन-वादनका आयोजन करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस व्रत-विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है एवं मधु, मुर और नरक नामक राक्षसोंके शत्रु श्रीहरिके पूजनको भलीभांति देखता है तथा वैसा करनेके लिये लोगोंको सम्मति देता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है और एक कल्पतक देवगणोंद्वारा पूजित होता है॥ २३—३१॥

## तिरासीवाँ अध्याय

पर्वतदानके दस भेद, धान्यशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवञ्चश्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम्।  
यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम्॥ १  
उमापतिरुवाच

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशथा मुनिपुङ्गवं।  
यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान्॥ २  
पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च।  
न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदशनुते॥ ३

नारदजीने पूछा— भगवन्! अब मैं विविध दानोंके उत्तम माहात्म्यको श्रवण करना चाहता हूँ, जो देवगणों एवं ऋषिसमूहोंद्वारा पूजित और परलोकमें अक्षय फल देनेवाला है॥ १॥

उमापतिने कहा—मुनिपुङ्गव! मैं मेरु-(पर्वत) दानके दस भेदोंको बतला रहा हूँ। जिनका दान करनेसे मनुष्य देवपूजित लोकोंको प्राप्त करता है। उसे इस लोकमें जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह वेदों और पुराणोंके अध्ययनसे, यज्ञानुष्ठानसे और देव-मन्दिर आदिके

तस्माद् विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात् ।  
 प्रथमो धान्यशैलः स्याद् द्वितीयो लवणाचलः ॥ ४  
 गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ।  
 पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥ ५  
 सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः ।  
 राजतो नवमस्तद्वद् दशमः शर्कराचलः ॥ ६  
 वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ।  
 अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥ ७  
 शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये ।  
 विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथ वा पुनः ॥ ८  
 शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यक्षें वा विधानतः ।  
 धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता ॥ ९  
 तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे ।  
 मण्डपं कारयेद् भक्त्या चतुरस्त्रमुदङ्मुखम् ।  
 प्रागुदक्षप्रवणं तद्वत् प्राङ्मुखं च विधानतः ॥ १०  
 गोमयेनानुलिसायां भूमावास्तीर्य वै कुशान् ।  
 तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद् विष्कम्भपर्वतान्वितम् ॥ ११  
 धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद् गिरिरिहोत्तमः ।  
 मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात् त्रिभिः शतैः ॥ १२  
 मेरुर्महाक्रीहिमयस्तु मध्ये  
 सुर्वर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।  
 पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो  
 याम्येन गोमेदकपुष्परागैः ॥ १३  
 पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः  
 सौम्येन वैदूर्यसरोजरागैः ।  
 श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवालै-  
 लंतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात् ॥ १४  
 ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान् पुरारि-  
 दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।  
 मूर्धन्यवस्थानममत्सरेण  
 कार्यं त्वनेकैश्च पुनर्द्विजौघैः ॥ १५

निर्माणसे भी नहीं प्राप्त होता । इसलिये अब मैं पर्वतोंके क्रमसे उनके विधानका वर्णन कर रहा हूँ । (उनके नाम हैं—) पहला धान्यशैल, दूसरा लवणाचल, तीसरा गुडाचल, चौथा हेमपर्वत, पाँचवाँ तिलशैल, छठा कार्पासपर्वत, सातवाँ घृतशैल, आठवाँ रत्नशैल, नवाँ रजतशैल और दसवाँ शर्कराचल । इनका विधान यथार्थरूपसे क्रमशः बतला रहा हूँ । सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायणके समय, पुण्यमय विषुवयोगमें, व्यतीपातयोगमें, ग्रहणके समय सूर्य अथवा चन्द्रमाके अदृश्य हो जानेपर, शुक्लपक्षकी तृतीया, द्वादशी अथवा पूर्णिमा तिथिके दिन, विवाह, उत्सव और यज्ञके अवसरोंपर तथा पुण्यप्रद शुभ नक्षत्रके योगमें विद्वान् दाताको शास्त्रादेशानुसार विधिपूर्वक धान्यशैल आदि पर्वतदानोंको करना चाहिये । इसके लिये तीर्थोंमें, देवमन्दिरमें, गोशालामें अथवा अपने घरके आँगनमें ही भक्तिपूर्वक विधि-विधानके साथ एक चौकोर मण्डपका निर्माण करावे; उसमें उत्तर और पूर्व दिशामें दो दरवाजे हों और उसकी भूमि पूर्वोत्तर दिशामें ढालू हो । उस मण्डपकी गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर कुश बिछाकर उसके बीचमें विष्कम्भपर्वतसहित<sup>१</sup> देय पदार्थकी पर्वताकार राशि लगा दे । इस विषयमें एक हजार द्वोण<sup>२</sup> अन्नका पर्वत उत्तम, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और तीन सौ द्रोणका कनिष्ठ माना जाता है ॥ २—१२ ॥

महान् धान्यराशिसे बने हुए मेरु पर्वतको मध्यमें तीन स्वर्णमय वृक्षोंसे युक्त कर, पूर्व दिशामें मोती और हीरेसे, दक्षिण दिशामें गोमेद और पुष्पराग (पुखराज)-से, पश्चिम दिशामें गारुत्मत (पत्रा) और नीलम मणिसे, उत्तर दिशामें वैदूर्य और पद्मराग मणिसे तथा चारों ओर चन्दनके टुकड़ों और मूँगेसे सुशोभित कर दे । उसे लताओंसे परिवेषित तथा सीपीके शिलाखण्डोंसे सुसज्जित कर दिया जाय । पुनः यजमान गर्वरहित होकर अनेकों द्विजसमूहोंके साथ उस पर्वतके मूर्धा-स्थानपर ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शङ्कर और सूर्यकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे ।

१. सुमेरुगिरिके चारों ओर स्थित मन्दर, गन्धमादन, विषुल और सुपाश्व नामक पर्वतोंको 'विष्कम्भपर्वत' कहा जाता है ।  
 २. बत्तीस सेरका एक प्राचीन मान ।

चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि  
नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात् ।

तथेक्षुवंशावृतकन्द्रस्तु  
घृतोदकप्रस्ववणैश्च दिक्षु ॥ १६

शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्  
पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।

वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि  
रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली ॥ १७

रौप्यान् महेन्द्रप्रमुखांस्तथाष्टौ  
संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।

नानाफलाली च समन्ततः स्या-  
न्मनोरमं माल्यविलेपनं च ॥ १८

वितानकं चोपरि पञ्चवर्ण-  
मम्लानपुष्पाभरणं सितं च ।

इत्थं निवेश्यामरशैलमण्डयं  
मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन् क्रमेण ॥ १९

तुरीयभागेन चतुर्दिशं च  
संस्थापयेत् पुष्पविलेपनाद्यान् ।

पूर्वेण मन्दरमनेकफलावलीभि-  
र्युक्तं यवैः कनकभद्रकदम्बचिह्नैः ॥ २०

कामेन काञ्छनमयेन विराजमान-  
माकारयेत् कुसुमवस्त्रविलेपनाद्यम् ।

क्षीरारुणोदसरसाथ वनेन चैवं  
रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम् ॥ २१

याम्येन गन्धमदनश्च विवेशनीयो  
गोधूमसंचयमयः कलधौतयुक्तः ।

हैमेन यज्ञपतिना घृतमानसेन  
वस्त्रैश्च राजतवेन च संयुतः स्यात् ॥ २२

पश्चात् तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्प-  
सौवर्णपिप्पलहिरण्मयंहंसयुक्तम् ।

आकारयेद् रजतपुष्पवनेन तद्वद्  
वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥ २३

संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण  
शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रम् ।

पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं त-  
माकारयेत् कनकधनुविराजमानम् ॥ २४

उसमें चाँदीके चार शिखर बनाये जायँ, जिनके नितम्बभाग भी चाँदीके ही बने हों। उसी प्रकार चारों दिशाओंमें गत्रा और बाँससे ढकी हुई कन्द्राएँ तथा घी और जलके झरने भी बनाये जायँ। पुनः पूर्व दिशामें श्वेत वस्त्रोंसे, दक्षिण दिशामें पीले वस्त्रोंसे, पश्चिम दिशामें चितकबरे वस्त्रोंसे और उत्तर दिशामें लाल वस्त्रोंसे बादलोंकी पङ्कियाँ बनायी जायँ। फिर चाँदीके बने हुए महेन्द्र आदि आठों लोकपालोंको क्रमशः स्थापित करे और उस पर्वतके चारों ओर अनेकों प्रकारके फल, मनोरम पुष्पमालाएँ और चन्दन भी रख दे। उसके ऊपर पैंचरंगा चाँदोवा लगा दे और उसे खिले हुए श्वेत पुष्पोंसे विभूषित कर दे। इस प्रकार श्रेष्ठ अमरशैल (सुमेरुगिरि)-की स्थापना कर उसके चतुर्थांशसे इसकी चारों दिशाओंमें क्रमशः विष्कम्भ (मर्यादा) पर्वतोंकी स्थापना करनी चाहिये। ये सभी पुष्प और चन्दनसे सुशोभित हों। पूर्व दिशामें यवसे मन्दराचलका आकार बनावे, उसके निकट अनेकों प्रकारके फलोंकी कतारें लगा दे, उसे कनकभद्र (देवदारु) और कदम्ब-वृक्षोंके चिह्नोंसे सुशोभित कर दे, उसपर कामदेवकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित कर दे। फिर उसे अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीके बने हुए वन और दूधनिर्मित अरुणोद नामक सरोवरसे सुशोभित कर दे। तत्पश्चात् वस्त्र, पुष्प और चन्दन आदिसे उसे भरपूर सुसज्जित कर देना चाहिये ॥ १३—२१ ॥

दक्षिण दिशामें गेहूँकी राशिसे गन्धमादनकी रचना करनी चाहिये। उसे स्वर्णपत्रसे सुशोभित कर दे। उसपर यज्ञपतिकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर दे और उसे वस्त्रोंसे परिवेषित कर दे। फिर उसे घीके सरोवर और चाँदीके वनसे सुशोभित कर देना चाहिये। पश्चिम दिशामें अनेकों सुगन्धित पुष्पों, स्वर्णमय पीपल-वृक्ष और सुवर्णनिर्मित हंससे युक्त तिलाचलकी स्थापना करनी चाहिये। उसी प्रकार इसे भी वस्त्रसे परिवेषित तथा चाँदीके पुष्पवनसे सुशोभित कर दे। इसके अग्रभागमें दहीसे सितोद सरोवरकी भी रचना कर दे। इस प्रकार उस विपुल शैलकी स्थापना करके उत्तर दिशामें उड़दसे सुपार्श्व नामक पर्वतकी स्थापना करे। इसे भी सुन्दर वस्त्र और पुष्पोंसे सुसज्जित कर दे, इसके शिखरपर स्वर्णमय वटवृक्ष रख दे और सुवर्णनिर्मित गौसे सुशोभित कर दे।

माक्षीकभद्रसरसाथ वनेन तद्वद्  
 रौप्येण भास्वरवता च युतं निधाय ।  
 होमश्शतुर्भिरथ वेदपुराणविद्धि-  
 दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥ २५  
 पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं  
 कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ।  
 रात्रौ च जागरमनुद्ध्रुतगीततूर्ये-  
 रावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥ २६  
 त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्ध-  
 मस्मदगृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु ।  
 क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः  
 सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥ २७  
 त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः ।  
 मूर्त्तमूर्त्तैः परं बीजमतः पाहि सनातन ॥ २८  
 यस्मात् त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम् ।  
 रुद्रादित्यवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २९  
 यस्मादशून्यमरैर्नारीभिश्च शिवेन च ।  
 तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ ३०  
 एवमध्यर्थं तं मेरुं मन्दरं चाभिपूजयेत् ।  
 यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेन च वर्षतः ॥ ३१  
 शोभसे मन्दर क्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव ।  
 यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्धीपे त्वं गन्धमादन ॥ ३२  
 गन्धर्ववनशोभावानतः कीर्तिर्दृढास्तु मे ।  
 यस्मात् त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥ ३३  
 हिरण्मयाश्वत्थशिरास्तस्मात् पुष्टिर्धुवास्तु मे ।  
 उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात् सावित्रेण वनेन च ॥ ३४  
 सुपार्श्वं राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे ।  
 एवमामन्त्रं तान् सर्वान् प्रभाते विमले पुनः ॥ ३५  
 स्नात्वाथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् ।  
 विष्कम्भपर्वतान् दद्यादृत्विग्भ्यः क्रमशो मुने ॥ ३६

उसी प्रकार मधुसे बने हुए भद्रसर नामक सरोवर और चमकीली चाँदीसे निर्मित वनसे संयुक्त कर देना चाहिये । तत्पश्चात् पूर्व दिशामें एक हाथ लम्बा, चौड़ा और गहरा कुण्ड बनाकर तिल, यव, धी, समिधा और कुशोंद्वारा चार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे हवन करावे । वे सभी ब्राह्मण वेदों और पुराणोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, अनिन्द्य चरित्रवान् और सुरूप हों । रातमें मधुर शब्दमें गायन और तुरही आदि वाद्योंका बादन कराते हुए जागरण करना चाहिये । अब मैं इन पर्वतोंके आवाहनका प्रकार बतला रहा हूँ । (उन्हें इस प्रकार आवाहित करे—) अमरपर्वत ! तुम समस्त देवगणोंके निवासस्थान और रत्नोंकी निधि हो । मैंने परम भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा की है, इसलिये तुम हमारे घरोंमें स्थित विरुद्धभाव अर्थात् वैरभावको शीघ्र ही नष्ट कर दो, हमारे कल्याणका विधान करो और हमें श्रेष्ठ शान्ति प्रदान करो । सनातन ! तुम्हीं ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शङ्कर और सूर्य हो तथा मूर्त् (साकार) और अमूर्त् (निराकार)-से परे संसारके बीज (कारणरूप) हो, अतः हमारी रक्षा करो । चूँकि तुम लोकपालों, विश्वमूर्ति भगवान् विष्णु, रुद्र, सूर्य और वसुओंके निवासस्थान हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो । चूँकि तुम देवताओं, देवाङ्गनाओं और शिवजीसे अशून्य अर्थात् संयुक्त रहते हो, इसलिये इस निखिल दुःखोंसे भरे हुए संसार-सागरसे मेरा उद्धार करो ॥ २२—३० ॥

इस प्रकार उस मेरुगिरिकी अर्चना करनेके पश्चात् मन्दराचलकी पूजा करनी चाहिये—‘मन्दराचल ! चूँकि तुम चैत्ररथ नामक वन और भद्राश्व नामक वर्षसे सुशोभित हो रहे हो, इसलिये शीघ्र ही मेरे लिये तुष्टिकारक बनो ।’ ‘गन्धमादन ! चूँकि तुम जम्बूद्धीपमें शिरोमणिके समान सुशोभित और गन्धर्वोंके वनोंकी शोभासे सम्पन्न हो, इसलिये मेरी कीर्तिको सुदृढ़ कर दो ।’ ‘विपलु ! चूँकि तुम केतुमाल वर्ष और वैभ्राज नामक वनसे सुशोभित हो और तुम्हारे शिखरपर स्वर्णमय पीपलका वृक्ष विराजमान है, इसलिये (तुम्हारी कृपासे) मुझे निश्चला पुष्टि प्राप्त हो ।’ ‘सुपार्श्व ! चूँकि तुम उत्तर कुरुवर्ष और सावित्र नामक वनसे नित्य शोभित हो रहे हो, अतः मुझे अक्षय लक्ष्मी प्रदान करो ।’ इस प्रकार उन सभी पर्वतोंको आमन्त्रित करके पुनः निर्मल प्रभात होनेपर स्नान आदिसे निवृत्त हो बीचवाला श्रेष्ठ पर्वत गुरु (यज्ञ करानेवाले)-को दान कर दे । मुने ! इसी प्रकार क्रमशः विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर

गाश्र दद्याच्चतुर्विंशत्यथवा दश नारद ।  
नव सप्त तथाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान् ॥ ३७  
एकापि गुरवे देया कपिला च पयस्त्विनी ।  
पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः ॥ ३८  
त एव पूजने मन्त्रास्त एवोपस्करा मताः ।  
ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वदा ॥ ३९  
स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते ।  
उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते ॥ ४०  
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु नारद ।  
दानकाले च ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम् ॥ ४१  
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ते प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।  
अन्नाद् भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते ॥ ४२  
अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ।  
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥ ४३  
अनेन विधिना यस्तु दद्याद् धान्यमयं गिरिम् ।  
मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते ॥ ४४  
अप्सरोगणगन्धवैराकीर्णे विराजता ।  
विमानेन दिवः पृष्ठमायाति स्म निषेवितः ।  
धर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ॥ ४५

देना चाहिये । नारद ! इसके बाद चौबीस, दस, नौ, आठ, सात अथवा पाँच गौ दान करनेका विधान है । यदि यजमान निर्धन हो तो वह एक ही दुधारू कपिला गौ गुरुको दान कर दे । सभी पर्वतदानोंके लिये यही विधि कही गयी है । उनके पूजनमें ग्रहों, लोकपालों और ब्रह्मा आदि देवताओंके वे ही मन्त्र हैं और वे ही सामग्रियाँ भी मानी गयी हैं । सभी पर्वत-पूजनोंमें उन-उनके मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये । यजमानको सदा व्रतमें उपवास करना चाहिये । यदि असमर्थ हो तो रातमें एक बार भोजन किया जा सकता है । नारद ! अब तुम सभी पर्वतदानोंकी विधि, दानकालमें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र और उन दानोंसे प्राप्त होनेवाला जो फल है, वह सब क्रमशः सुनो । (दान देते समय धान्यशैलसे यों प्रार्थना करनी चाहिये—) ‘पर्वतश्रेष्ठ ! अन्नको ही ब्रह्म कहा जाता है; क्योंकि अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित हैं । अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे जगत् वर्तमान है, इसलिये अन्न ही लक्ष्मी है, अन्न ही भगवान् जनार्दन है, इसलिये धान्यशैलके रूपसे तुम मेरी रक्षा करो ।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे धान्यमय पर्वतका दान करता है, वह सौ मन्वन्तरसे भी अधिक कालतक देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है । अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा व्यास सुन्दर विमानसे वह स्वर्गलोकमें आता है और उनके द्वारा पूजित होता है । पुनः पुण्यक्षय होनेपर वह इस लोकमें निस्संदेह राजाधिराज होता है ॥ ३१—४५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दानमाहात्म्यं नाम ऋशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें दानमाहात्म्य नामक तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८३ ॥



## चौरासीवाँ अध्याय

### लवणाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम्।  
 यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति शिवसंयुतान्॥ १  
 उत्तमः षोडशद्व्रोणैः कर्तव्यो लवणाचलः।  
 मध्यमः स्थात् तदर्थेन चतुर्भिरधमः स्मृतः॥ २  
 वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादूर्ध्वं तु कारयेत्।  
 चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान् कारयेत् पृथक्॥ ३  
 विधानं पूर्ववत् कुर्याद् ब्रह्मादीनां च सर्वदा।  
 तद्वद्वेममयान् सर्वाल्लोकपालान् निवेशयेत्॥ ४  
 सरांसि कामदेवादींस्तद्वदत्रापि कारयेत्।  
 कुर्याज्ञागरणं चापि दानमन्त्रान् निबोधत्॥ ५  
 सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणाचलः।  
 तद्वानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥ ६  
 यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना।  
 प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७  
 विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम्।  
 तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥ ८  
 अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम्।  
 उमालोके वसेत् कल्पं ततो याति परां गतिम्॥ ९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे लवणाचलकीर्तनं नाम चतुरशीतितमोध्यायः॥ ८४॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें लवणाचलकीर्तन नामक चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८४॥

ईश्वरने कहा—नारद! अब मैं श्रेष्ठ लवणाचलके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य शिव-संयुक्त लोकोंको अर्थात् शिवलोकोंको प्राप्त करता है। सोलह द्वोण नमकसे लवणाचल बनाना चाहिये; क्योंकि यही उत्तम है। उसके आधे आठ द्वोणसे मध्यम और (चार<sup>२</sup>) द्वोणसे बना हुआ अधम माना गया है। निर्धन मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार एक द्वोणसे कुछ अधिकका बनवाना चाहिये। इसके अतिरिक्त (पर्वत-परिमाणके) चौथाई द्वोणसे पृथक्-पृथक् (चार) विष्कम्भपर्वतोंका निर्माण कराना उचित है। ब्रह्मा आदि देवताओंके पूजनका विधान सदा पूर्ववत् होना चाहिये। उसी प्रकार सभी स्वर्णमय लोकपालोंके स्थापनका विधान है। पहलेकी तरह इसमें भी कामदेव आदि देवों और सरोवरोंका निर्माण कराना चाहिये तथा रातमें जागरण भी करना चाहिये। अब दानमन्त्रोंको सुनो—  
 ‘पर्वतश्रेष्ठ! चूँकि यह नमकरूप रस सौभाग्य-सरोवरसे प्रादुर्भूत हुआ है, इसलिये उसके दानसे तुम मेरी रक्षा करो। चूँकि सभी प्रकारके अन्न एवं रस नमकके बिना उत्कृष्ट नहीं होते, अर्थात् स्वादिष्ट नहीं लगते तथा तुम शिव और पार्वतीको सदा परम प्रिय हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। चूँकि तुम भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हो और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हो, इसलिये तुम पर्वतरूपसे मेरा संसार-सागरसे उद्धार करो।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे लवणपर्वतका दान करता है, वह एक कल्पतक पार्वतीलोकमें निवास करता है और अन्तमें परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है॥ १—९॥

१. बल्लालसेनने ‘दानसागर’ इसे मत्स्य अ० ८४का कहकर ‘विष्णुदेवत दान’ माना है। यह वर्णन पद्मपु० १। १२१। ११७—३५, भविष्योत्तरपु० १२६ और महाभारत आदिमें भी आता है।

२. यह ‘विधानपरिजात’ कार मदनभूपालका मत है। उन्होंने सर्वत्र लम्बी टिप्पणियाँ लिखी हैं।

३. यह वर्णन पहले सौभाग्यशयनमें आ चुका है।

## पचासीवाँ अध्याय

गुडपर्वतके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुन्तम्।  
यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् स्वर्गमाप्नोति पूजितम्॥ १  
उत्तमो दशभिभरैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः।  
त्रिभिभरैः कनिष्ठः स्यात् तदर्थेनाल्पवित्तवान्॥ २  
तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम्।  
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् सरांसि वनदेवताः॥ ३  
होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम्।  
धान्यपर्वतवत् कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ ४  
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः।  
सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम्॥ ५  
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा।  
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः॥ ६  
मम तस्मात् परां लक्ष्मीं ददस्व गुडपर्वत।  
यस्मात् सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत।  
निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७  
अनेन विधिना यस्तु दद्याद् गुडमयं गिरिम्।  
पूज्यमानः स गन्धवैर्गौरीलोके महीयते॥ ८  
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्।  
आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः॥ ९

इश्वरने कहा—नारद! अब मैं (उस) उत्तम गुडपर्वतके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका दान करनेसे धनी मनुष्य देवपूजित हो स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है। दस भार गुडसे बना हुआ गुडपर्वत उत्तम, पाँच भारसे बना हुआ मध्यम और तीन भारसे बना हुआ कनिष्ठ कहा जाता है। स्वल्प वित्तवाला मनुष्य इसके आधे परिमाणसे भी काम चला सकता है। इसमें भी देवताओंका आमन्त्रण, पूजन, स्वर्णमय वृक्ष, देव-पूजन, विष्कम्भपर्वत, सरोवर, वन-देवता, हवन, जागरण और लोकपालोंकी स्थापना आदि धान्यपर्वतकी ही भाँति करना चाहिये। उस समय यह मन्त्र उच्चारण करे—‘जिस प्रकार देवगणोंमें ये विश्वात्मा जनार्दन, वेदोंमें सामवेद\* योगियोंमें महादेव, समस्त मन्त्रोंमें ॐकार और नारियोंमें पार्वती श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार रसोंमें इक्षु-रस सदा श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये गुडपर्वत! तुम मुझे उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रदान करो। गुडपर्वत! चूँकि तुम सौभाग्यदायिनी पार्वतीके भ्राता और निवासस्थान हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार गुडपर्वतका दान करता है, वह गन्धवैर्गौरीलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा सौ कल्प व्यतीत होनेपर दीर्घायु एवं नीरोगतासे सम्पन्न होकर भूतलपर जन्म ग्रहण करता है और शत्रुओंके लिये अजेय होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है॥ १—९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुडपर्वतकीर्तनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें गुडपर्वतकीर्तन नामक पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८५॥



\* इस पुराणमें सामवेदकी सर्वत्र प्रमुख रूपसे चर्चा है, यह ध्येय है।

## छियासीवाँ अध्याय

### सुवर्णाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्।  
यस्य प्रदानाद् भवनं वैरिज्यं याति मानवः ॥ १  
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः।  
तदर्थेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तिः।  
दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः ॥ २  
धान्यपर्वतवत् सर्वं विदध्यान्मुनिपुङ्गवं।  
विष्कम्भशैलास्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत् ॥ ३  
नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः।  
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात् पाहि शिलोच्चय ॥ ४  
यस्मादग्रेरपत्यं\* त्वं यस्मात् तेजो जगत्पतेः।  
हेमपर्वतरूपेण तस्मात् पाहि नगोत्तम ॥ ५  
अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्वतम्।  
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम्।  
तत्र कल्पशतं तिष्ठेत् ततो याति परां गतिम् ॥ ६

ईश्वरने कहा—नारद! अब मैं पापहारी एवं श्रेष्ठ सुवर्णाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। एक हजार पलका सुवर्णाचल उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका अधम (साधारण) माना गया है। अल्प वित्तवाला भी अपनी शक्तिके अनुसार गर्वरहित होकर एक पलसे कुछ अधिक सोनेका पर्वत बनवा सकता है। मुनिश्रेष्ठ! शेष सारे कार्योंका विधान धान्यपर्वतकी भाँति ही करना चाहिये। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंकी भी स्थापना कर उन्हें ऋत्विजोंको दान करनेका विधान है। (प्रार्थना-मन्त्र इस प्रकार है—) ‘शिलोच्चय! तुम ब्रह्मके बीजरूप हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे गर्भमें ब्रह्मा स्थित रहते हैं, अतः तुम्हें प्रणाम है। तुम अनन्त फलके दाता हो, इसलिये मेरी रक्षा करो। जगत्पति पर्वतोत्तम! तुम अग्निकी संतान और जगदीश्वर शिवके तेजःस्वरूप हो, अतः सुवर्णाचलके रूपसे मेरा पालन करो।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे सुवर्णाचलका दान करता है, वह परम आनन्ददायक ब्रह्मलोकमें जाता है और वहाँ सौ कल्पोंतक निवास करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १—६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सुवर्णाचलकीर्तनं नाम घडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सुवर्णाचलकीर्तन नामक छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८६ ॥

\* सुवर्णकी अग्नि-अपत्यता (अग्निकी पुत्रता) प्रसिद्ध है। इस विषयमें एक श्लोक सर्वत्र मिलता है, जो इस प्रकार है—‘आनेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूवैष्णवीं सूर्यसुताश्च गावः। लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं यः काञ्चनं गां च महीं प्रदद्यात् ॥’

## सतासीवाँ अध्याय

### तिलशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः ।  
यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकं सनातनम् ॥ १  
उत्तमो दशभिर्दోणैर्मध्यमः पञ्चभिः स्मृतः ।  
त्रिभिः कनिष्ठो विप्रेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तिः ॥ २  
पूर्ववच्चापरान् सर्वान् विष्कम्भानभितो गिरीन् ।  
दानमन्त्रान् प्रवक्ष्यामि यथावन्मुनिपुङ्गव ॥ ३  
यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्धवाः ।  
तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छान्त्यै भवत्विह ॥ ४  
हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिरक्षणम् ।  
भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचलं नमोऽस्तु ते ॥ ५  
इत्यामन्त्य च यो दद्यात् तिलाचलमनुत्तमम् ।  
स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ६  
दीर्घायुष्यमवाप्नोति पुत्रपौत्रैश्च मोदते ।  
पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥ ७

ईश्वरने कहा—नारद! इसके बाद मैं तिलशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका विधिपूर्वक दान करनेसे मनुष्य सनातन विष्णुलोकको प्राप्त होता है। विप्रवर! दस द्रोण तिलका बना हुआ तिलशैल उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका कनिष्ठ बतलाया गया है। इसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंकी स्थापना तथा अन्यान्य सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। मुनिपुङ्गव! अब मैं दानके मन्त्रोंको यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ। ‘चौंकि मधुदैत्यके वधके समय भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए पसीनेकी बूँदोंसे तिल, कुश और उड़दकी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये तुम इस लोकमें मुझे शान्ति प्रदान करो। शैलेन्द्र तिलाचल! चौंकि देवताओंके हव्य और पितरोंके कव्य—दोनोंमें सम्मिलित होकर तिल ही सब ओरसे (भूत-प्रेतादिसे) रक्षा करता है, इसलिये तुम मेरा भवसागरसे उद्धार करो, तुम्हें नमस्कार है। इस प्रकार आमन्त्रित कर जो मनुष्य श्रेष्ठ तिलाचलका दान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। उसे इस लोकमें दीर्घायुकी प्राप्ति होती है, वह पुत्र एवं पौत्रोंको प्राप्तकर उनके साथ आनन्द मनाता है तथा अन्तमें देवताओं, गन्धर्वों और पितरोंद्वारा पूजित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है ॥ १—७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तिलाचलकीर्तनं नाम सप्ताशीतिमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तिलाचलकीर्तन नामक सतासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८७ ॥

## अठासीवाँ अध्याय

### कार्पासाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम् ।  
यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १  
कार्पासपर्वतस्तद्वद् विंशदभारैरिहोत्तमः ।

ईश्वरने कहा—नारद! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ कार्पासाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य धनवाला परमपदको प्राप्त कर लेता है। इस लोकमें बीस भार रूईसे बना हुआ कार्पासपर्वत उत्तम,

दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः ।  
 भरेणात्पूर्वनो दद्याद् वित्तशान्ध्यविवर्जितः ॥ २  
 धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव ।  
 प्रभातायां तु शर्वर्या दद्यादिदमुदीरयन् ॥ ३  
 त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा ।  
 कार्पासाद्रे नमस्तुभ्यमधौघध्वंसनो भव ॥ ४  
 इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ ।  
 रुद्रलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥ ५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कार्पासशैलकीर्तनं नामाष्टाशीतिमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कार्पासशैलकीर्तन नामक अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८८ ॥

## नवासीवाँ अध्याय

घृताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् ।  
 तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥ १  
 विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः ।  
 दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः ॥ २  
 अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः ।  
 विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्थाशेन कल्पयेत् ॥ ३  
 शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् ।  
 कारयेत् संहतानुच्चान् यथाशोभं विधानतः ॥ ४  
 वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः ।  
 धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ॥ ५  
 अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमसुरार्चनम् ।  
 प्रभातायां तु शर्वर्या गुरवे तन्निवेदयेत् ।  
 विष्कम्भपर्वतांस्तद्वद्वत्तिग्रभ्यः शान्तमानसः ॥ ६

दस भारसे बना हुआ मध्यम और पाँच भारसे बना हुआ अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य कृपणता छोड़कर एक भार कपाससे बने हुए पर्वतका दान कर सकता है। मुनिश्रेष्ठ! धान्यपर्वतकी भाँति सारी सामग्री एकत्र कर रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल इसे दान करनेका विधान है। उस समय ऐसा मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—‘कार्पासाचल! चूँकि इस लोकमें तुम्हीं सदा सभी लोगोंके शरीरके आच्छादन हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे पापसमूहका विनाश कर दो।’ इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् शिवके संनिधानमें कार्पासाचलका दान करता है, वह एक कल्पतक रुद्रलोकमें निवास करनेके पश्चात् भूतलपर राजा होता है ॥ १—५ ॥

ईश्वरने कहा—नारद! इसके बाद मैं दिव्य तेजसे सम्पन्न, अमृतमय और महान्-से-महान् पापोंके विनाशक श्रेष्ठ घृताचलका वर्णन कर रहा हूँ। बीस घड़े\* घीसे बना हुआ घृताचल उत्तम, दससे मध्यम और पाँचसे अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प वित्तवाला भी यदि करना चाहे तो वह दो ही घड़े घृतसे विधिपूर्वक घृताचलकी रचना करके दान कर सकता है। पुनः उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनी चाहिये। उन सभी घड़ोंके ऊपर अगहनी चावलसे परिपूर्ण पात्र रखा जाय और उन्हें विधिपूर्वक शोभाका ध्यान रखते हुए एकके ऊपर एक रखकर ऊँचा कर दिया जाय। उन्हें श्वेत वस्त्रोंसे परिवेषित कर दिया जाय और उनके निकट गन्ना और फल आदि रख दिये जायँ। इसमें शेष सारा विधान धान्यपर्वतकी ही भाँति बतलाया गया है। देवताओंकी स्थापना, हवन और देवार्चन भी उसी प्रकार करना चाहिये। रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल (यजमान) शान्तमनसे वह घृताचल गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्तिविजोंको दान कर देनेका विधान है।

\* मदन, नीलकण्ठ आदि व्याख्याता यहाँ कुम्भसे पात्रका ही अर्थ लेते हैं—‘कुम्भः पात्ररूप एव द्रवत्वेन धृतधारणयोग्यपरिमाणः।’

संयोगाद् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः ।  
 तस्माद् घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शङ्करः ॥ ७  
 यस्मात् तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्विध्यवस्थितम् ।  
 घृतपर्वतरूपेण तस्मात् त्वं पाहि नोऽनिशम् ॥ ८  
 अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम् ।  
 महापातकयुक्तोऽपि लोकमाप्नोति शाम्भवम् ॥ ९  
 हंससारसयुक्तेन किङ्गिणीजालमालिना ।  
 विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः ।  
 विहरेत् पितृभिः सार्थं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे घृताचलकीर्तनं नामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें घृताचलकीर्तन नामक नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८९ ॥

(उस समय इस अर्थवाले मन्त्रका पाठ करना चाहिये—) ‘चूँकि अमृत और अग्निके संयोगसे घृत उत्पन्न हुआ है, इसलिये अग्निस्वरूप विश्वात्मा शङ्कर इस व्रतसे प्रसन्न हों। चूँकि ब्रह्म तेजोमय है और घीमें विद्यमान है, ऐसा जानकर तुम घृतपर्वतरूपसे रात-दिन हमारी रक्षा करो।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे इस श्रेष्ठ घृताचलका दान करता है, वह महापापी होनेपर भी शिवलोकको प्राप्त होता है। वहाँ वह हंस और सारस पक्षियोंकी चित्रकारी क्षुद्र घंटिका (किङ्गिणीजाल)-से सुशोभित तथा विमानपर आरुढ़ होकर अप्सराओं, सिद्धों और विद्याधरोंसे घिरा हुआ पितरोंके साथ प्रलय-कालतक विहार करता है ॥ १—१० ॥

## नब्बेवाँ अध्याय

### रत्नाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् ।  
 मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः ॥ १  
 मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः ।  
 चतुर्थशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समंततः ॥ २  
 पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः ।  
 पद्मरागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ॥ ३  
 वैदूर्यविद्मुमैः पश्चात् सम्मिश्रो विपुलाचलः ।  
 पुष्परागैः ससौपर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत् ॥ ४  
 धान्यपर्वतवत् सर्वमत्रापि परिकल्पयेत् ।  
 तद्वदावाहनं कुर्याद् वृक्षान् देवांश्च काननान् ॥ ५

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ रत्नाचलका वर्णन कर रहा हूँ। एक हजार मुक्ताफल (मोतियों)-द्वारा बना हुआ पर्वत उत्तम, पाँच सौसे बना हुआ मध्यम और तीन सौसे बना हुआ अधम (साधारण) माना गया है। कल्पित पर्वतके चतुर्थांशसे उसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंको स्थापित करना चाहिये। विद्वानोंको पूर्व दिशामें हीरा और गोमेदसे मन्दराचलकी, दक्षिणमें पद्मराग (माणिक्य) और इन्द्रनील (नीलम) मणिके संयोगसे गन्धमादनकी, पश्चिममें वैदूर्य और मूँगेके सम्मिश्रणसे विपुलाचलकी और उत्तरमें गारुत्मतमणिसहित पुष्पराग (पोखराज) मणिसे सुपार्श्व पर्वतकी स्थापना करनी चाहिये।\* इस दानमें भी धान्यपर्वतकी तरह सारे उपकरणोंकी कल्पना करे। उसी प्रकार स्वर्णमय देवताओं, वनों और वृक्षोंका स्थापन एवं आवाहन करे

\* इन रत्नोंकी स्थापनामें नारदपुराण १। ५६। २८२, शुक्रनी० ४। २ आदिमें निर्दिष्ट दिक्षालों तथा दिगीश ग्रहोंके प्रिय रत्नोंका भी ध्यान रखा गया है।

पूजयेत् पुष्पगन्थादैः प्रभाते च विमत्सरः ।  
 पूर्ववद् गुरुऋत्विभ्य इमान् मन्त्रानुदीरयेत् ॥ ६  
 यदा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः ।  
 त्वं च रत्नमयो नित्यं नमस्तेऽस्तु सदाचल ॥ ७  
 यस्माद् रत्नप्रदानेन तुष्टि प्रकुरुते हरिः ।  
 सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत ॥ ८  
 अनेन विधिना यस्तु दद्याद् रत्नमयं गिरिम् ।  
 स याति विष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः ॥ ९  
 यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्छेह नराधिप ।  
 रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिषो भवेत् ॥ १०  
 ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम् ।  
 तत् सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ११

इति श्रीमात्ये महापुराणे रत्नाचलकीर्तनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ १० ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रत्नाचलकीर्तन नामक नव्वेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

तथा पुष्प, गन्ध आदिसे उनका पूजन करे । प्रातःकाल मत्सररहित होकर वह सारा सामान गुरु और ऋत्विजोंको दान कर दे । उस समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—‘अचल ! जब सभी देवगण सम्पूर्ण रत्नोंमें निवास करते हैं, तब तुम तो नित्य रत्नमय ही हो; अतः तुम्हें सदा हमारा नमस्कार प्राप्त हो । पर्वत ! चौंकि सदा रत्नका दान करनेसे श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं, अतः तुम हमारी रक्षा करो ।’ नराधिप ! जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे रत्नमय पर्वतका दान करता है, वह इन्द्रसे सत्कृत हो विष्णु-सालोक्यको प्राप्त कर लेता है और वहाँ सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास करता है । पुनः इस लोकमें जन्म लेनेपर वह सौन्दर्य, नीरोगता और सदृशोंसे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है । साथ ही उसके द्वारा इहलोक अथवा परलोकमें जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप किये गये होते हैं, वे सभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्रद्वारा प्रहार किया गया हुआ पर्वत ॥ १—११ ॥

## इक्यानबेवाँ अध्याय

### रजताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुज्ञम् ।  
 यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकमनुज्ञम् ॥ १  
 दशभिः पलसाहस्रैरुज्ञमो रजताचलः ।  
 पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्थेनाधमः स्मृतः ॥ २  
 अशक्तो विंशतेरुद्धर्वं कारयेच्छक्तिस्तदा ।  
 विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥ ३  
 पूर्ववद् राजतान् कुर्वन् मन्दरादीन् विधानतः ।  
 कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद् बुधः ॥ ४  
 ब्रह्मविष्णवर्कवान् कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः ।  
 राजतं स्याद् यदन्येषां कार्यं तदिह काञ्छनम् ॥ ५

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ रौप्याचल अर्थात् रजतशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ चन्द्रलोकको प्राप्त करता है । दस हजार पल चाँदीसे बना हुआ रजताचल उत्तम, पाँच हजार पलसे बना हुआ मध्यम और ढाई हजार पलसे बना हुआ अधम कहा गया है । यदि दाता ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे कुछ अधिक चाँदीद्वारा पर्वतका निर्माण कराना चाहिये । उसी प्रकार प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनेका विधान है । पहलेकी तरह चाँदीके द्वारा मन्दर आदि पर्वतोंका निर्माण कर उनके नितम्बभागको सोनेसे सुशोभित कर दे । उनपर लोकपालोंकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यकी मूर्तियोंसे भी संयुक्त कर दे । तत्पश्चात् बुद्धिमान् दाता इन सबकी विधिपूर्वक अर्चना करे । सारांश यह है कि अन्य पर्वतोंमें जो उपकरण चाँदीके होते हैं, वे सभी इसमें सुवर्णके होने चाहिये ।

शेषं तु पूर्ववत् कुर्याद्गोमजागरणादिकम्।  
दद्यात् ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम्॥ ६  
  
विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः \*।  
इमं मन्त्रं पठन् दद्याद् दर्भपाणिर्विमत्सरः॥ ७  
  
पितृणां वल्लभो यस्माद्ग्रीन्द्राणां शिवस्य च।  
पाहि राजत तस्मान्नः शोकसंसारसागरात्॥ ८  
  
इत्थं निवेद्य यो दद्याद् रजताचलमुत्तमम्।  
गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ९  
  
सोमलोके स गन्धर्वैः किञ्चराप्सरसां गणैः।  
पूज्यमानो वसेद् विद्वान् यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १०

शेष हवन, जागरण आदि सारे कार्य धान्यपर्वतकी भाँति ही करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा गुरु और ऋत्विजोंका पूजन कर रजताचल गुरुको और विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय मत्सररहित हो हाथमें कुश लेकर इस मन्त्रका पाठ करे—‘रजताचल! तुम पितरोंको तथा श्रीहरि, सूर्य, इन्द्र और शिवको परम प्रिय हो, इसलिये शोकरूपी संसार-सागरसे मेरी रक्षा करो।’ जो मानव इस प्रकार निवेदन कर श्रेष्ठ रजताचलका दान करता है, वह दस हजार गो-दानका फल प्राप्त करता है। वह विद्वान् चन्द्रलोकमें गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके समूहोंसे पूजित होकर प्रलयकालतक निवास करता है॥ १—१०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रौप्याचलकीर्तनं नामैकनवितिमोऽध्यायः॥ ११॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रौप्याचलकीर्तन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११॥

## बानबेवाँ अध्याय

शर्कराशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य तथा राजा धर्ममूर्तिके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें लवणाचलदानका महत्त्व

ईश्वर उच्चाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शर्कराशैलमुत्तमम्।  
यस्य प्रदानाद् विष्वर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा॥ १  
अष्टभिः शर्कराभौरुत्तमः स्यान्महाचलः।  
चतुर्भिर्मर्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामवरः स्मृतः॥ २  
भारेण वार्धभारेण कुर्याद् यः स्वल्पविज्ञवान्।  
विष्कम्भपर्वतान् कुर्यात् तुरीयांशेन मानवः॥ ३  
धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्यामरसंयुतम्।  
मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्य हेमतरुत्रयम्॥ ४

भगवान् शंकरने कहा—नारदजी! इसके पश्चात् मैं परमोत्तम शर्कराशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे भगवान् विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा संतुष्ट रहते हैं। आठ भार शक्करसे बना हुआ शर्कराचल उत्तम, चार भारसे बना हुआ मध्यम और दो भारसे बना हुआ अधम कहा गया है। जो मानव स्वल्प सम्पत्तिवाला हो, वह एक भार अथवा आधे भारसे भी शर्कराचल बनवा सकता है। प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंका भी निर्माण करना चाहिये। पुनः धान्यपर्वतकी तरह सारी सामग्री प्रस्तुत करके मेरुपर्वतकी भाँति इसके ऊपर भी स्वर्णमयी देवमूर्तिके साथ

\* हेमाद्रि, कल्पतरु, पद्मपुराणादिमें—यहाँ ‘विलेपनैः’ पाठ है।

मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः ।  
 एतद् वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निवेशयेत् ॥ ५  
 हरिचन्दनसंतानौ पूर्वपश्चिमभागयोः ।  
 निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छक्कराचले ॥ ६  
 मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत् ।  
 गन्धमादनशृङ्गे च धनदः स्यादुद्दम्भुखः ॥ ७  
 प्राइमुखो वेदमूर्तिश्च हंसः स्याद् विपुलाचले ।  
 हैमी सुपाश्च सुरभिर्दक्षिणाभिमुखी भवेत् ॥ ८  
 धान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनविधानकम् ।  
 कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् ।  
 ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान् मन्त्रानुदीरयन् ॥ ९  
 सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शक्करायुतः ।  
 तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ॥ १०  
 अमृतं पिबतां ये तु निषेतुर्भुवि शीकराः ।  
 देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शक्कराचल ॥ ११  
 मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शक्करा यतः ।  
 तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥ १२  
 यो दद्याच्छक्कराशैलमनेन विधिना नरः ।  
 सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम् ॥ १३  
 चन्द्रताराकंसंकाशमधिरुद्धानुजीविभिः ।  
 सहैव यानमातिष्ठेत् तत्र विष्णुप्रचोदितः ॥ १४  
 ततः कल्पशतान्ते तु समद्वीपाधिपो भवेत् ।  
 आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मार्बुदत्रयम् ॥ १५  
 भोजनं शक्तिः दद्यात् सर्वशैलेष्वमत्सरः ।  
 सर्वत्राक्षारलवणमश्रीयात् तदनुज्ञया ।  
 पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद् ब्राह्मणालयम् ॥ १६

ईश्वर उवाच

आसीत् पुरा बृहत्कल्पे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः ।  
 सुहच्छक्रस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः ॥ १७

मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्ष—इन तीनों वृक्षोंकी भी स्वर्णनिर्मित मूर्ति स्थापित करे। इन तीनों वृक्षोंको तो प्रायः सभी पर्वतोंपर स्थापित कर देना चाहिये। सभी पर्वतोंके पूर्व और पश्चिम भागमें हरिचन्दन और कल्पवृक्षको निविष्ट करना चाहिये। शक्कराचलमें तो इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये। मन्दराचलपर कामदेवकी मूर्ति सदा पश्चिमाभिमुखी, गन्धमादनके शिखरपर कुबेरकी मूर्ति उत्तराभिमुखी, विपुलाचलपर वेदमूर्ति—ब्रह्मा और हंसकी मूर्ति पूर्वाभिमुखी और सुपाश्च पर्वतपर स्वर्णमयी गौकी मूर्ति दक्षिणाभिमुखी होनी चाहिये ॥ १—८ ॥

तत्पश्चात् आवाहन आदि सारा विधान धान्यपर्वतकी भाँति करके अन्तमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए बिचला प्रधान पर्वत गुरुको और चारों विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे । (वे मन्त्र इस प्रकारके अर्थवाले हैं—) ‘शैलेन्द्र! यह शक्कराचल निर्मित पर्वत सौभाग्य और अमृतका सार है, इसलिये तुम मेरे लिये सदा आनन्दकारक होओ। शक्कराचल! देवताओंके अमृत-पान करते समय जो बूँदें भूतलपर टपक पड़ी थीं, उन्हींसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अतः तुम हमारी रक्षा करो। महाशैल! चूँकि शक्करा कामदेवके धनुषके मध्यभागसे प्रादुर्भूत हुई है और तुम शक्करामय हो, इसलिये संसारसागरसे मुझे बचाओ।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार शक्कराशैलका दान करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है। वहाँ वह भगवान् विष्णुकी आज्ञासे अपने आश्रितोंके साथ ही सूर्य, चन्द्र और तारकाओंके समान कान्तिमान् विमानपर आरूढ़ होकर सुशोभित होता है। पुनः सौ कल्पोंके बाद तीन अरब जन्मोंतक भूतलपर दीर्घायु और नीरोगतासे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। सभी पर्वतदानोंमें मत्सरहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करनेका विधान है। सर्वत्र गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुकूल क्षार (नमक)-रहित भोजन करना चाहिये। पुनः पर्वतदानकी सारी सामग्री ब्राह्मणके घर स्वयं भेजवा देनी चाहिये ॥ ९—१६ ॥

ईश्वरने कहा—नारद! पहले बृहत्कल्पमें धर्ममूर्ति नामक एक राजा हुआ था। उसके तेजके सामने सूर्य और चन्द्रमा आदि भी कान्तिहीन हो जाते थे। वह इन्द्रका मित्र था। उसने हजारों दैत्योंका वध किया था।

सोमसूर्यादियो यस्य तेजसा विगतप्रभाः ।  
अभवज्ञातशो येन शत्रवशं पराजिताः ।  
यथेच्छासूपधारी च मनुष्योऽप्यपराजितः ॥ १८  
तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुन्दरी ।  
लक्ष्मीवद् दिव्यरूपेण निर्जितामरसुन्दरी ॥ १९  
राजस्तस्याऽप्यमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।  
दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते ॥ २०  
नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित् स मुच्यते ।  
कदाचिदास्थानगतं पप्रच्छ स पुरोधसम् ।  
विस्मयेनावृतो राजा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ २१

राजेवाच

भगवन् केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा ।  
कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम् ॥ २२

वसिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा ।  
तया दत्तश्चतुर्दश्यां गुरुवे लवणाचलः ।  
हेमवृक्षादिभिः सार्थं यथावद् विधिपूर्वकम् ॥ २३  
शूद्रः सुवर्णकारश्च नाम्ना शौण्डोऽभवत् तदा ।  
भृत्यो लीलावतीर्गेहे तेन हेम्ना विनिर्मिताः ॥ २४  
तरवः सुरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव ।  
अतिरूपेण सम्पन्ना घटयित्वा बिना भृतिम् ।  
धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा न गृह्णाति कथञ्चन ॥ २५  
उज्ज्वालिताश्च तत्पत्न्या सौवर्णामरपादपाः ।  
लीलावती गिरेः पार्श्वे परिचर्यां च पार्थिव ॥ २६  
कृत्वा ताभ्यामशाढ्येन गुरुशुश्रूषणादिकम् ।  
सा च लीलावती वेश्या कालेन महतापि च ॥ २७  
कालधर्ममनुप्राप्ता कर्मयोगेन नारद ।  
सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम् ॥ २८  
योऽसौ सुवर्णकारस्तु दरिद्रोऽप्यतिसत्त्ववान् ।  
न मौल्यमादाद् वेश्यातः स भवानिह साम्प्रतम् ॥ २९

वह इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला मनुष्य होनेपर भी किसीसे परास्त नहीं हुआ था, अपितु उसके द्वारा सैकड़ों शत्रु पराजित हो चुके थे। उसकी पलीका नाम भानुमती था। वह त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसने लक्ष्मीके समान अपने दिव्य रूपसे देवाङ्गनाओंको भी पराजित कर दिया था। वह दस हजार नारियोंके बीचमें लक्ष्मीकी तरह सुशोभित होती थी। राजा धर्ममूर्तिकी वह पटरानी उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। उसे असंख्य राजा सदा धेरे रहते थे। एक बार सभामण्डपमें आये हुए अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठसे उस राजने विस्मयविमुग्ध हो ऐसा प्रश्न किया ॥ १७—२१ ॥

राजाने पूछा—भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है? तथा किस धर्मके फलस्वरूप मेरे शरीरमें सदा प्रचुरमात्रामें उत्तम तेज विराजमान रहता है? ॥ २२ ॥

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें लीलावती नामकी एक वेश्या थी। वह शिवजीकी भक्ता थी। उसने चतुर्दशी तिथिके दिन विधिपूर्वक अपने गुरुको स्वर्णमय वृक्ष आदि उपकरणोंसहित लवणाचलका दान किया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्रजातीय शौण्ड नामक सोनार नौकर था। भूपाल! उसने ही श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण किया था। उसने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये उन मूर्तियोंको गढ़कर अत्यन्त सुन्दर बनाया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पलीने भी उन सुवर्णनिर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनोंकी सहायतासे लीलावतीने गुरु-शुश्रूषा आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। नारद! अधिक कालके व्यतीत होनेपर वह वेश्या लीलावती कर्मयोगके अनुसार जब कालधर्म (मृत्यु)-को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने वेश्यासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस समय इस जन्ममें तुम हो,

सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः ।  
 यथा सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः ।  
 सप्त्यगुज्ज्वालिताः पत्न्या सेयं भानुमती तव ॥ ३०  
 उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः  
 संजातमस्मिन् भुवनाधिपत्यम् ।  
 यस्मात् कृतं तत् परिकर्म रात्रा-  
 वनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य ॥ ३१  
 तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्व-  
 मारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः ।  
 तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्व  
 धान्याचलादीन् दशधा कुरुष्व ॥ ३२  
 तथेति सत्कृत्य स धर्ममूर्ति-  
 वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान् ।  
 धान्याचलादीञ्जशतशो मुरारे-  
 लोंकं जगामामरपूज्यमानः ॥ ३३  
 पश्येदपीमानधनोऽतिभक्त्या  
 स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीयमानान् ।  
 शृणोति भक्त्याथ मतिं ददाति  
 विकल्पः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥ ३४  
 दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पाठ्यमानैः  
 शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यैः ।  
 यः कुर्यात् किमु मुनिपुंगवेह सम्यक्  
 शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसम्प्रदानम् ॥ ३५

इति श्रीमात्ये महापुराणे पर्वतप्रदानमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें पर्वतप्रदानमाहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९२ ॥

जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सोनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देव-मूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह भानुमती तुम्हारी पटरानी है ॥ २३—३० ॥

मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चौंकि तुम दोनोंने दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायक रूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्यसम्पन्नता लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है। इस कारण तुम भी इस जन्ममें विधानपूर्वक दस प्रकारके धान्याचल आदि पर्वतोंका दान करो। तब राजा धर्ममूर्तिने ‘तथेति—ऐसा ही करूँगा’ कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और सैकड़ों बार धान्याचल आदि सभी पर्वतोंका दान किया, जिसके फलस्वरूप देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् मुरारिके लोकको प्राप्त हुआ। निर्धन मनुष्य भी यदि उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक इन पर्वत-दानोंको देखता है, मनुष्योंद्वारा दान करते समय उनका स्पर्श कर लेता है, उनकी कथाएँ सुनता है और उन्हें करनेके लिये सम्मति देता है तो वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। मुनिपुंगव! जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा भव-भयको विदीर्ण करनेवाले इन शैलेन्द्रोंके प्रसङ्गका पाठ करनेसे दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य स्वयं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इन सम्पूर्ण पर्वतदानोंको करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है? ॥ ३१—३५ ॥

## तिरानबेवाँ अध्याय

**शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मो तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन\***

सूत उवाच

**वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा।  
सर्वकामासये नित्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम्॥ १**

वैशम्पायन उवाच

**श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत्।  
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिवरन् पुनः।  
येन ब्रह्मन् विधानेन तन्मे निगदतः शृणु॥ २  
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्य ग्रन्थविस्तरम्।  
ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिचोदिताम्॥ ३  
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।  
ग्रहान् ग्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत्॥ ४  
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः।  
प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम्॥ ५  
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः।  
अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः॥ ६  
तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम्।  
गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम्॥ ७  
वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रितसमिताम्।  
संस्थापनाय देवानां चतुरस्त्रामुदद्मुखाम्॥ ८  
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत् सुरान्।  
देवतानां ततः स्थाप्या विंशतिद्वादशाधिका॥ ९  
सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।  
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः॥ १०**

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालकी बात है, एक बार सुखपूर्वक बैठे हुए वैशम्पायनजीसे शौनकने पूछा—‘महर्षे! सम्पूर्ण कामनाओंकी अविचल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये?’॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—ब्रह्मन्! लक्ष्मीकी कामनावाले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको ग्रहयज्ञका समारम्भ करना चाहिये। वह ग्रहयज्ञ जिस विधानसे करना चाहिये, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। मैं सम्पूर्ण शास्त्रोंका अवलोकन करनेके पश्चात् विस्तृत ग्रन्थको संक्षिप्तकर पुराणों एवं श्रुतियोंद्वारा आदिष्ट इस ग्रहशान्तिका वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिषी ब्राह्मणद्वारा बतलाये गये पुण्यमय दिनमें ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर ग्रहों एवं ग्रहाधिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोंने तीन प्रकारका ग्रहयज्ञ बतलाया है। पहला दस हजार आहुतियोंका, उससे बढ़कर दूसरा एक लाख आहुतियोंका तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक करोड़ आहुतियोंका होता है। दस हजार आहुतियोंवाला ग्रहयज्ञ नवग्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधिका, जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, मैं वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद) हवनकुण्डकी पूर्वोत्तर दिशामें देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधियोंसे सुशोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुनः कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्तीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये॥ २—९॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं।

\* यह पाँच आर्थवर्ण कल्पों—नक्षत्र, वैतान, संहिताविधि, अङ्गिरस एवं शान्तिकल्पमेंसे प्रथम एवं पाँचवें शान्तिकल्पका समन्वित रूप है और अर्थवर्णपरिशिष्ट, याजवल्क्यसूत्रि १। २९५—३०८, वृद्धपाराशर ११, पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ८२—८६, नारदपुराण १। ५१, भविष्यपुराण, अग्निपुराण २६४—७४ आदिमें भी प्राप्त है। मत्स्यका पाठ बहुत अशुद्ध है। उपर्युक्त ग्रन्थोंकी सहायतासे इसे पूर्णतया शुद्ध कर लिया गया है। इनकी कई बातें शान्ति-संग्रहों और ज्योतिषग्रन्थोंमें भी आयी हैं।

मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु।  
 उत्तरेण गुरुं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु॥ ११  
 पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके।  
 पश्चिमेन शनिं विद्याद् राहुं पश्चिमदक्षिणे।  
 पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः॥ १२  
 भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा।  
 स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥ १३  
 ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम्।  
 शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च॥ १४  
 केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः।  
 अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता॥ १५  
 प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः।  
 विनायकं तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च।  
 आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्चिकुमारकौ॥ १६  
 संस्मरेद् रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम्।  
 सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ।  
 मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः॥ १७  
 ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च।  
 धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्ठाद् वितानिकम्।  
 शोभनं स्थापयेत् प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम्॥ १८  
 गुडौदनं रवेद्यात् सोमाय घृतपायसम्।  
 अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरघष्टिकम्॥ १९  
 दध्योदनं च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम्।  
 शनैश्चराय कृसरामजामांसं च राहवे।  
 चित्रोदनं च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत्॥ २०  
 प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्।  
 चूतपल्लवसंच्छन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम्॥ २१  
 पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम्।  
 स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत्॥ २२  
 गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च।  
 गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमादधर्दगोकुलात्॥ २३

श्वेत चावलोद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तरकोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिणपूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्वनीकुमारोंका भी व्याहृतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेतवर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीतवर्णका, शनि और राहुको कृष्णवर्णका तथा केतुको धूप्रवर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगंधित धूप दे, ऊपर सुन्दर चँदोवा लगा दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर)-का, चन्द्रमाको धी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोद्धियाका, बुधको क्षीरषट्क (दूधमें पके हुए साठीके चावल)-का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको धी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजा नामक वृक्षके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे॥ १०—२०॥

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्ररहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुशोभित, आमके पल्लवसे आच्छादित और दो वस्त्रोंसे परिवेष्टित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे और उसे पञ्चभंग (पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आमके पल्लव)-से युक्त कर दे। उसपर वरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। विप्रेन्द्र! धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, घुड़शाल, चौराहे, बिमवट, नदीके संगम,

मृदमानीय विप्रेन्द्र सर्वोषधिजलान्विताम्।  
 स्नानार्थं विन्यसेत् तत्र यजमानस्य धर्मवित्॥ २४  
 सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः।  
 आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ २५  
 एवमावाहयेदेतानपरान् मुनिसत्तम्।  
 होमं समारभेत् सर्पिर्यवन्नीहितिलादिभिः॥ २६  
 अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः।  
 औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्॥ २७  
 एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिरेव वा।  
 होतव्या मधुसर्पिर्यां दधा चैव समन्विताः॥ २८  
 प्रादेशमात्रा अशिफा अशाखा अपलाशिनीः।  
 समिधः कल्पयेत् प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा॥ २९  
 देवानामपि सर्वेषामुपांशुः परमार्थवित्।  
 स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक्॥ ३०  
 होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरुभक्षादिकं पुनः।  
 मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्तः॥ ३१  
 उदइमुखाः प्राइमुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः।  
 मन्त्रवन्तश्च कर्तव्याश्वरवः प्रतिदैवतम्॥ ३२  
 दत्त्वा च तांश्वरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत्।  
 आकृष्णेनेति सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना॥ ३३  
 आप्यायस्वेति सोमाय मन्त्रेण जुहुयात् पुनः।  
 अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्र इति भौमाय कीर्तयेत्॥ ३४  
 अग्ने विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै।  
 बृहस्पते परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः॥ ३५  
 शुक्रं ते अन्यदिति च शुक्रस्यापि निगद्यते।  
 शनैश्चरायेति पुनः शं नो देवीति होमयेत्॥ ३६

कुण्ड और गोशालेकी मिट्ठी लाकर उसे सर्वोषधमित्रित जलसे अभिषिक्त कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधारें' यों कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। मुनिसत्तम ! तत्पश्चात् घी, यव, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पलाश, खैर, चिचिंडा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः नवों ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें प्रत्येक ग्रहके लिये मधु, घी और दहीसे युक्त एक सौ आठ अथवा अट्टाईस आहुतियाँ हवन करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें आँगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतककी मापवाली तथा बरोंह, शाखा और पत्तोंसे रहित समिधाओंकी कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंका मन्द स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे॥ २१—३०॥

पुनः चरु आदि हवनीय पदार्थोंमें घी मिलाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् व्याहृतियोंका उच्चारण करके घीकी दस आहुतियाँ अग्निमें डाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक चरु आदि पदार्थोंका हवन करें। इस प्रकार उन चरुओंका भलीभाँति हवन करनेके पश्चात् (प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रद्वारा) हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको 'आकृष्णेन रजसा०' (शुक्लयजुर्वाजसने० सं० ३३। ४३)—इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यके लिये हवन करना चाहिये। पुनः 'आप्यायस्व०' (वही १२। ११४) इस मन्त्रसे चन्द्रमाके लिये आहुति डाले। मंगलके लिये 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत०' (वही० १३। १४) इस मन्त्रका पाठ करे। बुधके लिये 'अग्ने विवस्वदुषस०'—(ऋ० सं० १। ४४। १) और देवगुरु बृहस्पतिके लिये 'परिदीया रथेन०' (ऋ० ५। ८३। ७)—ये मन्त्र माने गये हैं।\* शुक्रके लिये 'शुक्रं ते अन्यद०' (ऋ० सं० ६। ५८। १, कृष्ण० १० तैत्तिरी० सं० ४। १। ११। २)—यह मन्त्र बतलाया गया है। शनैश्चरके लिये 'शं नो देवीरभीष्टय०' (शुक्लयजु० वाज० ३६। १२३)—इस मन्त्रसे हवन करना

\* यहाँ ग्रहों और देवताओंके कुछ मन्त्र अन्य पुराणों, स्मृतियों तथा पद्धतियोंसे भिन्न निर्दिष्ट हुए हैं।

कथानश्चित्र आभुव इति राहोरुदाहृतः।  
केतुं कृणवन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये॥ ३७

आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत्।  
आपो हिष्टेत्युमायास्तु स्यो नेति स्वामिनस्तथा॥ ३८

विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः।  
इन्द्रमिदेवतायेति इन्द्राय जुहुयात् ततः॥ ३९

तथा यमस्य चायं गौरिति होमः प्रकीर्तिः।  
कालस्य ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते॥ ४०

चित्रगुप्तस्य चाज्ञानमिति मन्त्रविदो विदुः।  
अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः॥ ४१

उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तिः।  
भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पर्यते॥ ४२

सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः।  
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते॥ ४३

उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत्।  
प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः॥ ४४

नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पणां मन्त्र उच्यते।  
एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्य इति ब्रह्मण उदाहृतः॥ ४५

विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः।  
जातवेदसे सुनवामिति दुर्गोऽयमुच्यते॥ ४६

आदिप्रलब्ध्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः।  
क्राणा शिशुर्महीनां च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तिः॥ ४७

एषो उषा अपूर्वा इत्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते।  
पूर्णाहुतिस्तु मूर्धनं दिव इत्यभिपातयेत्॥ ४८

चाहिये। राहुके लिये 'कथा नश्चित्र आभुव०' (वही २७। ३९) — यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये—'केतुं कृणवन्०' (वही २९। ३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये॥ ३१—३७॥

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रम्' (ऋक्सं० ४। ३। १; कृष्णायजु० तै० सं० १। ३। १४। १) — इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देना चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि ष्टा०' (वाजस-सं० ११। ५०) — इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकके लिये 'स्यो ना०' — इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये 'इदं विष्णुः०' (शुक्लायजु० वाज० ५। १५) — इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये 'तमीशानम्०' (वाजस० २५। १८) — इस मन्त्रसे, और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिदेवताय०' — इस मन्त्रसे आहुति डाले। उसी प्रकार यमके लिये 'अयं गौः०' (वही ३। ६) — इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये—'ब्रह्मजज्ञानम्०' (वही १३। ३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। मन्त्रवेत्तालोग चित्रगुप्तके लिये 'अज्ञातम्०' — यह मन्त्र बतलाते हैं। अग्निके लिये 'अग्निं दूतं वृणीमहे' (ऋक्सं० १। १२। १; अथर्व० २०। १०। १) — यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये 'उदुत्तमं वरुणपाशम्' (ऋक्सं० १। २४। १५) — यह मन्त्र कहा गया है। वेदोंमें पृथ्वीके लिये 'पृथिव्यन्तरिक्षम्०' — इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०' (वाजस० सं० ३१। १) — यह मन्त्र कहा गया है। इन्द्रके लिये 'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत०' — यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। देवीके लिये 'उत्तानपर्णे सुभगे०' — यह मन्त्र जानना चाहिये। पुनः प्रजापतिके लिये 'प्रजापतिः०' (वाजस० सं० ३१। १७) — यह हवन-मन्त्र कहा जाता है। सर्पोंके लिये 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०' (वही १३। ६) — यह मन्त्र बतलाया जाता है। ब्रह्माके लिये 'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः०' — यह मन्त्र कहा गया है। विनायकके लिये विद्वानोंने 'अनूनम्०' — यह मन्त्र बतलाया है। 'जातवेदसे सुनवाम०' (ऋक्त० १। ९९। १) — यह दुर्गा-मन्त्र कहा जाता है। 'आदिप्रलब्ध्य रेतस०' — यह आकाशका मन्त्र बतलाया जाता है। 'क्राणा शिशुर्महीनां च०' — यह वायुका मन्त्र कहा गया है। 'एषो उषाअपूर्व्यात०' — यह अश्विनी-कुमारोंका मन्त्र कहा जाता है। 'मूर्धनं दिव०' (ऋक्त० ६। ७। १; वाज० ७। २४) — इस मन्त्रसे हवनकुण्डमें पूर्णाहुति डालनी चाहिये॥ ३८—४८॥

अथाभिषेकमन्त्रेण                    वाद्यमङ्गलगीतकैः ।  
 पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदइमुखम् ॥ ४९  
 अव्यङ्गावयवैर्ब्रह्मान्                    हेमस्वर्गदामभूषितैः ।  
 यजमानस्य कर्तव्यं चतुर्भिः स्त्रपनं द्विजैः ॥ ५०  
 सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु                    ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।  
 वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः ।  
 प्रद्युम्पश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥ ५१  
 आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्द्रितिस्तथा ।  
 वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।  
 ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्षपालास्त्वामवन्तु ते ॥ ५२  
 कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया नतिः ।  
 बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ।  
 एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः ॥ ५३  
 आदित्यश्नन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितोऽर्कजः ।  
 ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥ ५४  
 देवदानवगन्धर्वा                            यक्षराक्षसपत्रगाः ।  
 ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥ ५५  
 देवपत्न्यो ह्रुमा नागा दैत्याज्याप्सरसां गणाः ।  
 अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥ ५६  
 औषधानि च रलानि कालस्यावयवाश्च ये ।  
 सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।  
 एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ५७  
 ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।  
 सर्वोषधैः सर्वगन्धैः स्त्रापितो द्विजपुङ्गवैः ॥ ५८

यजमानः सपत्रीक ऋत्विजः सुसमाहितान् ।  
 दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद् गतविस्मयः ॥ ५९

सूर्याय कपिलां धेनुं शङ्खं दद्यात् तथेन्दवे ।  
 रक्तं धुरंधरं दद्याद् भौमाय च ककुद्मिनम् ॥ ६०

बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी ।  
 श्रेताश्चं दैत्यगुरवे कृष्णां गामकसूनवे ॥ ६१

ब्रह्मन्! इस प्रकार हवन समाप्त हो जानेपर माङ्गलिक गायन और वादनके साथ-साथ अभिषेक-मन्त्रोंद्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका चार ब्राह्मण, जो सुडौल अङ्गोंवाले तथा सुवर्णनिर्मित जंजीरसे सुशोभित हों, अभिषेक करें और ऐसा कहें—‘ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये देवता तुम्हारा अभिषेक करें। जगदीश्वर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्प और अनिरुद्ध—ये सभी तुम्हें विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्यशाली यम, निर्द्रिति, वरुण, पवन, कुबेर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिक्षपालगण—ये सभी तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, नति (नम्रता), बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि, कान्ति—ये सभी माताएँ जो धर्मकी पत्रियाँ हैं, आकर तुम्हारा अभिषेक करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—ये सभी ग्रह तृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मुनि, गौ, देवमाताएँ, देवपत्रियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र, सभी शस्त्र, नृपगण, वाहन, औषध, रक्त, (कला, काष्ठा आदि) कालके अवयव, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल, नद—ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें’ ॥ ४९—५७ ॥

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वोषध एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात् सपत्रीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेपन करे और विस्मयरहित होकर शान्तचित्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्रेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका,

आयसं राहवे दद्यात् केतुभ्यश्छागमुत्तमम् ।  
 सुवर्णेन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा ॥ ६२  
 सर्वेषामथवा गावो दातव्या हेमभूषिताः ।  
 सुवर्णमथवा दद्याद् गुरुर्वा येन तुष्टिः ।  
 समन्त्रेणैव दातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः ॥ ६३  
 कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी ।  
 तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६४  
 पुण्यस्त्वं शङ्खं पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम् ।  
 विष्णुना विधृतश्चासि ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६५  
 धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक ।  
 अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६६  
 हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः ।  
 अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६७  
 पीतवस्त्रयुगं यस्माद् वासुदेवस्य वल्लभम् ।  
 प्रदानात् तस्य मे विष्णो हृतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६८  
 विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः ।  
 चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६९  
 यस्मात् त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा ।  
 सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७०  
 यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा ।  
 लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७१  
 छाग त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः ।  
 यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७२  
 गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ।  
 यस्मात् तस्माच्छ्रयै मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ ७३  
 यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा ।  
 शश्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥ ७४  
 यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः ।  
 तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नानेन मे सुराः ॥ ७५

राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेका दान करे। यजमानको ये सारी दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौणें अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। किंतु सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है ॥ ५८—६३ ॥

(दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—) ‘कपिले! तुम रोहिणीरूपा हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।\* शङ्ख! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को आनन्दित करनेवाले वृषभ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्णमय बीज और अनन्त पुण्यफलके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीला वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो! उसका दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, केशवके सदृश फलदायिनी और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। लौह! चूँकि विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह कर्म हल एवं अस्त्र आदि सारे कार्य सदा तुम्हारे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग! चूँकि तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ! चूँकि गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी लक्ष्मी प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशवकी शश्या सदा अशून्य (लक्ष्मीसे युक्त) रहती है, वैसे ही मेरे द्वारा भी दान की गयी शश्या जन्म-जन्ममें अशून्य बनी रहे। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रत्नान करनेसे वे देवता मुझे भी रत्न प्रदान करें।

\* तुलनीय—‘इडे रन्ते हव्ये काय्ये चन्द्रे’ आदि (यजु० ८। ४३ और उसके उच्चट-महीधरादिभाष्य)।

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।  
 दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह ॥ ७६  
 एवं सम्पूजयेद् भक्त्या विज्ञशाव्येन वर्जितः।  
 रत्नकाञ्चनवस्त्रौघैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ॥ ७७  
 अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत्।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥ ७८  
 यस्तु पीडाकरो नित्यमल्पविज्ञस्य वा ग्रहः।  
 तं च यत्रेन सम्पूज्य शेषानप्यर्चयेद् बुधः ॥ ७९  
 ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः।  
 पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥ ८०  
 यथा बाणप्रहाराणां कवचं भवति वारणम्।  
 तद्वद् दैवोपधातानां शान्तिर्भवति वारिका ॥ ८१  
 तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्यं भूतिमिच्छता।  
 सम्पूर्णया दक्षिणया यस्माद् देवोऽपि तुष्यति ॥ ८२  
 सदैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखे स्थितः।  
 विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥ ८३  
 निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ तथोद्गेगाद्गुतेषु च।  
 कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु ॥ ८४  
 सर्वकामासये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः।  
 पितृणां वल्लभं साक्षाद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ८५  
 ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।  
 गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद् बुधः ॥ ८६  
 रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्त्रमुद्दिमुखम्।  
 दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान् कुर्याद् विधानतः ॥ ८७  
 प्रागुदक्षलवनां भूमिं कारयेद् यत्तो बुधः।

जिस प्रकार अन्य सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमि-दान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो' ॥ ६४—७६ ॥

इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रत्न, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुष्टमाला और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा मरनेपर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीड़ा पहुँचा रहा हो तो उस बुद्धिमान्को चाहिये कि उस ग्रहकी यत्नपूर्वक भलीभाँति पूजा करके तत्पश्चात् शेष ग्रहोंकी भी अर्चना करे; क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। जैसे बाणोंके आघातका प्रतिरोध करनेवाला कवच होता है, उसी प्रकार दुर्देवद्वारा किये गये उपधातोंको निवारण करनेवाली शान्ति (ग्रह-यज्ञ) होती है। इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये; क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे (यज्ञका प्रधान) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! नवग्रहोंके यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्विग्नता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोंवाला हवन बतला रहा हूँ, सुनिये। विद्वानोंने सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये लक्षहोमका विधान किया है; क्योंकि यह पितरोंको परम प्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देना चाहिये ॥ ७७—८७ १/२ ॥

प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु ॥ ८८  
 शोभनं कारयेत् कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम् ।  
 चतुरस्त्रं समंतात् योनिवक्त्रं समेखलम् ॥ ८९  
 चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता ।  
 प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता ॥ १०  
 शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः ।  
 मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत् ।  
 यस्मात् तस्मात् सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥ ११  
 अस्माद् दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा ।  
 आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ १२  
 द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः ।  
 लक्षहोमे भवेत् कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥ १३  
 तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम् ।  
 प्रागुदक्प्लवनं तच्च चतुरस्त्रं समंततः ॥ १४  
 विष्कम्भार्थोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थणिडलं विश्वकर्मणा ।  
 संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥ १५  
 द्व्यङ्गुलो ह्युच्छ्रितो वप्रः प्रथमः स उदाहृतः ।  
 अङ्गुलोच्छ्रियसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥ १६  
 त्र्यङ्गुलस्य च विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः ।  
 दशङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थणिडले स्यात् तथोपरि ।  
 तस्मिन्नावाहयेद् देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः ॥ १७  
 आदित्याभिमुखाः सर्वाः साधिप्रत्यधिदेवताः ।  
 स्थापनीया मुनिश्रेष्ठं नोत्तरेण पराङ्मुखाः ॥ १८  
 गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता ।  
 सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ।  
 विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १९

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड\* तैयार कराये, जो चारों ओरसे चौकोर हो, जिसमें योनिरूप मुख बना हो और जो मेखलासे युक्त हो। यह मेखला चार अङ्गुल चौड़ी और उतनी ही ऊँची, कुण्डको चारों ओरसे घेरे हुए और पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो। सभी लोगोंके लिये ग्रह-शान्तिके निमित्त नवग्रह-यज्ञ बतलाया गया है। चूँकि उपर्युक्त परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्षहोमको अयुतहोमसे दस गुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। विश्वकर्मने कुण्डके पूर्वोत्तर दिशामें तीन बित्तेकी दूरीपर देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो चारों ओरसे चौकोर, पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू विष्कम्भ (कुण्डके व्यास)-के आधे परिमाणके बराबर ऊँची और तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची तथा शेष दो एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई तीन अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। मुनिश्रेष्ठ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) ‘गरुड! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णुके वाहन और नित्य विषरूप पापको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो’॥ ८८—९९ ॥

\* कल्याण—अग्निपुराणाङ्क ५० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

पूर्ववत् कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत्।  
 सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्याधिकं पुनः।  
 घृतकुम्भवसोर्धारां पातयेदनलोपरि॥ १००  
 औदुम्बरीं तथाद्र्ग्गं च ऋग्वच्चीं कोटरवर्जिताम्।  
 बाहुमात्रां स्तुतं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि।  
 घृतधारां तथा सम्यग्ग्रेरुपरि पातयेत्॥ १०१  
 श्रावयेत् सूक्तमाग्रेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम्।  
 महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च वाचयेत्॥ १०२  
 स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत् स्वस्तिवाचनम्।  
 दातव्या यजमानेन पूर्ववद् दक्षिणाः पृथक्॥ १०३  
 कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा।  
 नवग्रहमखे विप्राश्वत्वारो वेदवेदिनः॥ १०४  
 अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव श्रुतिकोविदौ।  
 कार्यावयुतहोमे तु न प्रसन्न्येत विस्तरे॥ १०५  
 तद्वच्च दश चाष्टौ च लक्षहोमे तु ऋत्विजः।  
 कर्तव्याः शक्तिस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सरः॥ १०६  
 नवग्रहमखात् सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम्।  
 भक्ष्यान् दद्यान्मुनिश्रेष्ठं भूषणान्यपि शक्तिः॥ १०७  
 शयनानि सवस्त्राणि हैमानि कटकानि च।  
 कर्णाङ्गुलिपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तिमान्॥ १०८  
 न कुर्याद् दक्षिणाहीनं वित्तशान्वेन मानवः।  
 अददन् लोभतो मोहात् कुलक्षयमवाप्नुते॥ १०९  
 अन्नदानं यथाशक्त्या कर्तव्यं भूतिमिच्छता।  
 अन्नहीनः कृतो यस्माद् दुर्भिक्षफलदो भवेत्॥ ११०  
 अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः।  
 यष्टारं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥ १११  
 न वाप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित्।  
 यस्मात् पीडाकरो नित्यं यज्ञे भवति विग्रहः॥ ११२

तत्पश्चात् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके पश्चात् पुनः समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्निके ऊपर घृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। (वसोर्धाराकी विधि यह है—) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीसे, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गीली हो, सुवा बनवाकर उसे दो खम्भोंपर रखकर उसके द्वारा अग्निके ऊपर सम्यक् प्रकारसे धीकी धारा गिराये। उस समय अग्निसूक्त (ऋ० सं० १। १), विष्णुसूक्त (वाजसं० ५। १—२२), रुद्रसूक्त (वही १६) और इन्दु (सोम) सूक्त (ऋ० १। ११) सुनाना चाहिये तथा महावैश्वानर साम और ज्येष्ठसामका पाठ कराना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान स्नानकर स्वस्तिवाचन कराये तथा काम-क्रोधरहित होकर शान्तचित्तसे पूर्ववत् ऋत्विजोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रहयज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकार एवं शान्तस्वभाववाले दो ही ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फँसना चाहिये॥ १००—१०५॥

उसी प्रकार लक्षहोममें अपनी सामर्थ्यके अनुकूल मत्सररहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शश्या, स्वर्णनिर्मित कड़े, कुण्डल, अङ्गूठी और कण्ठसूत्र (हार) आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दस गुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नदानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विज्को और दक्षिणारहित यज्ञकर्ता को जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है।

तमेव पूजयेद् भक्त्या द्वौ वा त्रीन् वा यथाविधि ।  
 एकमप्यर्चयेद् भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम् ।  
 दक्षिणाभिः प्रयत्नेन न बहूनल्पवित्तवान् ॥ ११३  
 लक्ष्मोमस्तु कर्तव्यो यदा वित्तं भवेद् बहु ।  
 यतः सर्वानवाज्ञोति कुर्वन् कामान् विधानतः ॥ ११४  
 पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः ।  
 यावत् कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ११५  
 सकामो यस्त्वमं कुर्याल्लक्ष्मोमं यथाविधि ।  
 स तं काममवाज्ञोति पदमानन्त्यमश्नुते ॥ ११६  
 पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम् ।  
 भार्यार्थी शोभनां भार्या कुमारी च शुभं पतिम् ॥ ११७  
 भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ।  
 यं यं प्रार्थयते कामं स वै भवति पुष्कलः ।  
 निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥ ११८  
 अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ।  
 आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ॥ ११९

पूर्ववद् ग्रहदेवानामावाहनविसर्जनैः ।  
 होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च ।  
 कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे ॥ १२०  
 कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्तं तु सर्वतः ।  
 योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ॥ १२१  
 द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रुता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः ।  
 त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रुता तद्वद् द्वितीया परिकीर्तिता ॥ १२२  
 उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला ।  
 द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते ॥ १२३  
 वितस्तिमात्रा योनिःस्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता ।  
 कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रुता ॥ १२४  
 गजोष्टसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता ।  
 एतत् सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते ॥ १२५

स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े । अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्ष्मोम करना चाहिये; क्योंकि यह अधिक लाभदायक है । इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुदण्डोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्ष्मोमको विधिपूर्वक सम्पत्ति करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है । इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दरी पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है । इस प्रकार मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त हो जाती है । जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है ॥ १०६—११८ ॥

मुने ! प्रयत्नपूर्वक दी गयी आहुतियों, दक्षिणाओं और फलकी दृष्टिसे ब्रह्माने कोटिहोमको इस लक्ष्मोमसे सौ गुना अधिक फलदायक बतलाया है । इसमें भी ग्रहों एवं देवोंके आवाहन, विसर्जन, स्नान तथा दानमें प्रयुक्त होनेवाले होममन्त्र पहलेके ही हैं । केवल कुण्ड, मण्डप और वेदीमें कुछ विशेषता है, वह मैं बतला रहा हूँ, सुनिये । इस कोटिहोममें सब ओरसे चौकोर चार हाथके परिमाणवाला कुण्ड बनाना चाहिये । वह दो योनिमुखों और तीन मेखलाओंसे युक्त हो । विद्वानोंको पहली मेखला दो अङ्गुल ऊँची बनानी चाहिये । उसी प्रकार दूसरी मेखला तीन अङ्गुल ऊँची बतलायी गयी है और तीसरी मेखला ऊँचाई और चौड़ाईमें चार अङ्गुलकी होनी चाहिये । पहली दोनों मेखलाओंकी चौड़ाई तौं दो अङ्गुलकी ही ठीक मानी गयी है । इनके ऊपर एक बित्ता लम्बी और छः—सात अङ्गुल चौड़ी योनि होनी चाहिये । उसका मध्य-भाग कछुवेकी पीठकी तरह ऊँचा और दोनों पार्श्वभाग एक अङ्गुल ऊँचा हो । वह हाथीके होंठके समान लम्बी और छिद्र (घी गिरनेका मार्ग) युक्त हो । सभी कुण्डोंमें यही योनिका लक्षण बतलाया जाता है ।

मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसंनिभम्।  
 वेदी च कोटिहोमे स्याद् वितस्तीनां चतुष्टयम्॥ १२६  
 चतुरस्त्रा समन्ताच्य त्रिभिर्प्रैस्तु संयुता।  
 वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनां च तथोच्छ्रयः॥ १२७  
 तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।  
 पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बहूचं वेदपारगम्॥ १२८  
 यजुर्विंदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्।  
 अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बृथः॥ १२९  
 अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः।  
 एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।  
 पूर्ववत् पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥ १३०  
 रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्।  
 पूर्वतो बहूचः शान्तिं पठन्नास्ते ह्युद्दिमुखः॥ १३१  
 शाक्तं शाक्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च।  
 पाठयेद् दक्षिणद्वारि यजुर्वेदिनमुत्तमम्॥ १३२  
 सुपर्णमथ वैराजमाग्रेयं रुद्रसंहिताम्।  
 ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत्॥ १३३  
 शान्तिसूक्तं च सौरं च तथा शाकुनकं शुभम्।  
 पौष्टिकं च महाराज्यमुत्तरेणाप्यथर्ववित्॥ १३४  
 पञ्चभिः सप्तभिर्वापि होमः कार्योऽत्र पूर्ववत्।  
 स्नाने दाने च मन्त्राः स्युस्त एव मुनिसत्तम्॥ १३५  
 वसोर्धाराविधानं च लक्ष्मोमे विशिष्यते।  
 अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत्।  
 सर्वान् कामानवाज्ञोति ततो विष्णुपदं ब्रजेत्॥ १३६  
 यः पठेच्छृणुयाद् वापि ग्रहयज्ञत्रयं नरः।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति॥ १३७  
 अश्वमेधसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्।  
 कृत्वा यत् फलमाज्ञोति कोटिहोमात् तदश्नुते॥ १३८

योनि सभी मेखलाओंके ऊपर पीपलके पत्तेके सदृश होनी चाहिये। कोटिहोममें चार बित्ता लम्बी, चारों ओरसे चौकोर और तीन परिधियोंसे युक्त एक वेदी होनी चाहिये। परिधियोंका प्रमाण तथा वेदियोंकी ऊँचाई पहले कही जा चुकी है। पुनः सोलह हाथ लम्बे-चौड़े मण्डपकी स्थापना करे, जिसमें चारों दिशाओंमें दरवाजे हों। बुद्धिसम्पन्न यजमान उसके पूर्वद्वारपर ऋग्वेदके पारगामी ब्राह्मणको, दक्षिण द्वारपर यजुर्वेदके ज्ञाताको, पश्चिमद्वारपर सामवेदीको और उत्तरद्वारपर अथर्ववेदीको नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त वेद एवं वेदाङ्गोंके ज्ञाता आठ ब्राह्मणोंको हवन करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये। इस प्रकार इस कार्यमें बारह ब्राह्मणोंको नियुक्त करनेका विधान है। इन सभी ब्राह्मणोंका वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला, चन्दन आदि सामग्रियोंद्वारा पूर्ववत् भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये॥ १९—१३०॥

(कार्यारम्भ होनेपर) पूर्वद्वारपर स्थित ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तराभिमुख हो परम माङ्गलिक रात्रिसूक्त, रुद्रसूक्त, पवमानसूक्त तथा अन्यान्य शान्ति-सूक्तोंका पाठ करता रहे। दक्षिणद्वारपर स्थित श्रेष्ठ यजुर्वेदी ब्राह्मणसे शक्तिसूक्त, शक्रसूक्त, सोमसूक्त, कूष्माण्डसूक्त तथा शान्ति-सूक्तका पाठ करवाना चाहिये। पश्चिमद्वारपर स्थित सामवेदी ब्राह्मण सुपर्ण, वैराज, आग्रेय—इन ऋचाओं, रुद्रसंहिता, ज्येष्ठसाम तथा शान्तिपाठोंका गान करे। उत्तरद्वारपर नियुक्त अथर्ववेदी ब्राह्मण शान्ति (शंतातीय १९)-सूक्त, सूर्यसूक्त, माङ्गलिक शकुनिसूक्त, पौष्टिक एवं महाराज्य (सूक्त)-का पाठ करे। मुनिश्रेष्ठ ! इसमें भी पूर्ववत् पाँच अथवा सात ब्राह्मणोंद्वारा हवन कराना चाहिये। स्नान और दानके लिये वे ही पूर्वकथित मन्त्र इसमें भी हैं। लक्ष्मोममें केवल वसोर्धाराका विधान विशेष होता है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे कोटिहोमका विधान करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मरनेपर विष्णुलोकमें चला जाता है। जो मनुष्य तीनों प्रकारके ग्रहयज्ञोंका पाठ अथवा श्रवण करता है उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और अन्तमें वह इन्द्रलोकमें चला जाता है। धर्मज्ञ मनुष्य अठारह हजार अश्वमेधयज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त करता है, वह फल कोटिहोम नामक यज्ञसे प्राप्त हो जाता

ब्रह्महत्यासहस्राणि भूणहत्यार्बुदानि च।  
 कोटिहोमेन नश्यन्ति यथावच्छिवभाषितम्॥ १३९  
 वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्।  
 नवग्रहमुखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत्॥ १४०  
 अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्।  
 तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत्॥ १४१  
 वृत्तं चोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्मणि।  
 त्रिमेखलैश्चैकवक्त्रमरलिंविस्तरेण तु॥ १४२  
 पलाशसमिधः शस्ता मधुगोरोचनान्विताः।  
 चन्दनागुरुणा तद्वत् कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः॥ १४३  
 होमयेन्मधुसर्पिभ्यां बिल्वानि कमलानि च।  
 सहस्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा॥ १४४  
 वश्यकर्मणि बिल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्।  
 सुमित्रिया न आप ओषधय इति होमयेत्॥ १४५  
 न चात्र स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।  
 स्नानं सर्वोषधैः कृत्वा शुक्लपुष्पाम्बरो गृही॥ १४६  
 कण्ठसूत्रैः सकनकैर्विप्रान् समभिपूजयेत्।  
 सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्ला गावः सकाञ्छनाः॥ १४७  
 अवशानि वशीकुर्यात् सर्वशत्रुबलान्यपि।  
 अमित्राण्यपि मित्राणि होमोऽयं पापनाशनः॥ १४८  
 विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते।  
 त्रिमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं च सर्वशः॥ १४९  
 होमं कुर्युस्ततो विप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः।  
 निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्बरधारिणः॥ १५०  
 नववायसरक्ताक्षयपात्रत्रयसमन्विताः।  
 समिधो वामहस्तेन श्येनास्थिबलसंयुताः।  
 होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायदभिरशिवं रिपौ॥ १५१  
 दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु तथा हुंफडितीति च।  
 श्येनाभिचारमन्त्रेण क्षुरं समभिमन्त्रं च॥ १५२

है। शिवजीने यथार्थरूपसे कहा है कि कोटिहोमके अनुष्ठानसे हजारों ब्रह्महत्या और अरबों भूणहत्या-जैसे महापातक नष्ट हो जाते हैं॥ १३१—१३९॥

नारद! यदि वशीकरण, अभिचार तथा उच्चाटन आदि काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करना हो तो पहले नवग्रह-यज्ञ सम्पन्न कर तत्पश्चात् काम्य कर्म करना चाहिये, अन्यथा वह काम्य कर्म मनुष्योंको कहीं भी फलदायक नहीं हो सकता। अतः पहले अयुतहोमका सम्पादन कर लेना उचित है। उच्चाटन और वशीकरण कर्मोंमें कुण्डको गोलाकार बनाना चाहिये। उसका विस्तार अर्थात् व्यास एक अरलि हो। वह तीन मेखलाओं और एक मुखसे युक्त हो। इन कार्योंमें मधु, गोरोचन, चन्दन, अगुरु और कुङ्कुमसे अभिषिक्त की हुई पलाशकी समिधाएँ प्रशस्त मानी गयी हैं। मधु और घीसे चुपड़े हुए बेल और कमल-पुष्करे हवनका विधान है। ब्रह्माने सदा दस हजार आहुतियोंका ही विधान बतलाया है। धर्मज्ञ यजमानको वशीकरण-कर्ममें 'सुमित्रिया न आप ओषधयः'—इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। इस कार्यमें कलशका स्थापन और अभिषेचन नहीं किया जाता। गृहस्थ यजमान सर्वोषधमिष्ठित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण कर ले और स्वर्णनिर्मित कण्ठहराओंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा उन्हें महीन वस्त्र एवं स्वर्णसे विभूषित श्वेत रंगकी गौणें प्रदान करे। (इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया) यह पापनाशक हवन वशमें न आनेवाली शत्रुओंको सारी सेनाओंको वशीभूत कर देता है और शत्रुओंको मित्र बना देता है॥ १४०—१४८॥

समृद्धिकामी पुरुषको इन कर्मोंमेंसे केवल शान्तिकर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये। जो मानव निष्कामभावसे इन तीनों ग्रहयज्ञोंका अनुष्ठान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस ग्रहयज्ञको नित्य सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसे न तो ग्रहजनित पीड़ा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है। जिस घरमें ये तीनों (ग्रह, लक्ष एवं कोटि होम)

प्रतिस्तुपं रिपोः कृत्वा क्षुरेण परिकर्तयेत्।  
रिपुस्तुपस्य शकलान्यथैवाग्नौ विनिःक्षिपेत्॥ १५३  
ग्रहयज्ञविधानान्ते सदैवाभिचरन् पुनः।  
विद्वेषणं तथा कुर्वन्नेतदेव समाचरेत्॥ १५४  
इहैव फलदं पुंसामेतन्नामुत्र शोभनम्।  
तस्माच्छान्तिकमेवात्र कर्तव्यं भूतिमिच्छता॥ १५५  
ग्रहयज्ञत्रयं कुर्याद् यस्त्वकाम्येन मानवः।  
स विष्णोः पदमाजोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ १५६  
य इदं शृणुयान्त्रित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।  
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः॥ १५७  
ग्रहयज्ञत्रयं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति।  
न पीडा तत्र बालानां न रोगो न च बन्धनम्॥ १५८  
अशेषयज्ञफलदं निःशेषाधविनाशनम्।  
कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १५९  
अश्वमेधफलं प्राहुर्लक्ष्महोमं सुरोत्तमाः।  
द्वादशाहमखस्तद्वन्नवग्रहमखः स्मृतः॥ १६०  
इति कथितमिदानीमुत्सवानन्दहेतोः  
सकलकलुषहारी देवयज्ञाभिषेकः।  
परिपठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गा-  
दभिभवति स शत्रूनायुरारोग्ययुक्तः॥ १६१

यज्ञ-विधान लिखकर रखे रहते हैं, वहाँ न तो बालकोंको कोई कष्ट होता है, न रोग तथा बन्धन भी नहीं होता। विद्वानोंका कहना है कि कोटिहोम सम्पूर्ण यज्ञोंके फलका प्रदाता, अखिल पापोंका विनाशक और भोग एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। श्रेष्ठ देवगण लक्ष्महोमको अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायक बतलाते हैं। उसी प्रकार नवग्रह-यज्ञ, द्वादशाह-यज्ञके सदृश फलकारक बतलाया जाता है। इस प्रकार मैंने इस समय उत्सवके आनन्दकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले इस देवयज्ञाभिषेकका वर्णन कर दिया। जो मनुष्य प्रसङ्गवश इसका इसी रूपमें पाठ अथवा श्रवण करता है, वह दीर्घायु एवं नीरोगतासे युक्त होकर अपने शत्रुओंको पराजित कर देता है॥ १४९—१६१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नवग्रहहोमशान्तिविधानं नाम त्रिनवत्तिमोऽध्यायः॥ ९३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नवग्रहहोमशान्तिविधान नामक तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९३ ॥



## चौरानबेवाँ अध्याय

नवग्रहोंके स्वरूपका वर्णन

शिव उवाच

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।  
 समाश्वः समरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः ॥ १  
 श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः ।  
 गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥ २  
 रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः ।  
 चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद् धरासुतः ॥ ३  
 पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः ।  
 खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥ ४  
 देवदैत्यगुरु तद्वत् पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ ।  
 दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥ ५  
 इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृथवाहनः ।  
 बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽक्षसुतस्तथा ॥ ६  
 करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः ।  
 नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥ ७  
 धूमा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।  
 गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥ ८  
 सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः ।  
 ह्यङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा ॥ ९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहरूपाख्यानं नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ १४ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहरूपाख्यान नामक चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

शिवजीने कहा—नारद! (चित्र-प्रतिमादिमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेतवस्त्र और श्वेत अश्वयुक्त हैं। उनका वाहन—श्वेत अश्वयुक्त रथ है। उनके दोनों हाथ गदा और वरदमुद्रासे युक्त बनाना चाहिये। धरणीनन्दन मंगलके चार भुजाएँ हैं। उनके शरीरके रोएँ लाल हैं, वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं और उनके चारों हाथ क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, गदा एवं वरमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीर-कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे भी चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी करनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नील रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा)-में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबोंके दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूपवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई एक सौ आठ अङ्गुल (४॥ हाथ)-की होनी चाहिये ॥ १—९ ॥

## पंचानबेवाँ अध्याय

### माहेश्वर-व्रतकी विधि और उसका महात्म्य

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश तथान्यदपि यच्छुतम्।  
भुक्तिमुक्तिफलायालं तत् पुनर्वक्तुर्मर्हसि॥ १  
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाइमयपारगः।  
मत्पमस्तपसा ब्रह्मन् पुराणश्रुतिविस्तरैः॥ २  
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः।  
धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृति नारद॥ ३

मत्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।  
नारदोऽपि हि शुश्रूषुपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्।  
आदिष्टस्त्वं शिवेनेह वद माहेश्वरं व्रतम्॥ ४

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम्।  
त्रिषु लोकेषु विख्याता नामा शिवचतुर्दशी॥ ५  
मार्गशीर्षत्रयोदश्यां सितायामेकभोजनः।  
प्रार्थयेद् देवदेवेशं त्वामहं शरणं गतः॥ ६  
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शंकरम्।  
सुवर्णवृषभं दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि॥ ७  
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।  
कृतस्त्वानजपः पश्चादुमया सह शंकरम्।  
पूजयेत् कमलैः शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ ८  
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः।  
त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः॥ ९  
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेति कन्धराम्।  
सद्योजाताय कण्णौ तु वामदेवाय वै भुजौ॥ १०  
अघोरहृदयायेति हृदयं चाभिपूजयेत्।  
स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम्॥ ११

नारदजीने पूछा—भूत और भविष्यके स्वामी भगवन्! इनके अतिरिक्त भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेमें समर्थ यदि कोई अन्य व्रत सुना गया हो तो उसे पुनः कहनेकी कृपा करें। ऐसा पूछे जानेपर भगवान् शम्भुने कहा—‘ब्रह्मन्! यह नन्दी शब्दशास्त्रका पारगामी विद्वान् और तपस्या तथा पुराणों एवं श्रुतियोंकी विस्तृत जानकारीमें मेरे समान है। यह वृषरूपसे साक्षात् धर्म और गणका अधीश्वर है। नारद! अब यही इससे आगे माहेश्वर-धर्मोंका वर्णन करेगा॥’ १—३॥

मत्यभगवान् ने कहा—ऐसा कहकर देवाधिदेव शम्भु वहीं अन्तर्हित हो गये। तब श्रवण करनेकी उत्कट इच्छावाले नारदने नन्दिकेश्वरसे पूछा—‘नन्दी! शिवजीने आपको इसके लिये जैसा आदेश दिया है, आप उस प्रकार माहेश्वर-व्रतका वर्णन कीजिये’॥ ४॥

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! मैं माहेश्वर-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, आप समाहितचित्तसे श्रवण कीजिये। वह व्रत तीनों लोकोंमें शिवचतुर्दशीके नामसे विख्यात है। (इस व्रतके आरम्भमें) व्रती मानव मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको एक बार भोजन कर देवाधिदेव शंकरजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—‘भगवन्! मैं आपके शरणागत हूँ। मैं चतुर्दशी तिथिको निराहार रहकर भगवान् शंकरकी भलीभाँति अर्चना करनेके पश्चात् स्वर्ण-निर्मित वृषभका दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा।’ इस प्रकारका नियम ग्रहण कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सुन्दर कमल-पुष्पों, सुगन्धित पुष्पमालाओं और चन्दन आदिसे पार्वतीसहित शंकरजीकी वक्ष्यमाण रीतिसे पूजा करे—‘शिवाय नमः’ से दोनों चरणोंका, ‘सर्वात्मने नमः’ से सिरका, ‘त्रिनेत्राय नमः’ से नेत्रोंका, ‘हरये नमः’ से ललाटका, ‘इन्दुमुखाय नमः’ से मुखका, ‘श्रीकण्ठाय नमः’ से कंधोंका, ‘सद्योजाताय नमः’ से कानोंका, ‘वामदेवाय नमः’ से भुजाओंका और ‘अघोरहृदयाय नमः’ से हृदयका पूजन करे। ‘तत्पुरुषाय नमः’ से स्तनोंकी, ‘ईशानाय नमः’ से उदरकी,

पाश्चै चानन्तर्धर्माय ज्ञानभूताय वै कटिम्।  
 ऊरु चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत्॥ १२  
 अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनी चार्चयेद् बुधः।  
 प्रधानाय नमो जड्हे गुल्फौ व्योमात्मने नमः॥ १३  
 व्योमकेशात्मरूपाय केशान् पृष्ठं च पूजयेत्।  
 नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चापि पूजयेत्॥ १४  
 ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम्।  
 शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम्।  
 भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १५  
 प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।  
 ततो विप्रान् समाहूय तर्पयेद् भक्तिः शुभान्।  
 पृष्ठदान्यं च सम्प्राश्य स्वपेद् भूमावुदमुखः॥ १६  
 पञ्चदश्यां च सम्पूज्य विप्रान् भुज्नीत वाग्यतः।  
 तद्वत् कृष्णाचतुर्दश्यामेतत् सर्वं समाचरेत्॥ १७  
 चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात् पूर्ववदर्चनम्।  
 ये तु मासे विशेषाः स्युस्तान् निबोध क्रमादिह॥ १८  
 मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत्।  
 शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक॥ १९  
 त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम्।  
 नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम्॥ २०  
 नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः।  
 नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे॥ २१  
 नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः।  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ २२  
 पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरचागुरुं यवाः।  
 तिलाः कृष्णाश्च विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम्।  
 प्रतिमासं चतुर्दश्योरैकं प्राशनं स्मृतम्॥ २३

'अनन्तर्धर्माय नमः' से दोनों पार्श्वभागोंकी, 'ज्ञानभूताय नमः' से कटिकी और 'अनन्तवैराग्यसिंहाय नमः' से ऊरुओंकी अर्चना करे। बुद्धिमान् ब्रतीको 'अनन्तैश्वर्यनाथाय नमः' से जानुओंका, 'प्रधानाय नमः' से जड्हाओंका और 'व्योमात्मने नमः' से गुल्फोंका पूजन करना चाहिये। फिर 'व्योमकेशात्मरूपाय नमः' से बालों और पीठकी अर्चना करे। 'पुष्ट्यै नमः' एवं 'तुष्ट्यै नमः' से पार्वतीका भी पूजन करे। तत्पश्चात् जलपूर्ण कलशसहित, श्वेत पुष्पमाला और वस्त्रसे सुशोभित, पञ्चरत्नयुक्त स्वर्णमय वृषभको नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंके साथ ब्राह्मणको दान कर दे और यों प्रार्थना करे—'पिनाकधारी देवाधिदेव सद्योजात मेरे ब्रतमें प्रसन्न हों।' तदनन्तर माङ्गलिक ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन एवं दक्षिणा आदि देकर तृप्त करे और स्वयं दधिमिश्रित धी खाकर रात्रिमें उत्तराभिमुख हो भूमिपर शयन करे। पूर्णिमा तिथिको प्रातःकाल उठकर ब्राह्मणोंकी पूजा करनेके पश्चात् मौन होकर भोजन करे। उसी प्रकार कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें भी यह सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये॥ ५—१७॥

इसी प्रकार सभी चतुर्दशी तिथियोंमें पूर्ववत् शिवपार्वतीका पूजन करना चाहिये। अब प्रत्येक मासमें जो विशेषताएँ हैं, उन्हें क्रमशः (बतला रहा हूँ,) सुनिये। मार्गशीर्ष आदि प्रत्येक मासमें क्रमशः इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'शंकराय नमस्तेऽस्तु'—आप शंकरके लिये मेरा नमस्कार प्राप्त हो। 'नमस्ते करवीरक'—करवीरक! आपको नमस्कार है। 'त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु'—आप त्र्यम्बकके लिये प्रणाम है। इसके बाद 'महेश्वराय नमः'—महेश्वरको अभिवादन है। 'महादेव नमस्तेऽस्तु'—महादेव! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। उसके बाद 'स्थाणवे नमः'—स्थाणुको प्रणाम है। 'पशुपतये नमः'—पशुपतिको अभिवादन है। 'नाथ नमस्ते'—नाथ! आपको नमस्कार है। पुनः 'शम्भवे नमः'—शम्भुको प्रणाम है। 'परमानन्द नमस्ते'—परमानन्द! आपको अभिवादन है। 'सोमार्धधारिणे नमः'—ललाटमें अर्धचन्द्र धारण करनेवालेको नमस्कार है। 'भीमाय नमः'—भयंकर रूपधारीको प्रणाम है। ऐसा कहकर अन्तमें कहे कि 'मैं आपके शरणागत हूँ।' प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, धी, कुशोदक, पञ्चगव्य, बेल, कर्पूर, अगुरु, यव और काला तिल—इनमेंसे क्रमशः एक-एक पदार्थका प्राशन बतलाया गया है। इसी प्रकार प्रत्येक मासकी दोनों

मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि ।  
सिन्धुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ॥ २४  
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः ।  
एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत् पार्वतीपतिम् ॥ २५  
युनश्च कार्तिके मासे प्रासे संतर्पयेद् द्विजान् ।  
अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ २६  
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः ।  
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह ॥ २७  
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम् ।  
सर्वोपस्करसंयुक्तां शश्यां दद्यात् सकुम्भकाम् ॥ २८  
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतम् ।  
स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च ॥ २९  
ज्येष्ठसामविदे देयं न वकव्रतिने क्षचित् ।  
गुणज्ञे श्रोत्रिये दद्यादाचार्ये तत्त्ववेदिनि ॥ ३०  
अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदा कल्याणकारिणे ।  
सप्तलीकाय सम्पूर्ण्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ ३१  
गुरौ सति गुरोर्देयं तदभावे द्विजातये ।  
न वित्तशान्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषात् पतत्यथः ॥ ३२  
अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम् ।  
सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राजोति मानवः ॥ ३३  
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम् ।  
पितृभिर्भ्रातृभिर्वापि तत् सर्वं नाशमाप्नुयात् ॥ ३४  
दीर्घायुरारोग्यकुलान्नवृद्धि-  
ऋत्राक्षयामुत्र चतुर्भुजत्वम् ।  
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटि-  
शतान्युषित्वा पदमेति शम्भोः ॥ ३५

चतुर्दशी तिथियोमें मन्दार (पारिभद्र), मालती, धत्तूरा, सिन्धुवार, अशोक, मल्लिका, पाटल (पाँढ़र पुष्प या लाल गुलाब), मन्दार-पुष्प (सूर्यमुखी), कदम्ब, शतपत्री (श्वेत कमल या गुलाब) और कमल—इनमेंसे क्रमशः एक-एकके द्वारा पार्वतीपति शंकरकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १८—२५ ॥

पुनः कार्तिकमास आनेपर अन्न, नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ, वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंको पूर्णरूपसे तृप्त करे। ब्रती मनुष्यको वेदोक्त विधिके अनुसार नील वृषका भी उत्सर्ग करनेका विधान है। तत्पश्चात् अगहनीके चावलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रपर स्वर्णनिर्मित उमा, महेश्वर और वृषभकी मूर्तिको स्थापित कर दे और उसके निकट आठ मोती रख दे, फिर उसे गौके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। साथ ही दो श्वेत चादरोंसे आच्छादित तथा समस्त उपकरणोंसे युक्त घटसहित एक शश्या भी दान करनी चाहिये। यह दान ऐसे ब्राह्मणको देना चाहिये, जो शान्तस्वभाव, वेदव्रत-परायण और ज्येष्ठसामका ज्ञाता हो। बगुलाब्रती (कपटी) ब्राह्मणको कभी भी दान नहीं देना चाहिये। वस्तुतस्तु गुणज्ञ, वेदपाठी, तत्त्ववेत्ता, सुडौल अङ्गोंवाले, सौम्यस्वभाव, कल्याणकारक एवं सपलीक आचार्यकी वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषण आदिसे भलीभाँति पूजा करके यह दान उन्हींको देना चाहिये। यदि गुरु (आचार्य) उस समय उपस्थित हों तो उन्हींको दान देनेका विधान है। उनकी अनुपस्थितिमें अन्य ब्राह्मणको दान दिया जा सकता है। इस दानमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसके दोषसे कर्ताका अधःपतन हो जाता है ॥ २६—३२ ॥

जो मानव उपर्युक्त विधिके अनुसार इस शिवचतुर्दशी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, उसे एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। उसके द्वारा अथवा उसके पिता या भाईद्वारा इस जन्ममें अथवा जन्मान्तरमें जो कुछ ब्रह्महत्या आदि पाप घटित हुए रहते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। इस लोकमें वह दीर्घायु, नीरोगता, कुल और अन्नकी समृद्धिसे युक्त होता है और मरणोपरान्त स्वर्गलोकमें चार भुजाधारी होकर गणाधिप हो जाता है। वहाँ सौ करोड़ कल्पोंतक निवास कर शम्भु-पद—शिवलोकको चला जाता है।

न बृहस्पतिरप्यनन्तमस्याः  
फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम्।  
न च सिद्धगणोऽप्यलं न चाहं  
यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्त्रे ॥ ३६

भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद् वा सदा  
शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम्।  
इमां शिवचतुर्दशीममरकामिनीकोटयः  
स्तुवन्ति तमनिन्दितं किमु समाचरेद् यः सदा ॥ ३७

या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या  
भर्तारमापृच्छ्य सुतान् गुरुन् वा।  
सापि प्रसादात् परमेश्वरस्य  
परं पदं याति पिनाकपाणे: ॥ ३८

यदि मुखमें दस हजार करोड़ जिह्वाएँ हो जायें तो भी इस चतुर्दशीके अनन्त फलका वर्णन करनेमें न तो बृहस्पति समर्थ हैं न इन्द्र, न ब्रह्मा समर्थ हैं न सिद्धगण तथा मैं भी इसका वर्णन नहीं कर सकता। जो मनुष्य मत्सरहित हो सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त करनेवाली इस शिवचतुर्दशीके माहात्म्यको सदा पढ़ता, स्मरण करता अथवा श्रवण करता है, उस पुण्यात्माका करोड़ों देवाङ्गनाएँ स्तवन करती हैं, फिर जो सदा इसका अनुष्ठान करता है, उसकी तो बात ही क्या है? स्त्री भी यदि अपने पति, पुत्र और गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी परमेश्वरकी कृपासे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके परमपदको प्राप्त हो जाती है\* ॥ ३३—३८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शिवचतुर्दशीव्रतं नाम पञ्चनवत्तितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शिवचतुर्दशी-व्रत नामक पंचानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९५ ॥

## छानबेवाँ अध्याय

### सर्वफलत्याग-व्रतका विधान और उसका माहात्म्य

#### नन्दिकेश्वर उवाच

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद् भवेच्छृणु नारद।  
यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १  
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने व्रतम्।  
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा।  
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ २  
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम।  
सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥ ३

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब कर्म—‘फलत्याग’ नामक व्रतका जो महत्त्व है, उसे सुनिये। वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। मुने! मङ्गलमय मार्गशीर्षमासमें शुक्लपक्षकी तृतीया, अष्टमी, द्वादशी अथवा चतुर्दशी तिथिको ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये। मुनिसत्तम! इसी प्रकार यह व्रत अन्य पुण्यप्रद महीनोंमें भी किया जा सकता है। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये।

\* मन्वादिके अनुसार पति आदिकी आज्ञाके बिना स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार नहीं है।

अष्टादशानां धान्यानामवद्यं फलमूलकैः ।  
 वर्जयेदब्दमेकं तु त्रहते औषधकारणम् ।  
 सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजं च कारयेत् ॥ ४  
 कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वार्ताकं पनसं तथा ।  
 आप्राप्रातकपित्थानि कलिङ्गमथ वालुकम् ॥ ५  
 श्रीफलाश्वत्थबदं जम्बीरं कदलीफलम् ।  
 काश्मरं दाढिमं शक्त्या कलधौतानि षोडश ॥ ६  
 मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडी करमर्दकम् ।  
 कङ्गोलैलाकतुण्डीरकरीरकुटजं शमी ॥ ७  
 औदुम्बरं नारिकेलं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम् ।  
 रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश ॥ ८  
 ताप्रं तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च ।  
 पिण्डारकाशमर्यफलं तथा सूरणकन्दकम् ॥ ९  
 रक्तालुकाकन्दकं च कनकाहं च चिर्भिटम् ।  
 चित्रवल्लीफलं तद्वत् कूटशाल्मलिजं फलम् ॥ १०  
 आप्रनिष्ठावमधुकवटमुद्रपटोलकम् ।  
 ताप्राणि षोडशैतानि कारयेच्छक्तितो नरः ॥ ११  
 उदकुम्भद्वयं कुर्याद् धान्योपरि सवस्त्रकम् ।  
 ततश्च कारयेच्छच्यां यथोपरि सुवाससी ॥ १२  
 भक्ष्यपात्रत्रयोपेतं यमरुद्रवृषान्वितम् ।  
 धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने ।  
 सपलीकाय सम्पूज्य पुण्येऽहि विनिवेदयेत् ॥ १३  
 यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः ।  
 तथा सर्वफलत्यागव्रताद् भक्तिः शिवेऽस्तु मे ॥ १४  
 यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ ।  
 तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ॥ १५  
 यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा ।  
 तथानन्तफलावासिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥ १६  
 यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्णवर्कपदाजान् ।  
 तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरः शंकरः सदा ॥ १७

इस ब्रतमें औषधके अतिरिक्त सामान्यरूपसे निन्द्य फल और मूलके साथ अठारह\* प्रकारके धान्य त्याज्य—वर्जनीय माने गये हैं, अतः उन्हें एक वर्षतक त्याग देना चाहिये। पुनः रुद्र, धर्मराज और वृषभकी स्वर्णमयी मूर्ति बनवायी जाय। इसी प्रकार यथाशक्ति कूष्माण्ड, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), वार्ताक (भाँट्य), पनस (कट्ठल), आम, आप्रातक (आमड़ा), कपित्थ (कैथ), कलिङ्ग (तरबूज), बालुक (पनियाला), बेल, पीपल, बेर, जम्बीर (जमीरी नींबू), केला, काश्मर (गम्भारी) और दाढिम (अनार)—ये सोलह प्रकारके फल भी सोनेके बनवाये जायें। मूली, आँवला, जामुन, इमली, करमर्दक (करौंदा), कङ्गोल (शीतलचीनीकी जातिके एक वृक्षका फल), इलायची, तुण्डीर (कुँदरू), करीर (करील), कुटज (इन्द्रयव), शमी, गूलर, नारियल, अंगूर और दोनों बृहती (बनभंटा, भटकटैया)—इन सोलहोंको अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीका बनवाना चाहिये ॥ १—८ ॥

ब्रती मनुष्य सम्पत्तिके अनुकूल ताड़-फल, अगस्तफल, पिण्डारक (विकंकत या पिड़ार), काशमर्य (गम्भारी)—फल, सूरणकन्द (जमीकन्द), रतालू, धतूरा, चिर्भिट (ककड़ी या पिहटिया), चित्रवल्ली (तेजपात)–फल, काले सेमलका फल, आम, निष्ठाव (सेम या मटर), महुआ, बरगद, मूँग और परवल—इन सोलहोंका ताँबेसे निर्माण कराये। तत्पश्चात् वस्त्रसे सुशोभित दो कलश सप्तधान्यके ऊपर स्थापित करे। वह तीन भोजन-पात्रोंसे युक्त हो और उसपर धर्मराज, रुद्र और वृषकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। साथ ही दो सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित एक शय्या भी प्रस्तुत करे। फिर उस पुण्यप्रद दिनमें यह सारा उपकरण एक गौके साथ किसी शान्त स्वभाववाले एवं कुटुम्बी सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करके उसे दान कर दे और इस प्रकार प्रार्थना करे—‘जिस प्रकार सभी फलोंमें करोड़ों देवता निवास करते हैं, उसी प्रकार सर्वफलत्याग-व्रतके अनुष्ठानसे शिवजीमें मेरी भक्ति हो। जैसे शिव और धर्म—दोनों सदा अनन्त फलके दाता कहे गये हैं, अतः उनसे युक्त फलका दान करनेसे वे दोनों मेरे लिये भी वरदायक हों। जिस प्रकार शिवभक्तोंको सदा अनन्त फलकी प्राप्ति होती रहती है, उसी तरह मुझे प्रत्येक जन्ममें अनन्त फलकी प्राप्ति हो। जैसे मैं ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और सूर्यमें कोई भेद नहीं मानता, वैसे ही विश्वात्मा भगवान् शंकर सदा मेरे लिये कल्याणकारक हों’ ॥ ९—१७ ॥

\* अठारह प्रकारके धान्योंकी बात यहाँके अतिरिक्त मत्स्यपुराणके अगले दानप्रकरणमें (विशेषकर २७६। ७, २७७। ११ आदिमें) भी आयी है, पर इसमें उनका पूर्ण विवरण कहीं नहीं आया है। ये अठारह धान्य-याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपारक व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसों, राई या टाँगुन) और मसूर। अन्य मतसे मयुषादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

इति दत्त्वा च तत् सर्वमलङ्कृत्य च भूषणैः।  
 शक्तिश्वेच्छयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम्॥ १८  
 अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः।  
 तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ॥ १९  
 विग्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम्।  
 अन्यान्नपि यथाशक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान्॥ २०  
 एतद् भागवतानां तु सौरवैष्णवयोगिनाम्।  
 शुभं सर्वफलत्यागब्रतं वेदविदो विदुः॥ २१  
 नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं द्विजपुङ्गवं।  
 एतस्मान्नापरं किञ्चिदिह लोके परत्र च।  
 ब्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदम्॥ २२  
 सौवर्णरौप्यताम्ब्रेषु यावन्तः परमाणवः।  
 भवन्ति चूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम्।  
 तावद् युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ २३  
 एतत् समस्तकलुषापहरं जनाना-  
 माजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात्।  
 जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःख-  
 माप्नोति धाम च पुरुं दरलोकजुष्टम्॥ २४  
 यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद् वा  
 देवालयेषु भवनेषु च धार्मिकाणाम्।  
 पापैर्वियुक्तवपुत्र पुरं मुरारे-  
 रानन्दकृत् पदमुपैति मुनीन्द्र सोऽपि॥ २५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सर्वफलत्यागमाहात्म्यं नाम घण्णवतितमोऽध्यायः॥ १६॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सर्वफलत्याग-माहात्म्य नामक छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६॥

इस प्रकार आभूषणोंसे अलंकृत कर वह सारा सामान ब्राह्मणको दान कर दे। यदि सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो समस्त उपकरणोंसे युक्त शश्या भी देनी चाहिये। यदि असमर्थ हो तो पूर्वोक्त फलोंका ही विधिपूर्वक दान करे। तत्पश्चात् शिव और धर्मराजकी स्वर्णमयी मूर्तिको दोनों कलशोंके साथ ब्राह्मणको दान करके स्वयं मौन होकर तेलरहित पदार्थोंका भोजन करे। इसके बाद यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेका विधान है। वेदवेत्तालोग सूर्य, विष्णु और शिवके उपासक भक्तोंके लिये इस मङ्गलमय सर्वफलत्यागब्रतको बतलाते हैं। द्विजपुंगव ! स्त्रियोंको भी यथाशक्ति इस ब्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ ! इस लोक या परलोकमें इससे बढ़कर कोई दूसरा ऐसा ब्रत नहीं है, जो अनन्त फलका प्रदायक हो। मुनिसत्तम ! फलोंको चूर्ण कर देनेपर उनमें लगे हुए सोने, चाँदी और ताँबेके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक ब्रती रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस ब्रतका जीवनपर्यन्त अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंको यह विनष्ट कर देता है, उन्हें जन्मान्तरमें भी पुत्रवियोगका कष्ट नहीं भोगना पड़ता और मरणोपरान्त वे इन्द्रलोकमें चले जाते हैं। मुनीश्वर ! जो निर्धन पुरुष देव-मन्दिरों अथवा धर्मात्मा पुरुषोंके गृहोंमें इस ब्रत-माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ता है, उसका शरीर इस लोकमें पापसे मुक्त हो जाता है और मरणोपरान्त वह विष्णुलोकमें आनन्ददायक स्थान प्राप्त कर लेता है॥ १८—२५॥

## सत्तानबेवाँ अध्याय

### आदित्यवार-कल्पका विधान और माहात्म्य

नारद उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम्।  
 यच्छान्त्यै च मर्त्यानां वद नन्दीश तद् ब्रतम्॥ १

नारदजीने पूछा—नन्दीश्वर ! अब जो ब्रत मृत्युलोकवासी पुरुषोंके लिये आरोग्यकारी, अनन्त फलका प्रदाता और शान्तिकारक हो, उसका वर्णन कीजिये॥ १॥

नन्दिकेश्वर उवाच

यत् तद् विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम् ।  
सूर्याग्निचन्द्रस्तपेण तत् त्रिधा जगति स्थितम् ॥ २  
तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा ।  
तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥ ३  
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम् ।  
तदा शनिदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः ॥ ४  
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।  
पत्रैर्द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपङ्कजम् ॥ ५  
विलिख्य विन्यसेत् सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः ।  
दिवाकरं तथाग्रेये विवस्वन्तमतः परम् ॥ ६  
भगं तु नैऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले ।  
महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यं च तथोत्तरे ॥ ७  
शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत् ।  
कर्णिकापूर्वपत्रे तु सूर्यस्य तुरगान् न्यसेत् ॥ ८  
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले ।  
उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायां च भास्करम् ॥ ९  
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम् ।  
तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ १०  
कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः ।  
यस्मादग्नीन्द्रस्तपस्त्वमतः पाहि दिवाकर ॥ ११  
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जे च भास्कर ।  
अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषाम्पते ॥ १२  
अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथ निशि तैलविवर्जितम् ।  
भुज्ञीत वत्सरान्ते तु काञ्छनं कमलोत्तमम् ।  
पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद् द्विभुजं तथा ॥ १३  
सुवर्णशृङ्गों कपिलां महार्घ्या  
रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम् ।  
पूर्णे गुडस्योपरि ताप्रपात्रे  
निधाय पद्मं पुरुषं च दद्यात् ॥ १४

नन्दिकेश्वर बोले— नारदजी ! विश्वात्मा भगवान् का जो परब्रह्मस्वरूप सनातन तेज है, वह जगत् में सूर्य, अग्नि और चन्द्रस्तपे से तीन भागोंमें विभक्त होकर स्थित है। विप्रवर ! उनकी आराधना करके मनुष्य सदा कुशलताका भागी हो जाता है। इसलिये रविवारको रात्रिमें एक बार भोजन करना चाहिये। जब रविवार हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो शनिवारको मत्सरहित हो एक ही बार भोजन करना चाहिये। रविवारको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नक्तभोजन (रात्रिमें एक बार भोजन करने) - का विधान है। तदनन्तर लाल चन्दनसे द्वादश दलोंसे युक्त कमलकी रचना कर उसके पूर्वदलपर सूर्यकी, अग्निकोणवाले दलपर दिवाकरकी, दक्षिणदलपर विवस्वान् की, नैऋत्यकोणस्थित दलपर भगकी, पश्चिमदलपर वरुणदेवकी, वायव्यकोणवाले दलपर महेन्द्रकी, उत्तरदलपर आदित्यकी और ईशानकोणस्थित दलपर शान्तकी नमस्कारपूर्वक स्थापना करे। पुनः कर्णिकाके पूर्वदलपर सूर्यके घोड़ोंको, दक्षिणदलपर अर्घ्यमाको, पश्चिमदलपर मार्तण्डको, उत्तरदलपर रविदेवको और कर्णिकाके मध्यभागमें भास्करको स्थित कर दे। तदनन्तर लाल पुष्प, लाल चन्दन और तिलमिश्रित जलसे उस कमलपर अर्घ्य प्रदान करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—‘दिवाकर ! काल आपका ही स्वरूप है, आप समस्त प्राणियोंके आत्मा और वेदस्वरूप हैं, आपका मुख चारों दिशाओंमें है अर्थात् आप सर्वद्रष्टा हैं तथा अग्नि और इन्द्रके रूपमें आप ही वर्तमान हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिये। भास्कर ! ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र ‘अग्निमीले०’, यजुर्वेदके ‘इषे त्वोर्जे०’ तथा सामवेदके प्रथम मन्त्र ‘अग्न आयाहि०’ के रूपमें आप ही वर्तमान हैं, आपको नमस्कार है। वरदायक ! आप ज्योतिःपुञ्जोंके अधीक्षर हैं, आपको प्रणाम है ॥ २—१२ ॥

इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन कर रातमें तैलरहित भोजन करना चाहिये। एक वर्ष पूरा होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे एक उत्तम कमल और एक दो भुजाधारी पुरुषकी मूर्ति बनवाये। फिर गुडके ऊपर स्थित ताँबेके पूर्णपात्रपर उस कमल और पुरुषको रख दे। उस समय एक सवत्सा कपिला गौ भी प्रस्तुत करे, जो अधिक मूल्यवाली हो, जिसके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा जिसके निकट कांसदोहनी भी रखी हो।

सम्पूज्य रक्ताम्बरमाल्यधूपै-  
 द्विंजं च रक्तेरथ हेमशृङ्गैः ।  
 संकल्पयित्वा पुरुषं सपदं  
 दद्यादनेकव्रतदानकाय ।  
 अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय  
 कुटुम्बिने देयमनुद्धताय ॥ १५  
 नमो नमः पापविनाशनाय  
 विश्वात्मने सप्तरुंगमाय ।  
 सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधात्रे  
 भवाब्धिपोताय जगत्सवित्रे ॥ १६  
 इत्यनेन विधिना समाचरे-  
 दब्दमेकमिह यस्तु मानवः ।  
 सोऽधिरोहति विनष्टकल्मषः  
 सूर्यधाम धुतचामरावलिः ॥ १७  
 धर्मसंक्षयमवाप्य भूपतिः  
 शोकदुःखभयरोगवर्जितः ।  
 द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुन-  
 धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः ॥ १८  
 या च भर्तृगुरुदेवतत्परा  
 वेदमूर्तिदिननक्तमाचरेत् ।  
 सापि लोकममरेशवन्दिता  
 याति नारद रवेन्न संशयः ॥ १९  
 यः पठेदपि शृणोति मानवः  
 पञ्चमानमथ वानुमोदते ।  
 सोऽपि शक्रभुवनस्थितोऽमरैः  
 पूज्यते वसति चाक्षयं दिवि ॥ २०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यवारकल्पो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ १७ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यवार-कल्प नामक सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् लाल रंगके स्वर्णनिर्मित सिंघा बाजाके साथ लाल वस्त्र, पुष्पमाला और धूपसे ब्राह्मणकी पूजा करके संकल्पपूर्वक गौ एवं कमलसहित उस पुरुष-मूर्तिको ऐसे ब्राह्मणको दान कर दे, जो अनेकों श्रेष्ठ व्रतोंमें दान लेनेका अधिकारी, सुडौल रूपसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय, शान्त-स्वभाव और विशाल कुटुम्बवाला हो । (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) ‘जो पापके विनाशक, विश्वके आत्मस्वरूप, सात घोड़ोंसे जुते रथपर आरूढ़ होनेवाले, ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंके तेजकी निधि, विधाता, भवसागरके लिये नौकास्वरूप और जगत्स्थान हैं, उन सूर्यदेवको बारंबार नमस्कार है ।’ जो मानव इस लोकमें उपर्युक्त विधिके अनुसार एक वर्षतक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित होकर सूर्यलोकको चला जाता है । उस समय उसके ऊपर चँचल डुलाये जाते हैं । पुण्य क्षीण होनेपर वह इस लोकमें शोक, दुःख, भय और रोगसे रहित होकर बारंबार अमित ओजस्वी एवं धर्मात्मा भूपाल होता है, उस समय सातों द्वीप उसके अधिकारमें रहते हैं । नारदजी! पति, गुरुजन और देवताओंकी शुश्रूषामें तत्पर रहनेवाली जो नारी रविवारको इस नक्तव्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी इन्द्रद्वारा पूजित होकर निस्संदेह सूर्यलोकको चली जाती है । जो मानव इस व्रतको पढ़ता या सुनता है अथवा पढ़नेवालेका अनुमोदन करता है, वह भी इन्द्रलोकमें स्थित होकर देवताओंद्वारा पूजित होता है और अक्षय कालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥ १३—२० ॥

## अद्वानबेवाँ अध्याय

संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रान्त्युद्यापने फलम् ।  
यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १  
अयने विषुवे वापि संक्रान्तिव्रतमाचरेत् ।  
पूर्वेद्युरेकभुक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् ।  
संक्रान्तिवासरे प्रातस्तिलैः स्नानं विधीयते ॥ २  
रविसंक्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् ।  
पद्मं सकर्णिकं कुर्यात् तस्मिन्नावाहयेद् रविम् ॥ ३  
कणिकायां न्यसेत् सूर्यमादित्यं पूर्वतस्ततः ।  
नम उष्णार्चिषे याम्ये नमो शृङ्गमण्डलाय च ॥ ४  
नमः सवित्रे नैऋत्ये वारुणे तपनं पुनः ।  
वायव्ये तु भगं न्यस्य पुनः पुनरर्थार्चियेत् ॥ ५  
मार्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेत् सदा ।  
गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थणिडले पूजयेत् ततः ॥ ६  
द्विजाय सोदकुम्भं च घृतपात्रं हिरण्मयम् ।  
कमलं च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत् ॥ ७  
चन्दनोदकपुष्टैश्च देवायार्द्यं न्यसेद् भुवि ।  
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयम्भुवे ।  
नमोऽनन्तं नमो धात्रे ऋक्सामयजुषाम्पते ॥ ८  
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ।  
वत्सरान्तेऽथवा कुर्यात् सर्वं द्वादशथा नरः ॥ ९  
संवत्सरान्ते घृतपायसेन  
संतर्प्य वहिं द्विजपुङ्गवाङ्श ।  
कुम्भान् पुनर्द्वादशधेन्युक्तान्  
सरलहैरण्यमयपद्मयुक्तान् ॥ १०

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापन-रूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायणके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्तिव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (रात्रिमें शयन करे।) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दाँतुन करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करनेका विधान है। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका आवाहन करे। कर्णिकामें 'सूर्याय नमः', पूर्वदलपर 'आदित्याय नमः', अग्निकोणस्थित दलपर 'उष्णार्चिषे नमः', दक्षिणदलपर 'ऋग्मण्डलाय नमः', नैऋत्यकोणवाले दलपर 'सवित्रे नमः', पश्चिमदलपर 'तपनाय नमः', वायव्यकोणस्थित दलपर 'भगाय नमः', उत्तरदलपर 'मार्तण्डाय नमः' और ईशानकोणवाले दलपर 'विष्णवे नमः' से सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बारंबार अर्चना करे। तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और खाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे घृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्च्य प्रदान करे। (अर्च्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त ! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है।' इसी विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे (दोनोंका फल समान ही है) ॥ १—९ ॥

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे और बारह गौ एवं रलसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे।

पयस्विनीः शीलवतीश्च दद्या-  
 द्धैमैः शृङ्गे रौप्यखुरैश्च युक्ताः ।  
 गावोऽष्ट वा सम सकांस्यदोहा  
 माल्याम्बरा वा चतुरोऽप्यशक्तः ।  
 दौर्गत्ययुक्तः कपिलामथैकां  
 निवेदयेद् ब्राह्मणपुङ्गवाय ॥ १  
 हैमीं च दद्यात् पृथिवीं सशेषा-  
 माकार्यं रूप्यामथ वा च ताम्रीम् ।  
 पेष्ठीमशक्तः प्रतिमां विधाय  
 सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यात् ।  
 न वित्तशाढ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात्  
 कुर्वन्नधो याति न संशयोऽत्र ॥ २  
 यावन्महेन्द्रप्रमुखैर्नगेन्द्रैः  
 पृथ्वी च सप्ताव्ययुतेह तिष्ठेत् ।  
 तावत् स गन्धर्वगणैरशेषैः  
 सम्पूज्यते नारद नाकपृष्ठे ॥ ३  
 ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्त-  
 द्वीपाधिपः स्यात् कुलशीलयुक्तः ।  
 सृष्टेर्मुखेऽव्यङ्गवपुः सभार्यः  
 प्रभूतपुत्रान्वयवन्दिताङ्गिः ॥ ४  
 इति पठति शृणोति वाथ भक्त्या  
 विधिमखिलं रविसंक्रमस्य पुण्यम् ।  
 मतिमपि च ददाति सोऽपि देवै-  
 रमरपतेर्भवने प्रपूज्यते च ॥ ५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे संक्रान्त्युद्यापनविधिर्नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें संक्रान्त्युद्यापनविधि नामक अट्ठानवें अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

वे गौएँ दूध देनेवाली, सीधी-सादी एवं पुष्प-माला और वस्त्रसे सुसज्जित हों, उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उनके साथ काँसेकी दोहनी भी हो। जो इस प्रकारकी बारह गौओंका दान करनेमें असमर्थ हो, उसके लिये आठ, सात अथवा चार ही गौ दान करनेका विधान है। जो दुर्गतिमें पड़ा हुआ निर्धन हो, वह किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको एक ही कपिला गौका दान कर सकता है। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। पुरुषको इस दानमें कंजसी नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। नारदजी ! जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दरी पलीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बच्चु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है॥ १०—१५ ॥

## निन्यानबेवाँ अध्याय

### विभूतिद्वादशी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्वत्तमनुत्तमम् ।  
 विभूतिद्वादशीनाम सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ १

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! सुनिये, अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है।

कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने ।  
 आषाढे वा दशम्यां तु शुक्लायां लघुभुद्ननः ।  
 कृत्वा सायन्तनीं संध्यां गृहीयात्रियम् बुधः ॥ २  
 एकादश्यां निराहारः समध्यर्च्यं जनार्दनम् ।  
 द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो ॥ ३  
 तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्यं च केशव ।  
 नमो नारायणायेति वाच्यं च स्वपता निशि ॥ ४  
 ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः ।  
 पूजयेत् पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ ५  
 विभूतये नमः पादावशोकाय च जानुनी ।  
 नमः शिवायेत्यूरु च विश्वमूर्ते नमः कटिम् ॥ ६  
 कंदर्पाय नमो मेद्रमादित्याय नमः करौ ।  
 दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ॥ ७  
 माधवायेत्युरो विष्णोः कण्ठमुत्कण्ठने नमः ।  
 श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति नारद ॥ ८  
 पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै ।  
 स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये ।  
 शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन् नम इत्यभिपूजयेत् ॥ ९  
 मत्स्यमुत्पलसंयुक्तं हैमं कृत्वा तु शक्तिः ।  
 उदकुम्भसमायुक्तमग्रतः स्थापयेद् बुधः ॥ १०  
 गुडपात्रं तिलैर्युक्तं सितवस्त्राभिवेष्टितम् ।  
 रात्रौ जागरणं कुर्यादितिहासकथादिना ॥ ११  
 प्रभातायां तु शर्वर्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
 सकाञ्छनोत्पलं देवं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥ १२  
 यथा न मुच्यसे देव सदा सर्वविभूतिभिः ।  
 तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारकर्दमात् ॥ १३  
 दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्मुने ।  
 दत्तात्रेयं तथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम् ।  
 दद्यादेवं समा यावत् पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥ १४

बुद्धिमान् मनुष्य कर्तिक, चैत्र, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा आषाढ़मासमें शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त होकर इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—‘प्रभो ! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा । केशव ! मेरा यह नियम निर्विघ्नपूर्वक निभ जाय और फलदायक हो ।’ फिर रातमें ‘ॐ नमो नारायणाय’ मन्त्रका जप करते हुए सो जाय । प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो जाय और श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे । (पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—) ‘विभूतये नमः’ से दोनों चरणोंकी, ‘अशोकाय नमः’ से जानुओंकी, ‘शिवाय नमः’ से ऊरुओंकी, ‘विश्वमूर्ते नमः’ से कटिकी, ‘कंदर्पाय नमः’ से जननेन्द्रियकी, ‘आदित्याय नमः’ से हाथोंकी, ‘दामोदराय नमः’ से उदरकी, ‘वासुदेवाय नमः’ से दोनों स्तनोंकी, ‘माधवाय नमः’ से विष्णुके वक्षःस्थलकी, ‘उत्कण्ठने नमः’ से कण्ठकी, ‘श्रीधराय नमः’ से मुखकी, ‘केशवाय नमः’ से केशोंकी, ‘शार्ङ्गधराय नमः’ से पीठकी, ‘वरदाय नमः’ से दोनों कानोंकी और ‘सर्वात्मने नमः’ से सिरकी पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मण देवता नारदजी !’ तत्पश्चात् ‘शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये नमः’ कहकर अपने नामका उच्चारण करते हुए चरणोंमें प्रणिपात करे । तदुपरान्त बुद्धिमान् ब्रती मूर्तिके अग्रभागमें एक जलपूर्ण कलश स्थापित करे । उसपर तिलसे युक्त गुडसे भरा हुआ पात्र, जो श्वेत वस्त्रसे परिवेषित हो, रख दे । उसके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमलसहित मत्स्य बनवाकर स्थापित करे और रात्रिमें इतिहास-पुराण आदिकी कथाओंको सुनते हुए जागरण करे ॥ १—११ ॥

रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल स्वर्णमय कमल और कलशके साथ वह देव-मूर्ति कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर देनी चाहिये । (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) ‘देव ! जिस प्रकार आप सदा सम्पूर्ण विभूतियोंसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार इस निखिल कण्ठोंसे परिपूर्ण संसाररूपी कीचड़से मेरा उद्धार कीजिये ।’ मुने ! इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करनी चाहिये । उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये ।

समाप्त्यैवं यथाशक्त्या द्वादश द्वादशीः पुनः।  
 संवत्सरान्ते लवणपर्वतेन समन्वितम्।  
 शश्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ गुरवे धेनुसंयुताम्॥ १५  
 ग्रामं च शक्तिमान् दद्यात् क्षेत्रं वा भवनान्वितम्।  
 गुरुं सम्पूज्य विधिवद् वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥ १६  
 अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।  
 तर्पयेद् वस्त्रगोदानै रत्नौघधनसंचयैः।  
 अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत्॥ १७  
 यश्चाप्यतीव निःस्वः स्याद् भक्तिमान् माधवं प्रति।  
 पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद् वत्सरद्वयम्॥ १८  
 अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम्।  
 कुर्यात् पापविनिर्मुक्तः पितृणां तारयेच्छतम्॥ १९  
 जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग् भवेत्।  
 न च व्याधिर्भवेत् तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम्।  
 वैष्णवो वाथ शैवो वा भजेज्जन्मनि जन्मनि॥ २०  
 यावद् युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत्।  
 तावत् स्वर्गे वसेद् ब्रह्मन् भूपतिश्च पुनर्भवेत्॥ २१

इति श्रीमात्ये महापुराणे विष्णुव्रतं नाम नवनवित्तमोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-सम्बन्धी विष्णु-व्रत नामक निन्यानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९॥

## सौवाँ अध्याय

विभूतिद्वादशी\* के प्रसङ्गमें राजा पुष्पवाहनका वृत्तान्त

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे राजाऽसीत् पुष्पवाहनः।  
 नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसंनिभः॥ १  
 तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण नारद।  
 कमलं काञ्जनं दत्तं यथाकामगमं मुने॥ २

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! बहुत पहले रथन्तरकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। मुने! उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (रूप विमान) प्रदान किया था, जो इच्छानुसार जहाँ-कहीं भी आ-जा सकता था।

\* इस व्रतका वर्णन पद्म० सृष्टिखं० २०। १—४२, भविष्योत्तर, विष्णुधर्मोत्तर, व्रतरत्न, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदिमें भी यों ही प्राप्त होता है। पादीय कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है।

लोकैः समस्तैर्नगरवासिभिः सहितो नृपः ।  
द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्ट व्यचरत् तदा ॥ ३  
कल्पादौ सप्तमं द्वीपं तस्य पुष्करवासिनः ।  
लोकेन पूजितं यस्मात् पुष्करद्वीपमुच्यते ॥ ४  
देवेन ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतोऽम्बुजम् ।  
पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात् तं देवदानवाः ॥ ५  
नागम्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि  
ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।  
पत्नी च तस्याप्रतिमा मुनीन्द्र  
नारीसहस्रैरभितोऽभिनन्द्या ।  
नाम्ना च लावण्यवती बभूव  
सा पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ॥ ६  
तस्यात्मजानामयुतं बभूव  
धर्मात्मनामग्रथनुर्धराणाम् ।  
तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा  
मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद् ।  
सोऽभ्यागतं वीक्ष्य मुनिप्रवीरं  
प्राचेतसं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ७  
राजोवाच  
कस्माद् विभूतिरमलामरमर्त्यपूज्या  
जाता च सर्वविजितामरसुन्दरीणाम् ।  
भार्या ममाल्पतपसा परितोषितेन  
दत्तं ममाम्बुजगृहं च मुनीन्द्र धात्रा ॥ ८  
यस्मिन् प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां  
सामात्यकुञ्जरथौघजनावृतानाम् ।  
नो लभ्यते क्व गतमम्बरगामिभिश्च  
तारागणेन्दुरविरशिमभिरप्यगम्यम् ॥ ९  
तस्मात् किमन्यजननीजठरोद्भवेन  
धर्मादिकं कृतमशेषफलामिहेतुः ।  
भगवन् मयाथ तनयैरथवानयापि  
भद्रं यदेतदखिलं कथय प्रचेतः ॥ १०

उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर आरूढ़ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकों तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था । कल्पके आदिमें पुष्करनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीप नामसे कहा जाने लगा । चूँकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे । तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ़ होनेपर उसके लिये त्रिलोकीमें भी कोई स्थान अगम्य न था । मुनीन्द्र ! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था । वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी । वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वती परम प्रिय हैं । उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे । अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारम्बार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मयविमुग्ध हो जाता था । एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि\* राजाके यहाँ पधारे । उन्हें आया देख राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया ॥ १—७ ॥

राजाने पूछा—मुनीन्द्र ! किस कारणसे मुझे यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है ? मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायें तो वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये । वह विमान भी आकाशगामी देवताओंद्वारा केवल चमकीले ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति दीख पड़ता है । इसलिये इस सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये अन्य माताके उदरसे उत्पन्न होकर अर्थात् पूर्वजन्ममें मैंने अथवा मेरे पुत्रोंने या मेरी इस पत्नीने कौन-सा ऐसा शुभ धर्म आदि कार्य किया है ? प्रचेतः ! यह सारा-का-सारा विषय मुझे बतलाइये ॥ ८—१० ॥

\* वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड १३ । १७, १६ । १९ तथा अध्यात्मरामायण ७ । ७ । ३१, बालरामायण, उत्तर-रामचरित आदिके अनुसार 'प्राचेतस' शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है ।

मुनिरभ्यधादथ भवान्तरितं समीक्ष्य  
 पृथ्वीपते: प्रसभमद्भुतहेतुवृत्तम्।  
 जन्माभवत् तव तु लुब्धकुलेऽतिघोरे  
 जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी ॥ १  
 वपुरप्यभूत् तव पुनः परुषाङ्गसंधि-  
 दुर्गन्धसत्त्वकुनखाभरणं समन्तात्।  
 न च ते सुहन्त्र सुतबन्धुजनो न तात-  
 स्वादृक् स्वसा न जननी च तदाभिशस्ता ॥ २  
 अतिसम्पता परमभीष्टतमाभिमुखी  
 जाता महीश तव योषिदियं सुरूपा।  
 अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा  
 कदाचिदाहारनिमित्तमस्मिन् ।  
 क्षुत्पीडितेनाथ तदा न किञ्चि-  
 दासादितं वन्यफलादि खाद्यम् ॥ ३  
 अथाभिदृष्टं महदम्बुजाद्यं  
 सरोवरं पद्मजषण्डमण्डितम् ।  
 पद्मान्यथादाय ततो बहूनि  
 गतः पुरं वैदिशनामधेयम् ॥ ४  
 तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं  
 भ्रान्तं त्वयाशेषमहस्तदासीत्।  
 क्रेता न कश्चित् कमलेषु जातः  
 क्लान्तो भृशं क्षुत्परिपीडितश्च ॥ ५  
 उपविष्टस्त्वमेकस्मिन् सभार्यो भवनाङ्गणे।  
 अथ मङ्गलशब्दश्च त्वया रात्रौ महाऽश्रुतः ॥ ६  
 सभार्यस्तत्र गतवान् यत्रासौ मङ्गलध्वनिः।  
 तत्र मण्डपमध्यस्था विष्णोरचा विलोकिता ॥ ७  
 वेश्यानङ्गवती नाम विभूतिद्वादशीव्रतम्।  
 समाप्तौ माघमासस्य लवणाचलमुत्तमम् ॥ ८  
 निवेदयन्ती गुरवे शश्यां चोपस्करान्विताम्।  
 अलङ्कृत्य हृषीकेशं सौवर्णीमरपादपम् ॥ ९  
 तां तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम्।  
 किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरुलङ्कृतः ॥ १०

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—राजन्! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्गसंधियुक्त तथा बेडौल था। तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धयुक्त और नख बहुत बढ़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और वह बड़ा कुरुप था। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहन ही थी। भूपाल! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पली ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी बड़ी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कोई जंगली (कन्दमूल) फल आदि कुछ भी खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिश\* नामक नगर (विदिशा नगरी)-में चले गये ॥ ११—१४ ॥

वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीदार न मिला। उस समय तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त चूर होकर पत्तीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पत्तीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गल शब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघमासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शश्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शृङ्गार किया जाता।

\* यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है। इसपर कनिंघम्का (Bhelsa-Topes) ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नराधिप।  
 तत्प्रसङ्गात् समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम्।  
 शश्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्य सर्वतः ॥ २१  
 अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्धनशतत्रयम्।  
 दीयतामादिदेशाथ कलधौतशतत्रयम् ॥ २२  
 न गृहीतं ततस्ताभ्यां महासत्त्वावलम्बनात्।  
 अनङ्गवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम्।  
 आनीय व्याहृतं चात्र भुज्यतामिति भूपते ॥ २३  
 ताभ्यां तु तदपि त्यक्तं भोक्ष्यावः श्वो वरानने।  
 प्रसङ्गादुपवासेन तवाद्य सुखमावयोः ॥ २४  
 जन्मप्रभृति पापिष्ठौ कुकर्मणौ दृढव्रते।  
 प्रसङ्गात् तव सुश्रोणि धर्मलेशोस्तु नाविह ॥ २५  
 इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसङ्गादनुष्ठितम्।  
 प्रभाते च तया दत्ता शश्या सलवणाचला ॥ २६  
 ग्रामाश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव तु।  
 वस्त्रालङ्घारसंयुक्ता गावश्च कनकान्विता: ॥ २७  
 भोजनं च सुहन्मित्रदीनान्धकृपणैः समम्।  
 तच्च लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम् ॥ २८  
 स भवाँल्लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः।  
 पुष्करप्रकरात् तस्मात् केशवस्य च पूजनात् ॥ २९  
 विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमन्दिरम्।  
 तस्य सत्त्वस्य माहात्म्यादलोभतपसा नृप ॥ ३०  
 प्रादात्तु कामगं यानं लोकनाथश्चतुर्मुखः।  
 संतुष्टस्तव राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः ॥ ३१  
 साप्यनङ्गवती वेश्या कामदेवस्य साम्प्रतम्।  
 पत्नी सपत्नी संजाता रत्याः प्रीतिरिति श्रुता।  
 लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता ॥ ३२

नरेश्वर! उस समय तुम दोनों पति-पत्नीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्चके प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंद्वारा शश्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया गया ॥ १५—२१ ॥

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशर्कियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया—नहीं लिया। भूपते! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लाकर दिया और कहा—‘इसे भोजन कीजिये’, किंतु तुम दोनोंने उसका भी त्याग कर दिया और कहा—‘वरानने! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दृढ़व्रते! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं; पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हम दोनोंको भी विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।’ उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ था और उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुको लवणाचलसहित शश्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादि सहित बारह गायें प्रदान कीं। तदनन्तर सुहृद, मित्र, दीन, अस्थे और दरिद्रोंके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें विदा किया ॥ २२—२८ ॥

राजेन्द्र! वह सपत्नीक लुब्धक तुम्हीं थे, जो इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन्! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रति\* के सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण

\* हरिवंश, अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये कामदेवकी दो पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी पूरी कथा यहीं है।

तस्मादुत्सृज्य राजेन्द्र पुष्करं तन्महीतले।  
गङ्गातटं समाश्रित्य विभूतिद्वादशीव्रतम्।  
कुरु राजेन्द्र निर्वाणमवश्यं समवाप्स्यसि॥ ३३

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्ब्रह्मस्तत्रैवान्तरधीयत।  
राजा यथोक्तं च पुनरकरोत् पुष्पवाहनः॥ ३४  
इदमाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत्।  
यथाकथञ्चित् कमलैद्वादश द्वादशीर्मुने॥ ३५  
कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणानघ।  
न विज्ञशान्यं कुर्वीत भक्त्या तुष्यति केशवः॥ ३६  
इति कलुषविदारणं जनाना-  
मपि पठतीह शृणोति चाथ भक्त्या।  
मतिमपि च ददाति देवलोके  
वसति स कोटिशतानि वत्सराणाम्॥ ३७

देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी॥ २९—३३॥

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! ऐसा कहकर प्रचेता मुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। ब्रह्मन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड व्रतका पालन करना आवश्यक है। मुने! जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमलपुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य लोगोंके पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है, अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है॥ ३४—३७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विभूतिद्वादशीव्रतं नाम शततमोऽध्यायः॥ १००॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-व्रत नामक सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १००॥

## एक सौ एकवाँ अध्याय

### साठ व्रतोंका विधान और माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि व्रतष्टिमनुत्तमाम्।  
रुद्रेणाभिहितां दिव्यां महापातकनाशिनीम्॥ १  
नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्थं कुटुम्बिने।  
हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद् विप्राय वाससी॥ २  
शिवरूपस्ततोऽस्माभिः शिवलोके स मोदते।  
एतदेवव्रतं नाम महापातकनाशनम्॥ ३  
यस्त्वेकभक्तेन क्षिपेत् समो हैमवृषान्वितम्।  
धेनुं तिलमयीं दद्यात् स पदं याति शाङ्करम्।  
एतद् रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनम्॥ ४

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब मैं उन साठ सर्वोत्तम व्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो साक्षात् शंकरजीद्वारा कथित, दिव्य एवं महापातकोंके विनाशक हैं। जो मनुष्य एक वर्षतक रात्रिमें एक बार भोजन कर स्वर्णनिर्मित चक्र और त्रिशूल तथा दो वस्त्र गौके साथ कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवस्वरूप होकर शिवलोकमें हमलोगोंके साथ आनन्द मनाता है। यह महापातकोंका विनाश करनेवाला ‘देवव्रत’ है। जो मनुष्य एक वर्षतक दिनमें एक बार भोजन कर स्वर्णनिर्मित वृषसहित तिलमयी धेनुका दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह पाप एवं शोकका क्षयकारक ‘रुद्रव्रत’ है।

यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम्।  
 एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतम्।  
 स वैष्णवं पदं याति नीलब्रतमिदं स्मृतम्॥ ५  
 आषाढादिचतुर्मासमध्यङ्गं वर्जयेन्नरः।  
 भोजनोपस्करं दद्यात् स याति भवनं हरेः।  
 जनप्रीतिकरं नृणां प्रीतिब्रतमिहोच्यते॥ ६  
 वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम्।  
 दद्याद् वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रैश्च संयुतम्॥ ७  
 सम्पूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति।  
 एतद् गौरीब्रतं नाम भवानीलोकदायकम्॥ ८  
 पुष्पादौ यत्नयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः।  
 अशोकं काञ्छनं दद्यादिक्षयुक्तं दशाङ्गुलम्॥ ९  
 विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति।  
 कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात् पुनर्नरः।  
 एतत् कामब्रतं नाम सदा शोकविनाशनम्॥ १०  
 आषाढादिब्रतं यस्तु वर्जयेन्नखकर्तनम्।  
 वार्ताकं च चतुर्मासं मधुसर्पिर्घटान्वितम्॥ ११  
 कार्तिक्यां तत्पुनहैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।  
 स रुद्रलोकमाप्नोति शिवब्रतमिदं स्मृतम्॥ १२  
 वर्जयेद् यस्तु पुष्पाणि हेमन्तशिशिरावृतू।  
 पुष्पत्रयं च फाल्पुन्यां कृत्वा शक्त्या च काञ्छनम्॥ १३  
 दद्याद् विकालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ।  
 दत्त्वा परं पदं याति सौम्यब्रतमिदं स्मृतम्॥ १४  
 फाल्पुन्यादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत्।  
 समान्ते शयनं दद्याद् गृहं चोपस्करान्वितम्॥ १५  
 सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति।  
 गौरीलोके वसेत् कल्पं सौभाग्यब्रतमुच्यते॥ १६  
 संध्यामौनं नरः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकम्।  
 वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १७  
 सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।  
 एतत् सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदं ब्रतम्॥ १८

जो मनुष्य एक दिनके अन्तरसे रातमें एक बार भोजन करके वर्षकी समाप्तिके अवसरपर शक्तरसे पूर्ण पात्रसहित स्वर्णनिर्मित नील कमलको वृषभके साथ दान करता है वह विष्णुलोकको जाता है; यह 'नीलब्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से लेकर चार मासतक शरीरमें तेल नहीं लगाता और भोजनकी सामग्री दान करता है वह श्रीहरिके लोकको जाता है। इस लोकमें यह मनुष्योंमें प्रत्येक व्यक्तिको प्रिय लगनेवाला 'प्रीतिब्रत' नामसे कहा जाता है। जो मनुष्य चैत्रमासमें दही, दूध, धी और शक्तरका त्याग कर देता है और 'गौरी मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे ब्राह्मण-दम्पतिकी भलीभाँति पूजा करके रसपूर्ण पात्रोंके साथ महीन वस्त्रोंका दान करता है (वह गौरीलोकमें जाता है)। गौरीलोककी प्राप्ति करनेवाला यह 'गौरीब्रत' है॥ १—८॥

पुनः जो मनुष्य पुष्पनक्षत्रसे युक्त त्रयोदशी तिथिको रातमें एक बार भोजन कर (दूसरे दिन) दस अङ्गुल लम्बा सोनेका अशोक-वृक्ष बनवाकर उसे वस्त्र और गन्तेके साथ 'प्रद्युम्न मुझपर प्रसन्न हों' इस भावनासे ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक विष्णुलोकमें निवास करके पुनः शोकरहित हो जाता है। सदा शोकका विनाश करनेवाला यह 'कामब्रत' है। जो मनुष्य चौमासमें—आषाढ़ पूर्णिमासे लेकर कार्तिकतक नख (बाल) नहीं कटवाता और भाँटा नहीं खाता, पुनः कार्तिकी पूर्णिमाको मधु और धीसे भरे हुए घड़ेके साथ स्वर्णनिर्मित भाँटा ब्राह्मणको दान करता है वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसे 'शिवब्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य हेमन्त और शिशिर-ऋतुओंमें पुष्पोंको काममें नहीं लेता और फाल्पुनमासकी पूर्णिमा तिथिको अपनी शक्तिके अनुकूल सोनेके तीन पुष्प बनवाकर उन्हें सायंकालमें 'भगवान् शिव और केशव मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यब्रत' कहलाता है। जो मनुष्य फाल्पुनमासकी आदि तृतीया तिथिको नमक खाना छोड़ देता है तथा वर्षान्तके दिन 'भवानी मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे द्विज-दम्पतिकी भलीभाँति पूजा करके गृहस्थीके उपकरणोंसे युक्त गृह और शय्या दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यब्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य संध्याकी वेलामें मौन रहनेका नियम पालन कर वर्षकी समाप्तिमें घृतपूर्ण घट, दो वस्त्र, तिल और घंटा ब्राह्मणको दान करता है, वह पुनरागमनरहित सारस्वत-पदको प्राप्त होता है। सौन्दर्य और विद्या प्रदान करनेवाला यह

लक्ष्मीमध्यर्च्यं पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः ।  
 समान्ते हेमकमलं दद्याद् धेनुसमन्वितम् ॥ १९  
 स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीवान् जन्मजन्मनि ।  
 एतत् सम्पद्व्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥ २०  
 कृत्वोपलेपनं शाम्भोरग्रतः केशवस्य च ।  
 यावदब्दं पुनर्दद्याद् धेनुं जलघटान्विताम् ॥ २१  
 जन्मायुतं स राजा स्यात् ततः शिवपुरं व्रजेत् ।  
 एतदायुव्रतं नाम सर्वकामप्रदायकम् ॥ २२  
 अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणाम्यैकत्र वाग्यतः ।  
 एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः ॥ २३  
 व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम् ।  
 वृक्षं हिरण्मयं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।  
 एतत् कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ॥ २४  
 घृतेन स्नपनं कुर्याच्छम्भोर्वा केशवस्य च ।  
 अक्षताभिः सपुष्पाभिः कृत्वा गोमयमण्डलम् ॥ २५  
 तिलधेनुसमोपेतं समान्ते हेमपङ्कजम् ।  
 शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते ।  
 सामगाय ततश्चैतत् सामव्रतमिहोच्यते ॥ २६  
 नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तिः ।  
 भोजयित्वाऽऽसनं दद्याद्वैमकञ्जुकवाससी ॥ २७  
 हैमं सिंहं च विप्राय दत्त्वा शिवपदं व्रजेत् ।  
 जन्मार्बुदं सुरूपः स्याच्छत्रुभिश्चापराजितः ।  
 एतद् वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम् ॥ २८  
 यावत्समा भवेद् यस्तु पञ्चदशयां पयोव्रतः ।  
 समान्ते श्राद्धकृद् दद्यात् पञ्च गास्तु पयस्विनीः ॥ २९  
 वासांसि च पिशङ्गानि जलकुम्भयुतानि च ।  
 स याति वैष्णवं लोकं पितृणां तारयेच्छतम् ।  
 कल्पान्ते राजराजः स्यात् पितृव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ३०  
 चैत्रादिचतुरो मासान् जलं दद्यादयाचितम् ।  
 व्रतान्ते माणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम् ॥ ३१

‘सारस्वत’ नामक व्रत है ॥ १९—१८ ॥

जो मनुष्य पञ्चमी तिथिको निराहार रहकर लक्ष्मीकी पूजा करता है और वर्षकी समासिके दिन गौके साथ स्वर्ण-निर्मित कमलका दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और प्रत्येक जन्ममें लक्ष्मीसे सम्पन्न रहता है। यह ‘सम्पद्व्रत’ है, जो दुःख और शोकका विनाश करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक भगवान् शिव और केशवकी मूर्तिके सामनेकी भूमिको लीपकर वहाँ जलपूर्ण घटसहित गौका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक राजा होता है और मरणोपरान्त शिवलोकमें जाता है। यह ‘आयुव्रत’ है, जो सभी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक मत्सररहित हो दिनमें एक बार भोजन कर मौन-धारणपूर्वक एक ही स्थानपर पीपल, सूर्य और गङ्गाको प्रणाम करता है तथा व्रतकी समासिमें पूजनीय ब्राह्मण-दम्पतिको तीन गौओंके साथ स्वर्णनिर्मित वृक्षका दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। यह ‘कीर्तिव्रत’ है, जो वैभव और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक गोबरसे मण्डल बनाकर वहाँ भगवान् शिव अथवा केशवको धीसे स्नान कराकर पुण्य, अक्षत आदिसे पूजा करता है और वर्षान्तमें तिल-धेनुसहित आठ अङ्गुल लम्बा शुद्ध स्वर्णनिर्मित कमल सामवेदी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे इस लोकमें ‘सामव्रत’ कहा जाता है ॥ १९—२६ ॥

जो मनुष्य नवमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करके अपनी शक्तिके अनुसार कन्याओंको भोजन कराकर उन्हें आसन और सोनेके तारोंसे खचित चोली एवं साड़ी तथा ब्राह्मणको स्वर्णनिर्मित सिंह दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है और एक अरब जन्मोंतक सौन्दर्यसम्पन्न एवं शत्रुओंके लिये अजेय हो जाता है। यह ‘वीरव्रत’ है, जो नारियोंके लिये सुखदायक है। जो मनुष्य एक वर्षतक पूर्णिमा तिथिको केवल दूध पीकर व्रत करता है और वर्षकी समासिके दिन श्राद्ध करके लालिमायुक्त भूरे रंगके वस्त्र और जलपूर्ण घंटोंके साथ पाँच दुधारू गायें दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और अपने सौ पीढ़ीतके पितरोंको तार देता है। पुनः एक कल्प व्यतीत होनेपर वह भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह ‘पितृव्रत’ कहलाता है। जो मनुष्य चैत्रसे आरम्भ कर चार मासतक बिना याचना किये जलका दान देता है अर्थात् पौसला चलाता है तथा व्रतके अन्तमें अन्न एवं

तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते ।  
 कल्पान्ते भूपतिर्नूनमानन्दव्रतमुच्यते ॥ ३२  
 पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा संवत्सरं विभोः ।  
 वत्सरान्ते पुनर्दद्याद् धेनुं पञ्चामृतेन हि ॥ ३३  
 विप्राय दद्याच्छङ्खं च स पदं याति शाङ्करम् ।  
 राजा भवति कल्पान्ते धृतिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ३४  
 वर्जयित्वा पुमान् मांसमब्दान्ते गोप्रदो भवेत् ।  
 तद्वद्देममृगं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।  
 अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत् ॥ ३५  
 माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ।  
 भोजयित्वा यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः ।  
 सूर्यलोके वसेत् कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ३६  
 आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः ।  
 विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात् कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ।  
 स वैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं शुभम् ॥ ३७  
 अयनादयनं यावद् वर्जयेत् पुष्पसर्पिषी ।  
 तदन्ते पुष्पदामानि धृतधेन्वा सहैव तु ॥ ३८  
 दत्त्वा शिवपदं गच्छेद् विप्राय धृतपायसम् ।  
 एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम् ॥ ३९  
 संध्यादीपप्रदो यस्तु धृतं तैलं विवर्जयेत् ।  
 समान्ते दीपिकां दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने ॥ ४०  
 वस्त्रयुग्मं च विप्राय तेजस्वी स भवेदिह ।  
 रुद्रलोकमवाप्नोति दीमिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ४१  
 कार्तिक्यादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम् ।  
 नक्तं चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत् ॥ ४२  
 गौरीलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह ।  
 एतद् रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम् ॥ ४३

वस्त्रसे युक्त मिट्ठीका घड़ा, तिलसे भरा पात्र और सुवर्णका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक कल्पके व्यतीत होनेपर वह निश्चय ही भूपाल होता है। यह 'आनन्दव्रत' कहा जाता है ॥ २७—३२ ॥

जो एक वर्षतक पञ्चामृत (दूध, दही, घी, मधु, शक्कर)-से भगवान्की मूर्तिको स्नान कराता है, पुनः वर्षान्तमें पञ्चामृतसहित गौ और शङ्ख ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है और एक कल्पके बाद भूतलपर राजा होता है। यह 'धृतिव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक मांस खाना छोड़कर वर्षान्तमें गौ दान करता है तथा उसके साथ स्वर्णनिर्मित मृग भी देता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलका भागी होता है और कल्पान्तमें राजा होता है। यह 'अहिंसाव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य माघमासमें ब्राह्मणेलामें स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार एक द्विज-दम्पतिको भोजन कराकर पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनकी पूजा करता है, वह एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। यह 'सूर्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से आरम्भकर चार महीनेतक नित्य प्रातःकाल स्नान करता है और ब्राह्मणोंको भोजन देता है तथा कार्तिकी पूर्णिमाको गो-दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यह मङ्गलमय 'विष्णुव्रत' है। जो मनुष्य एक अयनसे दूसरे अयनतक (उत्तरायणसे दक्षिणायन अथवा दक्षिणायनसे उत्तरायणतक) पुष्प और घीका त्याग कर देता है और व्रतान्तके दिन धृत, धेनुसहित पुष्पोंकी मालाएँ एवं घी और दूधसे बने हुए खाद्य पदार्थ ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको जाता है। यह 'शीलव्रत' है, जो सुशीलता एवं नीरोगतारूप फल प्रदान करता है। जो एक वर्षतक नित्य सायंकाल दीप-दान करता है और तेल-घी खाना छोड़ देता है, पुनः वर्षान्तमें ब्राह्मणको स्वर्णनिर्मित चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्रके साथ दीपकका दान देता है, वह इस लोकमें तेजस्वी होता है और मरणोपरान्त रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'दीसिव्रत' कहलाता है ॥ ३३—४१ ॥

जो एक वर्षतक कार्तिकमाससे प्रारम्भ कर तृतीया तिथिको गोमूत्र एवं जौसे बने हुए खाद्य पदार्थोंको खाकर नक्तव्रतका पालन करता है और वर्षान्तमें गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है और (पुण्य क्षीण होनेपर) भूतलपर राजा होता है। यह 'रुद्रव्रत' है जो सदाके लिये कल्याणकारी है।

वर्जयेच्चैत्रमासे च यश्च गन्धानुलेपनम्।  
 शुक्लं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी।  
 वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम्॥ ४४  
 वैशाखे पुष्ट्यलवणं वर्जयित्वाथ गोप्रदः।  
 भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजा भवेदिह।  
 एतत् कान्तिव्रतं नाम कान्तिकीर्तिफलप्रदम्॥ ४५  
 ब्रह्माण्डं काञ्छनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम्।  
 अथं तिलप्रदो भूत्वा वहिं संतर्प्य सद्विजम्॥ ४६  
 सम्पूज्य विप्रदाप्यत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः।  
 शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥ ४७  
 पुण्येऽहिं दद्यात् स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम्।  
 एतद् ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणपददायकम्॥ ४८  
 यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्विताम्।  
 दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत् स याति परमं पदम्।  
 एतद् धेनुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ ४९  
 अथं पयोव्रते स्थित्वा काञ्छनं कल्पपादपम्।  
 पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या तण्डुलैस्तूपसंयुतम्।  
 दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५०  
 मासोपवासी यो दद्याद् धेनुं विप्राय शोभनाम्।  
 स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५१  
 दद्याद् विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्छनीम्।  
 दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद् रुद्रलोके महीयते।  
 धराव्रतमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम्॥ ५२  
 माघे मासेऽथवा चैत्रे गुडधेनुप्रदो भवेत्।  
 गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीलोके महीयते।  
 महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम्॥ ५३  
 पक्षोपवासी यो दद्याद् विप्राय कपिलाद्वयम्।  
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसुपूजितम्।  
 कल्पान्ते राजराजः स्यात् प्रभाव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५४

जो चैत्रमासमें सुगन्धित वस्तुओंका अनुलेपन छोड़ देता है अर्थात् शरीरमें सुगन्धित पदार्थ नहीं लगाता और व्रतान्तमें ब्राह्मणको दो श्वेत वस्त्रोंके साथ गन्धधारियोंकी शुक्ल (गन्धद्रव्यविशेष)-का दान करता है वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। यह 'दृढव्रत' कहलाता है। जो वैशाखमासमें पुष्ट्य और नमकका परित्याग कर व्रतान्तमें गोदान करता है वह एक कल्पतक विष्णुलोकमें निवास करके (पुण्य क्षीण होनेपर) इस लोकमें राजा होता है। यह 'कान्तिव्रत' है, जो कान्ति और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो किसी पुण्यप्रद दिनमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन पलसे अधिक सोनेका ब्रह्माण्ड बनवाकर तिलकी राशिपर स्थापित कर देता है और तीन दिनतक ब्राह्मणसहित अग्निको संतुष्ट करके तिलका दान देता रहता है, पुनः चौथे दिन एक विप्र-दम्पतिकी पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे विधिपूर्वक पूजा करके 'विश्वात्मा मुझपर प्रसन्न हों'-इस भावनासे वह ब्रह्माण्ड दान कर देता है, वह पुनर्जन्मरहित परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। यह 'ब्रह्मव्रत' है, जो मोक्षपदका दाता है। जो दिनभर पयोव्रतका पालन (दूधका आहार) करके अधिक-से-अधिक सोनेकी बनी हुई उभयमुखी (दो मुखवाली अथवा सवत्सा) गौका दान करता है, वह पुनरागमनरहित परमपदको प्राप्त हो जाता है। यह 'धेनुव्रत' है। जो तीन दिनतक पयोव्रतका पालन करके अपनी शक्तिके अनुसार एक पलसे अधिक सोनेका कल्पवृक्ष बनवाकर उसे चावलकी राशिपर स्थापित करके दान कर देता है वह ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाता है। इसे 'कल्पव्रत' कहा जाता है। जो एक मासतक निराहार रहकर ब्राह्मणको सुन्दर गौका दान करता है वह विष्णुलोकको जाता है। यह 'भीमव्रत' कहलाता है॥ ४२—५१॥

जो दिनभर पयोव्रतका पालन कर बीस पलसे अधिक सोनेसे पृथ्वीकी मूर्ति बनवाकर दान करता है, वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे 'धराव्रत' कहते हैं, जो सात सौ कल्पोंतक दाताका अनुगमन करता रहता है। जो माघ अथवा चैत्रमासमें तृतीया तिथिको गुडव्रतका पालन कर गुडधेनुका दान करता है वह गौरीलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह परमानन्द प्रदान करनेवाला 'महाव्रत' है। जो एक पक्षतक निराहार रहकर ब्राह्मणको दो कपिला गौका दान करता है वह देवताओं एवं असुरोंद्वारा सुपूजित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और एक कल्प बीतनेपर भूतलपर राजाधिराज होता है। इसे 'प्रभाव्रत' कहते हैं।

वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुम्भदः।  
शिवलोके वसेत् कल्पं प्रासिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५५

नक्ताशी चाष्टमीषु स्याद् वत्सरान्ते च धेनुदः।  
पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते॥ ५६

विप्रायेन्धनदो यस्तु वर्षादिचतुरो ऋतून्।  
घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति।  
वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापविनाशनम्॥ ५७

एकादश्यां च नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्।  
समान्ते वैष्णवं हैमं स विष्णोः पदमाप्नुयात्।  
एतत् कृष्णव्रतं नाम कल्पान्ते राज्यभाग् भवेत्॥ ५८

पायसाशी समान्ते तु दद्याद् विप्राय गोयुगम्।  
लक्ष्मीलोकमवाप्नोति होतद् देवीव्रतं स्मृतम्॥ ५९

सप्तम्यां नक्तभुग् दद्यात् समान्ते गां पयस्विनीम्।  
सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६०

चतुर्थ्या नक्तभुगदद्यादब्दान्ते हेमवारणम्।  
व्रतं वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम्॥ ६१

महाफलानि यस्त्यकृत्वा चतुर्मासं द्विजातये।  
हैमानि कार्तिके दद्याद् गोयुगेन समन्वितम्।  
एतत् फलव्रतं नाम विष्णुलोकफलप्रदम्॥ ६२

यश्चोपवासी सप्तम्यां समान्ते हेमपङ्कजम्।  
गाश्च वै शक्तितो दद्याद्देमान्नघटसंयुताः।  
एतत् सौरव्रतं नाम सूर्यलोकफलप्रदम्॥ ६३

द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेन च।  
गोवस्त्रकाञ्छनैर्विप्रान् पूजयेच्छक्तितो नरः।  
परमं पदमाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६४

कार्तिक्यां च वृषोत्सर्ग कृत्वा नक्तं समाचरेत्।  
शैवं पदमवाप्नोति वार्षव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६५

जो एक वर्षतक दिनमें एक ही बार भोजन करके व्रतान्तमें खाद्य पदार्थोंसहित जलपूर्ण घटका दान करता है, वह एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्रासिव्रत' कहा जाता है। जो प्रत्येक मासकी अष्टमी तिथियोंमें रातमें एक बार भोजन करता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहा जाता है। जो वर्षा-ऋतुसे लेकर चार ऋतुओंतक ब्राह्मणको ईर्धनका दान देता है और व्रतान्तमें घृत-धेनु प्रदान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला यह 'वैश्वानरव्रत' है। जो एकादशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें सोनेका विष्णु-चक्र बनवाकर दान करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है और एक कल्पके बीतनेपर भूतलपर राज्यका भागी होता है। यह 'कृष्णव्रत' है। जो खीरका भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको दो गौ दान करता है, वह लक्ष्मीलोकको प्राप्त होता है। इसे 'देवीव्रत' कहा जाता है। जो सप्तमी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षकी समाप्तिमें दुधारू गौका दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'भानुव्रत' कहलाता है। जो चतुर्थी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षकी समाप्तिके अवसरपर सोनेका हाथी दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। शिवलोकरूप फल प्रदान करनेवाला यह 'विनायकव्रत' है। जो चौमासेमें (बेल, जामुन, बेर, कैथ और बीजपुर नीबू) इन पाँच महाफलोंका परित्याग कर कार्तिकमासमें सोनेसे इन फलोंका निर्माण करकर दो गौओंके साथ दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। विष्णुलोकरूप फल प्रदान करनेवाला यह 'फलव्रत' है। जो सप्तमी तिथिको निराहार रहते हुए वर्षके अन्तमें अपनी शक्तिके अनुसार स्वर्णनिर्मित कमल तथा सुवर्ण, अन्न और घटसहित गौओंका दान करता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। सूर्यलोकरूप फलका प्रदाता यह 'सौरव्रत' है॥५२—६३॥

जो मनुष्य बारहों द्वादशियोंको उपवास करके यथाशक्ति गौ, वस्त्र और सुवर्णसे ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त हो जाता है। इसे 'विष्णुव्रत' कहा जाता है। जो कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको वृषोत्सर्ग करके नक्तव्रतका पालन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह 'वार्षव्रत' कहलाता है।

कृच्छान्ते गोप्रदः कुर्याद् भोजनं शक्तिः पदम्।  
 विप्राणां शाङ्करं याति प्राजापत्यमिदं व्रतम्॥ ६६  
 चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समान्ते गोधनप्रदः।  
 शैवं पदमवाज्ञोति त्रैयम्बकमिदं व्रतम्॥ ६७  
 समरात्रोषितो दद्याद् घृतकुम्भं द्विजातये।  
 घृतव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम्॥ ६८  
 आकाशशायी वर्षासु धेनुमन्ते पयस्त्विनीम्।  
 शक्रलोके वसेन्नित्यमिन्द्रव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६९  
 अनग्निपव्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः।  
 गां दत्त्वा शिवमध्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।  
 इह चानन्दकृत् पुंसां श्रेयोव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७०  
 हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम्।  
 ददन् कृतोपवासः स्याद् दिवि कल्पशतं वसेत्।  
 कल्पान्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७१  
 तद्वद्धेमरथं दद्यात् करिभ्यां संयुतं नरः।  
 सत्यलोके वसेत् कल्पं सहस्रमथ भूपतिः।  
 भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७२  
 उपवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत्।  
 यक्षाधिपत्यमाज्ञोति सुखव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७३  
 निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत्।  
 वारुणं लोकमाज्ञोति वरुणव्रतमुच्यते॥ ७४  
 चान्द्रायणं च यः कुर्याद्देमचन्द्रं निवेदयेत्।  
 चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकफलप्रदम्॥ ७५  
 ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवम्।  
 यात्यष्टमीचतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७६  
 सकृद् वितानकं कुर्यात् तृतीयायां शिवालये।  
 समान्ते धेनुदो याति भवानीव्रतमुच्यते॥ ७७  
 माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात् सप्तम्यां गोप्रदो भवेत्।  
 दिवि कल्पमुषित्वेह राजा स्यात् पवनं व्रतम्॥ ७८

जो कृच्छ्र-चान्द्रायण-ब्रतकी समाप्तिपर गोदान करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह शिवलोकको जाता है। यह 'प्राजापत्यव्रत' है। जो चतुर्दशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर गोधनका दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह 'त्रैयम्बकव्रत' है। जो सात रातक उपवास कर ब्राह्मणको घृतपूर्ण घटका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है। यह ब्रह्मलोकरूप फल प्रदान करनेवाला 'घृतव्रत' है। जो वर्षा-ऋतुमें आकाशके नीचे (खुले मैदानमें) शयन करता है और ब्रतान्तमें दुधारू गौका दान करता है, वह सदाके लिये इन्द्रलोकमें निवास करता है। इसे 'इन्द्रव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य तृतीया तिथिको बिना अग्निमें पकाया हुआ पदार्थ भोजन करता है और ब्रतान्तमें गौ-दान देता है, वह पुनरागमनरहित शिवलोकको प्राप्त होता है। मनुष्योंको इस लोकमें आनन्द प्रदान करनेवाला यह 'श्रेयोव्रत' कहलाता है। जो निराहार रहकर दो पलसे अधिक सोनेसे दो घोड़ोंसे जुता हुआ रथ बनवाकर दान करता है, वह सौ कल्पोंतक स्वर्गलोकमें वास करता है और कल्पान्तमें भूतलपर राजाधिराज होता है। इसे 'अश्वव्रत' कहते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य निराहार रहकर दो हाथियोंसे जुता हुआ सोनेका रथ दान करता है, वह एक हजार कल्पोंतक सत्यलोकमें निवास करता है और (पुण्य-क्षीण होनेपर भूतलपर) राजा होता है। यह 'करिव्रत' कहलाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य वर्षके अन्तमें उपवासका परित्याग कर गोदान करता है, वह यक्षोंका अधीक्ष्वर होता है। इसे 'सुखव्रत' कहा जाता है। जो रातभर जलमें निवास कर प्रातःकाल गोदान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त करता है। इसे 'वरुणव्रत' कहते हैं। जो मनुष्य चान्द्रायण-ब्रतका अनुष्ठान कर स्वर्णनिर्मित चन्द्रमाका दान करता है, वह चन्द्रलोकको जाता है। चन्द्रलोकरूप फलका प्रदाता यह 'चन्द्रव्रत' कहलाता है। जो ज्येष्ठमासकी अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियोंमें पञ्चाग्नि तपकर सायंकाल स्वर्णनिर्मित गौका दान करता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। यह 'रुद्रव्रत' नामसे विख्यात है॥ ६४—७६॥

जो तृतीया तिथिको शिवालयमें एक बार चाँदोवा या चाँदनी लगा देता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह भवानीलोकको जाता है। इसे 'भवानीव्रत' कहते हैं। जो माघमासमें सप्तमी तिथिको रातभर गीला वस्त्र धारण किये रहता है और प्रातःकाल गौका दान करता है, वह एक कल्पतक स्वर्णमें निवास करके भूतलपर

त्रिरात्रोपोषितो दद्यात् फाल्गुन्यां भवनं शुभम्।  
आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७९

त्रिसंध्यं पूज्य दाम्पत्यमुपवासी विभूषणैः।  
अन्नं गाश्च समाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह॥ ८०

दत्त्वा सितद्वितीयायामिन्दोर्लवणभाजनम्।  
समान्ते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम्।  
कल्पान्ते राजराजः स्यात् सोमव्रतमिदं स्मृतम्॥ ८१

प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः।  
वैश्वानरपदं याति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥ ८२

दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः।  
दिशश्च काञ्छनैर्दद्याद् ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्।  
एतद् विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम्॥ ८३

यः पठेच्छृणुयाद् वापि व्रतष्ठिमनुत्तमाम्।  
मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत्॥ ८४

षष्ठिव्रतं नारद पुण्यमेतत्  
तवोदितं विश्वजनीनमन्यत्।  
श्रोतुं तवेच्छा तदुदीरयामि  
प्रियेषु किं वाकथनीयमस्ति॥ ८५

राजा होता है। 'यह पवनव्रत' है। जो तीन राततक उपवास करके फाल्गुनमासकी पूर्णिमा तिथिको सुन्दर गृह दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'धामव्रत' नामसे प्रसिद्ध है। जो निराहार रहकर तीनों (प्रातः, मध्याह, सायं) संध्याओंमें आभूषणोद्घारा ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करता है, उसे इस लोकमें इन्द्रव्रतसे भी बढ़कर अधिक मात्रामें अन्न एवं गोधनकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह मोक्षलाभ करता है। जो शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको चन्द्रमाके उद्देश्यसे नमकसे परिपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान करता है और वर्षकी समाप्तिमें गोदान देता है, वह शिवलोकको जाता है और एक कल्प व्यतीत होनेपर भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह 'सोमव्रत' नामसे विख्यात है। जो प्रतिपदा तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षान्तमें कपिला गौका दान देता है, वह वैश्वानरलोकको जाता है। इसे 'शिवव्रत' कहते हैं। जो दशमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षकी समाप्तिके अवसरपर स्वर्णनिर्मित दसों दिशाओंकी प्रतिमाके साथ दस गायें दान करता है वह ब्रह्माण्डका अधीश्वर होता है। यह 'विश्वव्रत' है जो महापातकोंका विनाशक है। जो इस सर्वोत्तम 'षष्ठिव्रत' (६० व्रतोंकी चर्चा)-को पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी सौ मन्वन्तरक गन्धर्वलोकका अधिपति होता है। नारद! यह षष्ठिव्रत परम पुण्यप्रद और सभी जीवोंके लिये लाभदायक है, मैंने आपसे इसका वर्णन कर दिया। अब यदि आपकी और भी कुछ सुननेकी इच्छा हो तो मैं उसका वर्णन करूँगा; क्योंकि प्रियजनोंके प्रति भला कौन-सी वस्तु अकथनीय हो सकती है॥ ७७—८५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षष्ठिव्रतमाहात्म्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०१॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें षष्ठिव्रतमाहात्म्य नामक एक सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०१॥

## एक सौ दोवाँ अध्याय

स्नान<sup>३</sup> और तर्पणकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच  
नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते।  
तस्मान्मनोविशुद्धयर्थं स्नानमादौ विधीयते॥ १

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! स्नान किये बिना शरीरकी निर्मलता और भाव-शुद्धि नहीं प्राप्त होती, अतः मनकी विशुद्धिके लिये (सभी व्रतोंमें) सर्वप्रथम स्नानका

१. स्वल्पान्तरसे ये सभी व्रत पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० २०, श्लोक ४५ से १४४ तकमें तथा भविष्योत्तरपुराणके १२०वें अध्यायमें भी निर्दिष्ट हैं।

२. स्नानविधिकी विस्तृत चर्चा 'स्नानव्यास' में है। यह सुन्दर प्रकरण वृहद्व्यासादि स्मृतियोंमें भी संगृहीत है।

अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्।  
 तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।  
 नमो नारायणायेति मन्त्र एष उदाहृतः॥ २  
 दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः।  
 चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्वं समन्ततः।  
 प्रकल्प्यावाहयेद् गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः॥ ३  
 विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता।  
 त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥ ४  
 तिस्त्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुब्रवीत्।  
 दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्विः॥ ५  
 नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च।  
 दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकायामृता शिवा॥ ६  
 विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा विश्वप्रसादिनी।  
 क्षेमा च जाह्वी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ ७  
 एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत्।  
 भवेत् संनिहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी॥ ८  
 सप्तवाराभिजसेन करसम्पुटयोजितम्।  
 मूर्धि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुःपञ्चसप्तकम्।  
 स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः॥ ९  
 अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।  
 मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥ १०  
 उद्धृतासि वराहेण कृष्णो न शतबाहुना।  
 मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमन्त्रिता।  
 आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रचोदय॥ ११\*  
 मृत्तिके देहि नः पुष्टि सर्वं त्वयि प्रतिष्ठितम्।  
 नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥ १२

विधान है। कुएँ आदिसे निकाले हुए अथवा बिना निकाले हुए नदी-तालाब आदिके जलसे स्नान करना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रद्वारा उस जलमें तीर्थकी कल्पना करनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मूलमन्त्र कहा गया है। मनुष्य पहले हाथमें कुश लिये हुए विधिपूर्वक आचमन कर ले, फिर जितेन्द्रिय एवं शुद्ध भावसे अपने चारों ओर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें तीर्थकी कल्पना कर इन (वक्ष्यमाण) मन्त्रोद्वारा गङ्गाजीका आवाहन करे—'देवि! तुम भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, वैष्णवी कही जाती हो और विष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, अतः तुम जन्मसे लेकर मरणान्ततक होनेवाले पापसे हमारी रक्षा करो। जहुनन्दिनी! वायुदेवने स्वर्गलोक, मृत्युलोक और अन्तरिक्षलोक—इन तीनों लोकोंमें जिन साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंको बतलाया है, वे सभी तुम्हारे भीतर निवास करते हैं। देवोंमें तुम नन्दिनी और नलिनी नामसे प्रसिद्ध हो। इसके अतिरिक्त दक्षा, पृथ्वी, विहगा, विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्वी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी—ये भी तुम्हारे ही नाम हैं।' स्नानके समय इन पुण्यमय नामोंका कीर्तन करना चाहिये, इससे त्रिपथगामिनी गङ्गा वहाँ उपस्थित हो जाती हैं॥ १—८॥

हाथोंको सम्पुटित करके सात बार इन नामोंका जप करनेके पश्चात् तीन, चार, पाँच अथवा सात बार जलको अपने मस्तकपर छिड़क ले। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पृथ्वीको आमन्त्रित करके पहले शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करना चाहिये। (आमन्त्रण-मन्त्र इस प्रकार है)—'मृत्तिके! तुम अग्निचयन, उख संभरणादिके समय अश्वके द्वारा शुद्ध की जाती हो, तुम (शिवके) रथ और वामन-अवतारमें भगवान् विष्णुके पैरद्वारा भी आक्रान्त होकर शुद्ध हुई हो, सारा धन तुम्हारे ही भीतर वर्तमान है, इसलिये मेरे द्वारा जो कुछ भी पाप घटित हुए हैं, उन सभीको हर लो। मृत्तिके! शतबाहु भगवान् विष्णुने श्यामवर्णका वराहरूप धारण कर तुम्हारा पातालसे उद्धार किया है, पुनः महर्षि कश्यपद्वारा आमन्त्रित होकर तुम ब्राह्मणोंको प्रदान की गयी हो, अतः मेरे अङ्गोंपर आरुद्ध होकर मेरे सारे पापोंको दूर कर दो। मृत्तिके! विश्वके सारे पदार्थ तो तुम्हारे भीतर ही स्थित हैं, अतः तुम हमें पुष्टि प्रदान करो। सुव्रते! तुम समस्त जीवोंकी उत्पत्तिके लिये अरणिस्वरूपा हो,

\* ये दो मन्त्र तैत्तिरीयारण्यक १०। १। ३—२४ में भी प्राप्त हैं। उनपर सायणका भाष्य बहुत सुन्दर है।

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः।  
 उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै॥ १३  
 ततस्तु तर्पणं कुर्यात् त्रैलोक्याप्यायनाय वै।  
 ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम्॥ १४  
 देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः।  
 क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्बुकाः खगाः॥ १५  
 वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः।  
 निराधाराश्च ये जीवाः पापे धर्मे रताश्च ये॥ १६  
 तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया।  
 कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत् ततः॥ १७  
 मनुष्यांस्तर्पयेद् भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा।  
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥ १८  
 कपिलश्चासुरिश्चैव वोद्धुः पञ्चशिखस्तथा।  
 सर्वे ते तृस्मिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥ १९  
 मरीचिमत्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।  
 प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च।  
 देवब्रह्मऋषीन् सर्वास्तर्पयेदक्षतोदकैः॥ २०  
 अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले।  
 अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः॥ २१  
 सुकालिनो बर्हिषदस्तथा चैवाच्यपाः पुनः।  
 संतर्प्याः पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः॥ २२  
 यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।  
 वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ २३  
 औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।  
 वृकोदराय चित्राय चित्रगुसाय वै नमः।  
 दर्भपाणिस्तु विधिना पितृन् संतर्पयेद् बुधः॥ २४  
 पित्रादीन् नामगोत्रेण तथा मातामहानपि।  
 संतर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ २५  
 येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।  
 ते तृस्मिन्खिलां यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति॥ २६

तुम्हें नमस्कार है।' इस प्रकार मिट्टी लगाकर स्नान करनेके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करे। पुनः जलसे बाहर निकलकर दो श्वेत रंगके शुद्ध वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् त्रैलोकीको तृप्त करनेके लिये इस प्रकार तर्पण करना चाहिये। उस समय उपवीती होकर (जनेऊको जैसे पहनते हैं, बायें कंधेपर तथा दाहिने हाथके नीचे कर) सर्वप्रथम देवतर्पण करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, क्रूर सर्प, गरुड आदि पक्षी, वृक्ष, शृगाल, अन्य पक्षिगण तथा जो जीव वायु एवं जलके आधारपर जीवित रहनेवाले हैं, आकाशचारी हैं, निराधार हैं और जो जीव पाप एवं धर्ममें लगे हुए हैं, उन सबकी तृप्तिके लिये मैं यह जल दे रहा हूँ।' तदनन्तर निवीती हो जाय (जनेऊको मालाकार कर लें)॥ १९—२७॥

फिर भक्तिपूर्वक मनुष्यों तथा ब्रह्मपुत्र ऋषियोंके तर्पणका विधान है—'सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वोद्धु तथा पञ्चशिख—ये सभी मेरे द्वारा दिये हुए जलसे सदा तृप्त हो जायँ।' तत्पश्चात् मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन सभी देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंका अक्षत और जलसे तर्पण करनेका विधान है। तदनन्तर अपसव्य होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर रखकर) और बायें घुटनेको भूमिपर टेककर अग्निष्वात्, सौम्य, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा अन्य आज्यप नामक पितरोंको भक्तिपूर्वक तिल, जल, चन्दन आदिसे तृप्त करना चाहिये। पुनः बुद्धिमान् मनुष्य हाथमें कुश लेकर यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह दिव्य पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करके इन्हें नमस्कार करे। तत्पश्चात् अपने पिता आदि तथा नाना आदिके नाम और गोत्रका उच्चारण कर भक्तिपूर्वक विधानके साथ तर्पण करनेके पश्चात् इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो लोग इस जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों या इनके अतिरिक्त कुटुम्बमें पैदा हुए हों अथवा जन्मान्तरमें भाई-बन्धु रहे हों तथा जो कोई भी मुझसे जलकी इच्छा रखते हों, वे सभी पूर्णतया तृप्त हो जायँ॥ २८—२६॥

ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत् पद्ममग्रतः ।  
 अक्षताभिः सपुष्याभिः सजलारुणचन्दनम् ।  
 अर्घ्यं दद्यात् प्रयत्नेन सूर्यनामानि कीर्तयेत् ॥ २७  
 नमस्ते विष्णुरुपाय नमो विष्णुमुखाय वै ।  
 सहस्रशमये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ॥ २८  
 नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते सर्ववत्सल ।  
 जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ॥ २९  
 पद्मासन नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ।  
 नमस्ते सर्वलोकेश जगत् सर्वं विबोधसे ॥ ३०  
 सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग ।  
 सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ॥ ३१  
 दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।  
 एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वाथ प्रदक्षिणम् ।  
 द्विजं गां काञ्छनं स्पृष्ट्वा ततश्च स्वगृहं ब्रजेत् ॥ ३२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे स्नानविधिर्नाम द्वयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें स्नानविधि नामक एक सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०२ ॥

## एक सौ तीनवाँ अध्याय

युधिष्ठिरकी चिन्ता, उनकी महर्षि मार्कण्डेयसे भेंट और महर्षिद्वारा प्रयाग-माहात्म्यका उपक्रम

नन्दिकेश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रयागस्योपवर्णनम् ।  
 मार्कण्डेयेन कथितं यत् पुरा पाण्डुसूनवे ॥ १  
 भारते तु यदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते ।  
 एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २  
 भ्रातृशोकेन संतप्तश्चिन्तयन् स पुनः पुनः ।  
 आसीत् सुयोधनो राजा एकादशचमूपतिः ॥ ३

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! इसके बाद मैं प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ जिसे पूर्वकालमें महर्षि मार्कण्डेयने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे कहा था। जब महाभारत-युद्ध समाप्त हो गया और कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिरको राज्य प्राप्त हो गया, इसी बीच कुन्ती-नन्दन महाराज युधिष्ठिर भाइयोंके शोकसे अत्यन्त दुःखी होकर बारम्बार इस प्रकार चिन्तन करने लगे—‘हाय! जो राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था,

अस्मान् संताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गताः ।  
 वासुदेवं समाश्रित्य पञ्च शेषास्तु पाण्डवाः ॥ ४  
 हत्वा भीष्मं च द्रोणं च कर्णं चैव महाबलम् ।  
 दुर्योधनं च राजानं पुत्रभ्रातृसमन्वितम् ॥ ५  
 राजानो निहताः सर्वे ये चान्ये शूरमानिनः ।  
 किं नो राज्येन गोविन्दं किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ६  
 धिक् कष्टमिति संचिन्त्य राजा वैकल्यमागतः ।  
 निर्विचेष्टो निरुत्साहः किञ्चित् तिष्ठत्यधोमुखः ॥ ७  
 लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तयन् स पुनः पुनः ।  
 कतमो विनियोगो वा नियमं तीर्थमेव च ॥ ८  
 येनाहं शीघ्रमामुच्छे महापातककिल्बिषात् ।  
 यत्र स्थित्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥ ९  
 कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितोऽस्म्यहम् ।  
 धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं हतम् ॥ १०  
 एवं वैकल्यमापन्ने धर्मराजे युधिष्ठिरे ।  
 रुदन्ति पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः ॥ ११  
 ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाः स्मृताः ।  
 कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः ।  
 भूमौ निपतिताः सर्वे रुदन्तस्तु समंततः ॥ १२  
 वाराणस्यां मार्कण्डेयस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः ।  
 यथा वैकल्यमापन्नो रोदमानस्तु दुःखितः ॥ १३  
 अचिरेणैव कालेन मार्कण्डेयो महातपाः ।  
 सम्प्राप्तो ह्यस्तिनपुरं राजद्वारे ह्यतिष्ठत ॥ १४  
 द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम् ।  
 त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारि तिष्ठत्यसौ मुनिः ।  
 त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमागादतः परम् ॥ १५

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं ते महाभाग स्वागतं ते महामुने ।  
 अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम् ॥ १६  
 अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि दृष्टे महामुने ।  
 अद्याहं पूतदेहोऽस्मि यत् त्वया सह दर्शनम् ॥ १७

वह हमलोगोंको अनेकों बार कष्टमें डालकर अपने सभी सहायकोंसे साथ कालके गालमें चला गया । श्रीकृष्णका आश्रय लेनेके कारण केवल हम पाँच पाण्डव ही शेष रह गये हैं । गोविन्द ! हमलोगोंने भीष्म, द्रोण, महाबली कर्ण और पुत्रों एवं भाइयोंसमेत राजा दुर्योधनको मारकर जो अन्य शूर, मानी नरेश थे उन सबका भी संहार कर डाला, ऐसी परिस्थितिमें हमें राज्यसे क्या लेना है, अथवा भोगों एवं जीवनसे ही क्या प्रयोजन है ? ‘हाय ! धिक्कार है, महान् कष्ट आ पड़ा’—ऐसा सोचकर राजा युधिष्ठिर व्याकुल हो गये और निश्चेष्ट एवं उत्साहरहित हो कुछ देरतक नीचे मुख किये बैठे ही रह गये । जब राजा युधिष्ठिरको पुनः चेतना प्राप्त हुई तब वे इस प्रकार सोचने लगे—‘ऐसा कौन-सा विनियोग (प्रायश्चित्त), नियम (व्रतोपवास) अथवा तीर्थ है, जिसका सेवन करनेसे मैं शीघ्र ही इस महापातकके पापसे मुक्त हो सकूँगा, अथवा जहाँ निवास कर मनुष्य सर्वोत्तम विष्णुलोकको प्राप्त कर सकता है । इसके लिये मैं श्रीकृष्णसे कैसे पूछूँ; क्योंकि उन्होंने ही तो मुझसे ऐसा कर्म करवाया है । दादा धृतराष्ट्रसे भी किसी प्रकार नहीं पूछ सकता; क्योंकि उनके सौ पुत्र मार डाले गये हैं ।’ ऐसा सोचकर धर्मराज युधिष्ठिर व्याकुल हो गये । उस समय सभी पाण्डव भ्रातृ-शोकमें निमग्न होकर रुदन कर रहे थे । उस समय राजा युधिष्ठिरके समीप जो अन्य महात्मा पुरुष आये थे तथा कुन्ती, द्रौपदी एवं अन्यान्य जो लोग आ गये थे, वे सभी रोते हुए युधिष्ठिरको घेरकर पृथ्वीपर पड़ गये ॥ १—१२ ॥

उस समय महर्षि मार्कण्डेय वाराणसीमें निवास कर रहे थे । उन्हें जिस प्रकार युधिष्ठिर दुःखी और व्याकुल हो रो रहे थे, ये सारी बातें (योगबलसे) ज्ञात हो गयीं । तब महातपस्वी मार्कण्डेय थोड़े ही समयमें हस्तिनापुर जा पहुँचे और राजद्वारपर उपस्थित हुए । उन्हें आया हुआ देखकर द्वारपालने तुरंत राजाको सूचना देते हुए कहा—‘महाराज ! ये महामुनि मार्कण्डेय आपसे मिलनेके लिये दरवाजेपर खड़े हैं ।’ यह सुनते ही धर्म-पुत्र युधिष्ठिर शीघ्रतापूर्वक दरवाजेपर आ पहुँचे ॥ १३—१५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—महाभाग ! आपका स्वागत है । महामुने ! आपका स्वागत है । महामुने ! आपका दर्शन करके आज मेरा जन्म सफल हो गया । आज मैंने अपने कुलका उद्धार कर दिया तथा आज मेरे पितर संतुष्ट हो गये । आपका जो यह (आकस्मिक) दर्शन प्राप्त हुआ, इससे आज मेरा शरीर पवित्र हो गया ॥ १६—१७ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

सिंहासने समास्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः ।  
युधिष्ठिरो महात्मा वै पूजयामास तं मुनिम् ॥ १८  
ततः स तुष्टो मार्कण्डः पूजितश्चाह तं नृपम् ।  
आख्याहि त्वरितं राजन् किमर्थं रुदितं त्वया ।  
केन वा विकलवीभूतः का बाधा ते किमप्रियम् ॥ १९

युधिष्ठिर उवाच

अस्माकं चैव यद् वृत्तं राज्यस्यार्थं महामुने ।  
एतत् सर्वं विदित्वा तु चिन्तावशमुपागतः ॥ २०

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो क्षात्रधर्मव्यवस्थितिम् ।  
नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः ॥ २१  
किं पुना राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः ।  
तदेवं हृदयं कृत्वा तस्मात् पापं न चिन्तयेत् ॥ २२  
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसा मुनिम् ।  
पप्रच्छ विनयोपेतः सर्वपातकनाशनम् ॥ २३

युधिष्ठिर उवाच

पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ नित्यं त्रैलोक्यदर्शिनम् ।  
कथय त्वं समासेन येन मुच्येत किल्बिषात् ॥ २४

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो सर्वपातकनाशनम् ।  
प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ २५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें एक सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०३ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! तत्पश्चात् महात्मा युधिष्ठिरने मार्कण्डेय मुनिको सिंहासनपर बैठाकर पादप्रक्षालन आदि अर्चाविधिके अनुसार उनकी पूजा की । तब पूजनसे संतुष्ट हुए मुनिवर मार्कण्डेयने राजा युधिष्ठिरसे पूछा—‘राजन् ! तुम किसलिये रो रहे थे ? किसने तुम्हें व्याकुल कर दिया ? तुम्हें कौन-सी बाधा सता रही है ? तुम्हारा कौन-सा अमङ्गल हो गया ? यह सब हमें शोघ्र बतलाओ’ ॥ १८-१९ ॥

युधिष्ठिरने कहा—महामुने ! राज्यकी प्राप्तिके लिये हमलोगोंने जैसा-जैसा व्यवहार किया है, वही सब सोचकर मैं चिन्ताके वशीभूत हो गया हूँ ॥ २० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महाबाहु राजन् ! क्षात्रधर्मकी व्यवस्था तो सुनो । इसके अनुसार रणस्थलमें युद्ध करते हुए बुद्धिमान्के लिये पाप नहीं बतलाया गया है, तब फिर राजधर्मके अनुसार विशेषरूपसे युद्ध करनेवाले क्षत्रियके लिये तो पापकी बात ही क्या है । हृदयमें ऐसा विचारकर युद्धसे उत्पन्न हुए पापकी भावनाको छोड़ दो । तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने मुनिवर मार्कण्डेयको सिर झुकाकर प्रणाम किया और विनप्रतापूर्वक समस्त पापोंका विनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न किया ॥ २१—२३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महाप्राज्ञ ! आप तो नित्य त्रैलोक्यदर्शी हैं, अतः मैं आपसे पूछ रहा हूँ । आप संक्षेपमें कोई ऐसा साधन बतलाइये, जिसका पालन करनेसे पापसे छुटकारा मिल सके ॥ २४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—महाबाहु राजन् ! सुनो, पुण्यकर्म मनुष्योंके लिये प्रयाग-गमन ही सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला सर्वश्रेष्ठ साधन है ॥ २५ ॥

## एक सौ चारवाँ अध्याय

**प्रयाग<sup>१</sup>-माहात्म्य-प्रसङ्गमें प्रयाग-क्षेत्रके विविध तीर्थस्थानोंका वर्णन**

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्चश्रोतुमिच्छामि पुरा कल्पे यथास्थितम्।  
ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत् कथितं मुने॥ १  
कथं प्रयागे गमनं नराणां तत्र कीदृशम्।  
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किं फलम्॥ २  
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम्।  
एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे॥ ३

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स यच्छ्रेष्ठं तत्र यत् फलम्।  
पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम्॥ ४  
आप्रयागं प्रतिष्ठानादापुराद् वासुकेर्हदात्।  
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात्।  
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ५  
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।  
तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः॥ ६  
अन्ये च बहवस्तीर्थः सर्वपापहराः शुभाः।  
न शक्याः कथितुं राजन् बहुवर्षशैरपि।  
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम्॥ ७  
षष्ठिर्धनुः सहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्।  
यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥ ८  
प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः।  
मण्डलं रक्षति हरिदैवतैः सह संगतः॥ ९

युधिष्ठिरने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुने! प्राचीन कल्पमें प्रयाग-क्षेत्रकी जैसी स्थिति थी तथा देवश्रेष्ठ ब्रह्माने जिस प्रकार इसका वर्णन किया था, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। मुने! प्रयागकी यात्रा किस प्रकार करनी चाहिये? वहाँ मनुष्योंको कैसा आचार-व्यवहार करनेका विधान है? वहाँ मरनेवालेको कौन-सी गति प्राप्त होती है? वहाँ स्नान करनेसे क्या फल मिलता है? जो लोग सदा प्रयागमें निवास करते हैं, उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है? यह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि इसे जाननेकी मुझे बड़ी उत्कष्टा है॥ १—३॥

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स! पूर्वकालमें प्रयागक्षेत्रमें जो श्रेष्ठ स्थान हैं तथा वहाँकी यात्रासे जो फल प्राप्त होता है, इस विषयमें ऋषियों एवं ब्राह्मणोंके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, वह सब तुम्हें बतला रहा हूँ। प्रयागके प्रतिष्ठानपुर<sup>२</sup> (झूँसी)-से वासुकिहृदतकका भाग, जहाँ कम्बल, अश्वतर और बहुमूलक नामवाले नाग निवास करते हैं, तीनों लोकोंमें प्रजापति-क्षेत्रके नामसे विख्यात है, वहाँ स्नान करनेसे लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं और जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मा आदि देवता संगठित होकर (वहाँ रहनेवालोंकी) रक्षा करते हैं। राजन्! इसके अतिरिक्त इस क्षेत्रमें मङ्गलमय एवं समस्त पापोंका विनाश करनेवाले और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जिनका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता, अतः मैं संक्षेपमें प्रयागका वर्णन कर रहा हूँ। यहाँ साठ हजार धनुर्धर वीर गङ्गाकी रक्षा करते हैं तथा सात घोड़ोंसे जुते हुए रथपर चलनेवाले सूर्य सदा यमुनाकी देखभाल करते रहते हैं। इन्द्र विशेषरूपसे सदा प्रयागकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। श्रीहरि देवताओंको साथ लेकर पूरे प्रयाग-मण्डलकी रखवाली करते हैं।

१. भारतमें देव, रुद्र, कर्ण, नंदादि पञ्चप्रयाग प्रसिद्ध हैं। यह तीर्थराज उनमें भी सर्वश्रेष्ठ है। इसकी महिमापर प्रयागशताध्यायीके अतिरिक्त महाभारत, वनपर्व ८५। ७, अग्नि, गरुड, नारद, कूर्म ३५, पद्म-स्कन्दसौरादि पुराणोंमें भी कई अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त 'त्रिस्थलीसेतु', 'तीर्थकल्पतरु', 'तीर्थ-चिन्नामणि' आदिमें भी इनकी महिमा वर्णित है।

२. प्रतिष्ठानपुर दो हैं—एक गोदावरी-टटका पैठन तथा दूसरा यह झूँसी। प्रयागमाहात्म्यमें सर्वत्र यही अभिप्रेत है।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**  
Icreator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**  
Icreator of  
hinduism  
server!

तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः ।  
 स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥ १०  
 अधर्मेणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम् ।  
 अल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप ।  
 प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥ ११  
 दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ।  
 मृत्तिकालभ्नाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ १२  
 पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी ।  
 प्रयागस्य प्रवेशे तु पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥ १३  
 योजनानां सहस्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः ।  
 अपि दुष्कृतकर्म तु लभते परमां गतिम् ॥ १४  
 कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ।  
 अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासमम् कुलम् ॥ १५  
 सत्यवादी जितक्रोधो ह्यहिंसायां व्यवस्थितः ।  
 धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः ॥ १६  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात् ।  
 मनसा चिन्तयन् कामानवाजोति सुपुष्कलान् ॥ १७  
 ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ।  
 ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितृन् देवांश्च तर्पयेत् ।  
 ईमिताँल्लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते ॥ १८  
 तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।  
 समागता महाभागा यमुना तत्र निमग्ना ।  
 तत्र संनिहितो नित्यं साक्षाद् देवो महेश्वरः ॥ १९  
 दुष्प्राप्यं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर ।  
 देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ।  
 तदुपस्थित्य राजेन्द्र स्वर्गलोकमुपासते ॥ २०

महेश्वर हाथमें त्रिशूल लेकर सदा वट-वृक्षकी रक्षा करते रहते हैं । देवगण इस सर्वपापहारी मङ्गलमय स्थानकी रक्षामें तत्पर रहते हैं । इसलिये इस लोकमें अधर्मसे घिरा हुआ मनुष्य प्रयागक्षेत्रमें प्रवेश नहीं कर सकता । नरेश्वर ! यदि किसीका स्वल्प अथवा उससे भी थोड़ा पाप होगा तो वह सारा-का-सारा प्रयागका स्मरण करनेसे नष्ट हो जायगा; क्योंकि (ऐसा विधान है कि) प्रयागतीर्थके दर्शन, नाम-संकीर्तन अथवा मृत्तिकाका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥ १४—१२ ॥  
 राजेन्द्र ! प्रयागक्षेत्रमें पाँच कुण्ड हैं, उन्हींके मध्यमें गङ्गा बहती हैं, इसलिये प्रयागमें प्रवेश करते ही उसी क्षण पाप नष्ट हो जाता है । मनुष्य कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, यदि वह हजारों योजन दूरसे भी गङ्गाका स्मरण करता है तो उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है । गङ्गाका नाम लेनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है, दर्शन करनेसे उसे जीवनमें माझलिक अवसर देखनेको मिलते हैं तथा स्नान और जलपान करके तो वह अपनी सात पीढ़ियोंको पावन बना देता है । जो मनुष्य सत्यवादी, क्रोधरहित, अहिंसापरायण, धर्मानुगामी, तत्त्वज्ञ और गौ एवं ब्राह्मणके हितमें तत्पर रहकर गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है तथा जो मनसे चिन्तनमात्र करता है, वह अपने अधिक-से-अधिक मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है । इसलिये समस्त देवताओंद्वारा सुरक्षित प्रयाग-क्षेत्रमें जाकर वहाँ एक मासतक ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करते हुए देवों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये । वहाँ रहते हुए मनुष्य जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अभिलिषित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है । वहाँ सूर्य-कन्या महाभागा यमुना देवी, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हैं, नदीरूपमें आयी हुई हैं और साक्षात् भगवान् शंकर वहाँ नित्य निवास करते हैं । इसलिये युधिष्ठिर ! यह पुण्यप्रद प्रयाग मनुष्योंके लिये दुर्लभ है । राजेन्द्र ! देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण आदि गङ्गा-जलका स्पर्श कर स्वर्गलोकमें विराजमान होते हैं ॥ १३—२० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०४ ॥